BASO–N 220

सामाजिक परिवर्तन
Social Change

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
तीनपानी बाई पास रोड,ट्रांसपोर्ट नगर के पास ,हल्द्वानी -२६१३९
फोन न .- 05946-261122, 261123
टॉल फ्री नं – 18001804025
फेक्स नं 05946-264232, ई –मेल – info@uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष	संयोजक
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. **प्रो. जे.पी. पचौरी,** (सदस्य) कुलपति, हिमालयन, विश्वविद्यालय, जीवनवाला, देहरादून
2. **प्रो. सी.सी.एस. ठाकुर,** (सदस्य) प्रो. (से.नि.), रानी दुर्गावती, विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश
3. **प्रो. रबीन्द्र कुमार,** (सदस्य) इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली
4. **प्रो. रेनू प्रकाश,** (सदस्य) समन्वयक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
5. **डॉ. भावना डोभाल,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
6. **डॉ. गोपाल सिंह गौनिया,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. रेनू प्रकाश, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	इकाई संख्या
प्रो. रेनू प्रकाश, समन्वयक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	1, 2, 14
अनिल सैनी, राजकीय महाविद्यालय, पिथौरागढ़	3, 4, 6, 7, 8, 9
शैलजा, सहायक प्राध्यापक (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	5, 10
डॉ. भावना डोभाल, सहायक प्राध्यापक (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	11, 15
डॉ गोपाल सिंह गौनिया, सहायक प्राध्यापक (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	12
डॉ. विनोद पांडे तीर्थथानकर विश्वविद्यालय मुरादाबाद, उत्तरप्रदेश डॉ. घनश्याम जोशी उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	13

सम्पादन

प्रो. रेनू प्रकाश	शैलजा
समन्वयक	सहायक प्राध्यपक (ए.सी),
समाजशास्त्र विभाग	समाजशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन. :

कापीराइट: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139 **प्रकाशन वर्ष: 2024**

प्रकाशक: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139

नोट: सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ या किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। **मुद्रित प्रतियॉ-**

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

तृतीय समेस्टर (Third Semester) **BASO (N) 220**

MINOR PAPER **4 CREDITS**

अनुक्रमणिका
सामाजिक परिवर्तन
Social Change

खण्ड-I
सामाजिक परिवर्तन
Social Change

इकाई-1	सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा एवं विशेषताए Concept and Characteristics of Social Change	1-12
इकाई-2	सामाजिक परिवर्तन के प्रकार Types of Social Change	13-25
इकाई-3	सामाजिक उद्वविकास Social Evolution	26-39
इकाई-4	सामाजिक प्रगति Social Progress	40-53
इकाई-5	सामाजिक आन्दोलन एवं सामाजिक गतिशीलता Social Movement and Social Mobility	53-73

खण्ड-II
सामाजिक परिवर्तन के कारक
Factor of Social Change

इकाई 6	जनसंख्यातमक कारक Demographic Factors	74-86
इकाई 7	प्रौद्योगिकीय कारक	87-101

Technological Factors
इकाई 8 आर्थिक कारक 102-112
Economic Factors
इकाई 9 सांस्कृतिक कारक 113-127
Cultural Factors

खण्ड-III
सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त
Theories of Social Change

इकाई 10 सामाजिक परिवर्तन के रेखीय एवं चक्रीय सिद्धान्त 128-143
Linear and Cyclical Theories of Social Change
इकाई 11 सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय एवं जनांकिय सिद्धान्त 144-163
Biological and Demographic Theories of Social Change
इकाई 12 मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त 164-181
Marxist Theory of Social Change

खण्ड-IV
सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ
Processes of Social Change

इकाई 13 औद्योगिकरण एवं नगरीकरण **182-215**
Industrialization and Urbanization
इकाई 14 संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण **182-215**
Culturalization and Westernization
इकाई 15 नियोजित परिवर्तन **216-233**
Planned Change

इकाई 1: सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा एवं विशेषताए

Concept and Characteristics of Social Change

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

1.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

1.4 सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान

1.5 सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका

1.6 सारांश

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.10 संदर्भ ग्रंथ

1.0 प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, समाज, समूह तथा सामाजिक व्यवस्था में सदैव परिवर्तन होते रहते है। मैरिल ने इस संबंध में कहा है कि मानव सभ्यता का सम्पूर्ण इतिहास सामाजिक परिवर्तन का ही इतिहास है। यह एक वास्ततिकता है कि समाज कभी भी स्थिर नही रह सकता। आदि काल में असभ्य मानव समाज परिवर्तन के कारण ही आज वर्तमान में सभ्य तथा आधुनिक समाज का निर्माण हो पाया है। किसी भी समाज में परिवर्तन या तीव्र गति से होता है या धीमी गति से। परन्तु प्रत्येक समाज में परिवर्तन की प्रवृत्ति निरन्तर चलती रहती है। परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका स्वरूप एवं पद्धतिया समाज की परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। सामाजिक परिवर्तन जहां एक ओर समाज के विकास एवं

प्रगति में अपना विशेष योगदान देता है वही कभी-कभी अनेकों प्रकार की समस्याएँ भी परिलक्षित होने लगती है। प्रो० ग्रीन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि "सामाजिक परिवर्तन समाज में सदैव विद्यमान रहता है क्योकि प्रत्येक समाज मे कुछ ना कुछ मात्रा में असंतुलन बना रहता है।"

अतः कहा जा सकता है कि परिवर्तन एक ऐसा सास्वत नियम है, जो प्रत्येक समाज में पाया जाता है। सामाजिक नियंत्रण के सन्दर्भ में यदि परिवर्तन को देखा जाए तो समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों एवं दशाओं में होने वाले परिवर्तनों को संतुलित रखने के लिए सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता होती है। अतः सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन एक दूसरे के पूरक है तथा इनमें आपस में घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा समझ सकेंगे।
2. सामाजिक परिवर्तन के सामान्य विशेषताएं स्पष्ट हो जायेगी।
4. सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख भूमिका स्पष्ट हो जायेगी।

1.2 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

सामाजिक परिवर्तन समाज मे होने वाले अनेक परिवर्तनों को कहा जाता है, जिन्हें हम महसूस करते है तथा ये परिवर्तन हमें स्पष्ट दिखलाई देते है। संक्षिप्त शब्दों में किसी पूर्व अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में पैदा होने वाले भिन्नता को ही परिवर्तन कहा जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ मे विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अलग-अलग परिभाषाएँ दी है जो निम्नांकित है।

मैकाइवर तथा पेज, "समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध केवल सामाजिक संबंधों के अध्ययन से है इस दृष्टिकोण से सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहते है।"

किग्सलें डेविस, "सामाजिक परिवर्तन से हमारा अभिप्राय उन परिवर्तनों से है, जो सामाजिक संगठन अर्थात समाज की संरचना और कार्यो में उत्पन्न होते है।"

गिन्सबर्ग के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य सामाजिक ढांचे में परिवर्तन होना है। अर्थात समाज के आकार इसके विभिन्न अगों के बीच के संतुलन अथवा समाज के संगठन में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।"

गिलिन एवं गिलिन, "सामाजिक परिवर्तन का अर्थ जीवन की स्वीकृत विधियों में होने वाले परिवर्तन से है, चाहे ये परिवर्तन भौगोलिक दशाओं के कारण हो, सांस्कृतिक उपकरणों, जनसंख्या के रूप अथवा विभिन्न सिद्धान्तों के कारण हो अथवा एक समूह में अविष्कार या संस्कृति के प्रसार से उत्पन्न हुए हो।"

जेन्सन, "सामाजिक परिवर्तन को व्यक्तियों के कार्य करने और विचार करने के तरीको में उत्पन्न होने वाला परिवर्तन कहकर परिभाषित किया जा सकता है।"

एच०टी० मजूमदार के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन समाज की क्रिया अथवा लोगों के जीवन में प्राचीन ढंग को विस्थापित अथवा परिवर्तिक करने वाला नवीन शोभाचार अथवा ढंग है।"

मैरिल एवं एल्ड्रज, "सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य यह है कि समाज के अधिकतर व्यक्ति इस प्रकार के कार्यों में संलग्न है जो उसके पूर्वजों से भिन्न है।"

एडरसन एवं पार्कर के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन में समाजकीय प्रकारों अथवा प्रकियाओ की संरचना अथवया में परिवर्तन निहित है।"

गर्थ तथा मिल्स के कथनानुसार, "सामाजिक परिवर्तन के द्वारा हम उसे संकेत करते है जो समय के साथ-साथ कार्यों, संस्थाओं अथवा उन व्यवस्थाओं में होता है जो सामाजिक संरचना एवं उनकी उत्पत्ति, विकास एवं पतन से सम्बन्धित है।"

जी० के० अग्रवाल के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र व्यापक है समाज से हमारे सभी व्यवहार किसी न किसी सामाजिक नियम से प्रभावित होते है। इस प्रकार जब कभी भी सामाजिक नियमों, मूल्यों अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते है तब सामाजिक व्यवस्था का रूप भी बदलने लगता है। परिवर्तन की इस दशा को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का सम्बन्ध मानव समूह के सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों से है। सभी समाजशास्त्रीयों का मानना है कि जब सामाजिक संरचना में परिवर्तन होता है तो वह समाज के अन्य पक्षों पर भी अपना प्रभाव डालता है। जिससे सामाजिक नियम, मूल्य तथा सामाजिक दशायें परिवर्तित हो जाती है। जिसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

1.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

प्रत्येक समाज दूसरे समाज से भिन्न होता है। व्यक्तियों के विचारों एवं व्यवहारों में भिन्नता होने के कारण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते है। इसकी कुछ सामान्य विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

- **सार्वभौमिक प्रक्रिया**

सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। कोई भी समाज सदैव एक समान या स्थिर नही रह सकता है। समय के साथ उसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है। किसी समाज में परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो किसी में धीमी गति से होता है।

- **सामुदायिक परिवर्तन का गुण**

सामाजिक परिवर्तन किसी एक व्यक्ति में होने वाले परिवर्तन को नहीं कहा जाता, बल्कि जब सम्पूर्ण समूह के सामाजिक सम्बन्धों, अर्न्तक्रियाओं तथा सामाजिक आर्दशों एवं मूल्यों में परिवर्तन होने लगता

है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। कहने का आशय यह है कि जब सामुदायिक रूप से परिवर्तन होता है तो वह सामाजिक परिवर्तन कहलाता है। जिससे समाज के प्रत्येक भाग में भी परिवर्तन होता है।

- **निरन्तर चलने वाली प्रकिया**

सामाजिक परिवर्तन एक स्वभाविक प्रकिया है जो समाज में निरन्तर चलती रहती है। मनुष्य अपनी परिस्थितियों के अनुसार समाज में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं में बदलाव के कारण होने वाले परिवर्तन सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन लाते है। अतः यह प्रक्रिया किसी भी समाज या समूह में निरन्तर परिवर्तन लाता रहता है।

- **निश्चित भविष्यवाणी का आभाव**

प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार, मनोवृत्तियां एव विचार व मूल्य समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते है तथा सामाजिक परिवर्तन भी उन्हीं के अनुरूप होते है। अतः परिवर्तनशीलता का गुण होने के कारण सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में कोई भी निश्चित भविष्यवाणी नही की जा सकती है।

- **सामाजिक परिवर्तन समान नही होता**

यद्यपि सामाजिक परिवर्तन प्रकृति का नियम है और प्रत्येक समाज में सामाजिक परिवर्तन निरन्तर गति से होता रहता है, परन्तु वास्तविक रूप में सामाजिक परिवर्तन की गति प्रत्येक समाज में समान नही होती। किसी एक समाज में यदि परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो यह आवश्यक नही हैं कि दूसरे समाज में भी परिवर्तन उसी गति से हो।

1.4 समाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान

मैकाइवर एवं पेज ने सामाजिक परिवर्तन के तीन प्रतिमानों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है।"[13]

प्रथम प्रतिमान-

इसके अन्तर्गत हम उन परिवर्तनों को सम्मिलित करते है जो एकाएक हमारे सामने आ जाते है। जैसे- नवीन आविष्कारों से सम्बन्धित परिवर्तन, ये परिवर्तन एक बार उत्पन्न होने के बाद निरन्तर कुछ ना कुछ परिवर्तन उत्पन्न करते रहते है। क्योंकि बहुत से दूसरे व्यक्ति उस आविष्कार में सुधार भी करते है। टेलीफोन, वायुयान, रेडियों और इसी प्रकार के बहुत से आविष्कारों का इतिहास यदि देखा जाए तो स्पष्ट हो जायेगा कि इन आविष्कारों के कारण उत्पन्न होने वाला परिवर्तन केवल आकस्मिक नही होता बल्कि गुणात्मक रूप से यह अनेक नये परिवर्तन उत्पन्न करता रहता है। ये परिवर्तन तब तक होते रहते है जब तक किसी दूसरे और पहले से अच्छे उपकरण का आविष्कार न हो जायें। लेकिन परिवर्तन की यह श्रृखला किसी न किसी रूप में निरन्तर बनी रहती है। ऐसे परिवर्तनों को रेखीय परिवर्तन कहा जा सकता है।"[13]

दूसरा प्रतिमान -

परिवर्तन का दूसरा प्रतिमान वह है जिसमें कुछ समय तक तो परिवर्तन प्रगति की ओर होता है, लेकिन इसके बाद इसकी दिशा समृद्धि तथा हास्र, किसी भी ओर मुड़ सकती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आरम्भ में परिवर्तन की रेखा ऊपर की ओर उठेगी लेकिन कुछ समय बाद इसके ऊपर-नीचे होते रहने के बाद अन्त में नीचे की ओर जाने की भी संभावना हो सकती है। इस प्रकार इसे उतार-चढ़ावदार परिवर्तन कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए आर्थिक क्रियाओं और जनसंख्या सम्बन्धी परिवर्तन में यही प्रतिमान देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नगरों का पहले विकास होता है फिर ह्रास, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार पहले लाभप्रद होता है और फिर अक्सर हास्रोन्मुख हो जाता है। आर्थिक कियाओं में समृद्धि स्थिरता और अवसाद की परिस्थितियां सदैव किसी न किसी तरह उत्पन्न होती रहती है। इस प्रकार प्रथम प्रतिमान में कम से कम यह निश्चितता जरूर रहती है कि परिवर्तन एक ही दिशा में होगा, जबकि दूसरे प्रतिमान में इस प्रकार की कोई निश्चितता नही होती।

तृतीय प्रतिमान-

परिवर्तन के तृतीय प्रतिमान की प्रकृति दूसरे प्रतिमान से कुछ मिलती जुलती होती है, अन्तर केवल इतना है कि दूसरे प्रतिमान में प्रगति अथवा हास का तत्व विद्यमान होता है लेकिन इस तीसरे प्रतिमान में हम प्रगति अथवा ह्रास के बारे में निश्चित रूप से कुछ नही कह सकते। क्योकि ऐसे परिवर्तनों का सम्बन्ध साधारणतया मनोवृत्तियों और विचारों के परिवर्तन से होता है। इस प्रतिमान को यदि रेखा के रूप में प्रस्तुत किया जाये तब इसका रूप एक तरंग अथवा लहर के समान होगा। जैसे प्राकृतिक परिवर्तन एक निश्चित क्रम में पाये जाते है, नक्षत्रों की स्थिति, ऋतुओं के समय और मनुष्य की जीव-रचना में होने वाले परिवर्तन इसी श्रेणी में आते है। जिस प्रकार समुद्र में लहर उठते समय न तो इसका कोई निश्चित स्रोत मालूम किया जा सकता है और न ही एक निश्चित अन्त। लेकिन फिर भी लहरों का आना जाना लगभग एक निश्चित कम में बना रहता है। उसी प्रकार अनेक विद्वानों ने मानवीय कार्यों, व्यवहारों तथा राजनैतिक क्रियाओं के परिवर्तन को इसी प्रतिमान के आधार पर स्पष्ट किया है। उदाहरण के लिए हम रूढ़िवादी से प्रगतिवादी और पुनः रूढ़िवादी स्तर की ओर बढ़ जाते है। फैशन की एक वस्तु छोड़कर दूसरी का प्रचार करते है फिर पुरानी वस्तु ग्रहण कर लेते है। स्वतन्त्रता से परिपूर्ण व्यवस्थाओं को अनुचित समझकर सामाजिक नियंत्रण को कठोर कर देने के पक्ष में हो जाते है। इस प्रकार ऊपर नीचे होते हुए भी परिवर्तन एक ही कम में स्पष्ट होते हुए देखे गये है।[14]

स्वप्रगति परीक्षण

1. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा के विचार मेकाइबर एवं पेज के कथनों में प्रस्तुत करें।

……

……

……

……

……

2. जी. के. अग्रवाल के विचार सामाजिक परिवर्तन के विचार के सम्बंध में क्या हैं?

……

……

……

……

3. सामाजिक परिवर्तन समान नहीं होता है, इसे स्पष्ट करें।

……

……

……

……

1.5 सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका

जैसा कि सर्वविदित है कि किसी भी समाज या समूह में सामाजिक परिवर्तन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक परिवर्तन जहाँ एक ओर समाज के विकास एवं प्रगति में अपना विशेष सहयोग देती है वहीं दूसरी ओर विघटन तथा असन्तुलन की स्थिति भी उत्पन्न करती है। अतः सामाजिक परिवर्तन को उपयोगी तथा प्रभावपूर्ण बनाने में सामाजिक नियंत्रण की विशेष भूमिका होती है। सामाजिक नियंत्रण व्यक्ति के व्यवहार एवं विचारों पर नियंत्रण रखकर समाज को संगठित एवं संतुलित रखने में सहयोग प्रदान करता है। सामाजिक परिवर्तन होने की दशा में जब समाज के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन होता है तो वह व्यक्ति के जीवन स्तर, मनोवृत्तियों, विचारों एवं व्यवहार के ढंग में भी परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। अतः यहां पर सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता महसूस होती है। सामाजिक नियंत्रण समाज में होने वाले परिवर्तनों को समाज के लिए उपयोगी बनाने में सहयोग देता है तथा समाज को संतुलित एवं संगठित रखने मे लिए समस्त परिवर्तनों को समाज में व्यवस्थित रखने की दिशा में परिवर्तित करता है।

1.6 सामाजिक परिवर्तन में समाजशास्त्रियों की भूमिका

सामाजिक परिवर्तन में समाजशास्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाजशास्त्री समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हैं और सामाजिक बदलाव के कारणों और प्रभावों को समझते हैं। उनकी भूमिका को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

1. **समाज के अध्ययन और विश्लेषण**: समाजशास्त्री समाज की संरचना, कार्यप्रणाली, और बदलते परिवेश का गहन अध्ययन करते हैं। वे विभिन्न सामाजिक संस्थानों, जैसे परिवार, शिक्षा, धर्म, और अर्थव्यवस्था के संबंध में अनुसंधान करते हैं।
2. **सामाजिक समस्याओं की पहचान**: समाजशास्त्री समाज में व्याप्त समस्याओं, जैसे गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, और भेदभाव को पहचानते हैं और उनके समाधान के लिए सुझाव देते हैं।
3. **नीति निर्माण में योगदान**: समाजशास्त्री सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को नीतियों के निर्माण में सहायता करते हैं। वे सामाजिक बदलाव को प्रोत्साहित करने वाली नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण करते हैं और सुझाव देते हैं कि कैसे समाज को अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण बनाया जा सकता है।
4. **सामाजिक जागरूकता**: समाजशास्त्री अपने शोध के माध्यम से समाज में जागरूकता फैलाते हैं। वे सामाजिक मुद्दों के प्रति लोगों को जागरूक करते हैं और उन्हें बदलाव के लिए प्रेरित करते हैं।
5. **सामाजिक आंदोलनों का समर्थन**: समाजशास्त्री विभिन्न सामाजिक आंदोलनों का समर्थन करते हैं और उन्हें वैचारिक और सैद्धांतिक आधार प्रदान करते हैं। वे आंदोलनों के लिए डेटा और विश्लेषण उपलब्ध कराते हैं जिससे उन्हें अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

6. **शिक्षा और प्रशिक्षण**: समाजशास्त्री विश्वविद्यालयों और अन्य शैक्षणिक संस्थानों में समाजशास्त्र पढ़ाते हैं और नई पीढ़ी को सामाजिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। वे छात्रों को समाजशास्त्र के विभिन्न सिद्धांतों और अनुसंधान विधियों की शिक्षा देते हैं।

इस प्रकार, समाजशास्त्री सामाजिक परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और समाज को अधिक संवेदनशील, समावेशी, और न्यायपूर्ण बनाने में योगदान करते हैं।

1.6 सारांश

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक परिवर्तन है तथा प्रत्येक समाज तथा समूह में परिवर्तन सदैव चलता रहता है। कुछ समाजों में यह परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो कुछ में धीमी गति से होता है। सामाजिक परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों तथा सामाजिक संरचना को परिवर्तित कर समाज के प्रत्येक पक्ष पर अपना प्रभाव डालती है तथा समाज में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते रहते है, जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति के विचारों, व्यवहारों एवं मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसा कि हम जानते है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए प्रत्येक समूह या समाज से जुड़ा रहता है तथा समय के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकतायें भी बदलती रहती है। आवश्यकताओं में बदलाव के कारण व्यक्ति के सम्बन्धों एवं अर्न्तक्रियाओं में परिवर्तन आता है और यही परिस्थितिया सामाजिक परिवर्तन के लिऐ उत्तरदायी होती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन से समाज में गतिशीलता आती है, विकास की प्रक्रिया तेज होती है और समाज प्रगति करता है साथ ही कई प्रकार की समस्यायें भी परिलक्षित होती है जिसके निदान के लिए कई प्रकार के आविष्कार होते है। अतः प्रत्येक परिस्थितियों में सामाजिक परिवर्तन उपयोगी होने के साथ ही सामाजिक ढांचे एवं सम्बन्धों में परिवर्तन लाकर समाज को संतुलित रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

सामाजिक परिर्वतन- सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जो समाज के विभिन्न संस्थानों, व्यवस्थाओं, मान्यताओं, और सांस्कृतिक रूपों में समय के साथ होते हैं।

सामाजिक नियंत्रण- सामाजिक नियंत्रण से तात्पर्य उन प्रक्रियाओं और तंत्रों से है जिनके माध्यम से समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को विनियमित और नियंत्रित करता है। यह नियंत्रण समाज की स्थिरता, व्यवस्था और अनुशासन बनाए रखने के लिए आवश्यक होता है।

1.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. मैकाइवर तथा पेज, "समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध केवल सामाजिक संबंधों के अध्ययन से है इस दृष्टिकोण से सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहते है।"

जी० के० अग्रवाल के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र व्यापक है समाज से हमारे सभी व्यवहार किसी न किसी 2. सामाजिक नियम से प्रभावित होते है। इस प्रकार जब कभी भी सामाजिक नियमों, मूल्यों अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते है तब सामाजिक व्यवस्था का रूप भी बदलने लगता है। परिवर्तन की इस दशा को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

3. यद्यपि सामाजिक परिवर्तन प्रकृति का नियम है और प्रत्येक समाज में सामाजिक परिवर्तन निरन्तर गति से होता रहता है, परन्तु वास्तविक रूप में सामाजिक परिवर्तन की गति प्रत्येक समाज में समान नही होती। किसी एक समाज में यदि परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो यह आवश्यक नही हैं कि दूसरे समाज में भी परिवर्तन उसी गति से हो।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1- डा० जी०के० अग्रवाल, "सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन" 2000

2- डा० जी०के० अग्रवाल, "मानव समाज" 2000

3- डा0 रामनाथ शर्मा तथा डा० राजेन्द्र कुमार शर्मा, "सामाजिक परिवर्तन और समाजिक नियंत्रण" 1996

4- विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" 2010

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा दीजिए तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

2. सामाजिक परिवर्तन क्या है तथा परिवर्तन के प्रमुख प्रतिमानों की व्याख्या कीजीए।

3. सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

4. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(क) मैकाइवर एवं पेज द्वारा दिये गये सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमा

इकाई 2: सामाजिक परिवर्तन के प्रकार
(Types of Social Change)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सामाजिक परिवर्तन के प्रकार
2.3.1 विकासात्मक प्रकार
2.3.2 सामाजिक एवं संस्थागत प्रकार
2.3.3 सांस्कृतिक प्रकार
2.3.4 आर्थिक प्रकार
2.3.5 राजनैतिक प्रकार
2.3.6 प्रौद्योगिकीय प्रकार
2.3.7 पर्यावरणीय प्रकार
2.3.8 वैचारिक प्रकार
2.4 स्वप्रगति परीक्षण – प्रश्न
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 स्वप्रगति परीक्षण – प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.1 :– प्रस्तावना

शिक्षार्णियों प्रथम इकाई में आपने सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा, परिभाषा एवं विभिन्न प्रतिमानों के सन्दर्भ में विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया। प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात आपके द्वारा यह समझना सम्भव हुआ होगा कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और कोई भी समाज इससे अछूता नही होता, अर्थात कोई भी समाज स्थिर नही होता। भारतीय समाज के सन्दर्भ में यदि बात करे तो परम्परागत समाज के स्वरूप में अनेको परिवर्तन आज दृष्टिगत होते है। इस सन्दर्भ में डा0 श्यामचरण दुबे का मानना है कि '' जीवों के अत्यन्त सरल रूपों का

आरम्भ प्रायः बीस लाख वर्ष पहले हुआ। मानव का इजिहास इस काल में केवल 50 हजार वर्ष का है। बड़े वानरों की थोड़ी सी शाखाएँ, वृक्षों से धरती पर आ गई थी या कम से कम उनके जीवन का बड़ा भाग भूतल पर व्यतीत होने लगा था, इन मानव–सम वानरों की कम से कम एक शाखा ने वाक् शक्ति का प्रारम्भिक रूप भी विकसित कर लिया था। जिसमें ध्वनियों ने कुछ शब्दों का रूप ले लिया था।''[1]

अतः सरल शब्दो में कहा जा सकता है कि मनुष्य के प्रारम्भिक जीवन से वर्तमान तक अनेको क्रामिक विकास हमारे सम्मुख परिलक्षित होते रहते है, जिसके परिणामस्वरूप समाज के स्वरूप में भी निरन्तर परिवर्तन होते रहते है, समाज में नयी – नयी विचारधाराओं के समावेश से समाज, समाजिक संस्थाओं, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं में अनेक परिवर्तन होते रहे है जो निरन्तर होते रहेगे, वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में यदि बात करे तो अनेक ऐसे कारक है, जो समाज में परिवर्तन लाने का कार्य करते है, वास्तव में सामाजिक परिवर्तन प्रमुख रूप से मानव समाज के तीन पक्षों को सबसे अधिक प्रभावित करता है – प्रथम सामाजिक सम्बन्धों को, द्वितीय – संरचनात्मक इकाइयों को , तथा अन्तिम सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों अथवा परिप्रेक्ष्यों को, अतः स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है जो समाज में होने वाले अनेक परिवर्तनों को हमारे सम्मुख परिलक्षित करता है। प्रायः सामाजिक परिवर्तन के दो प्रकार होते है, प्रथम – प्रेरित परिवर्तन एवं द्वितीय स्वतः परिवर्तन, प्रेरित परिवर्तन ऐसे परिवर्तन होते है जो मानव समूहो द्वारा प्रेरित होते है उदाहरण के लिए औद्योगीकरण, आधुनिकिरण नगरीकरण संस्थाओं एवं संगठनों में परिवर्तन एवं प्रौद्योगिक परिवर्तन, स्वतः परिवर्तन ऐसे परिवर्तनो को कहा जा सकता है जो समाज में स्वतः उत्पन्न होते है, उदाहरण के तौर पर जलवायु परिवर्तन, ऋतु परिवर्तन, मानव की विभिन्न आयु अवस्थाओं में परिवर्तन इत्यादि प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों की सविस्तार चर्चा करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकारो को विस्तारपूर्वक समझ पायेगे साथ ही ऐसे कौन से कारक है जो उन्हे प्रभावित करते है, इसका ज्ञान भी प्राप्त कर पायेगे।

2.3 समाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकार :–

जैसा कि हम पूर्व में भी यह स्पष्ट कर चुके है कि सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। तथा यह एक जटिल प्रक्रिया है, जटिल प्रक्रिया इस दृष्टिकोण से माना जा सकता है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की कोई भी एक निश्चित दिशा निर्धारित नही होती और ना ही इसका स्वरूप एक समान रहता है, समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में जब परिवर्तन देखने को मिलता है तब इसके परिणामस्वरूप परिवर्तन नकारात्मक भी हो सकते है और सकारात्मक भी, सकारात्मक परिवर्तन में प्रगति और विकास होता है, जबकि नकारात्मक परिवर्तन में समाज में अनेको समस्याये एवं विघटन परिलक्षित होते है। सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में डा0 अग्रवाल का मानना है कि ''जब दो विशेष अवधियों के बीच व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक ढाँचे तथा सामाजिक मूल्यों में भिन्न्ता उत्पन्न होती है तब इसी भिन्नता को हम सामाजिक परिवर्तन कहते है।''[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन की अपनी कुछ विशेष प्रक्रियायें या प्रकार होते है जो समाज में व्याप्त अनेको कारकों द्वारा प्रभावित भी होते है। समाजिक परिवर्तन के कुछ प्रकार निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किये जा सकते है।

2.3.1 6 विकासात्मक प्रकार

हरबर्ट स्पेन्सर ने सामाजिक परिवर्तन की विकासवादी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्राणिशास्त्रीय परिवर्तन की भाति सामाजिक परिवर्तन भी कुछ आन्तरिक शक्तियों के कारण ही सम्भव होता है और परिवर्तन के इस दौर में समाज या समाज का कोई भाग सरल से धीरे–धीरे जटिल रूप धारण कर लेता है। उदाहरणार्थ, आदिम स्तर पर शिकार करने और फल–फूल एकत्रित करने वाली अर्थव्यवस्था बहुत ही सरल थी, पर इस अर्थव्यवस्था में उद्विकासीय प्रक्रिया के द्वारा परिवर्तन होता गया और शिकार करने की स्थिति के बाद पशुपालन की स्थिति, फिर कृषि की स्थिति और फिर औद्योगिक स्थिति का उद्भव हुआ।[3]

इस प्रकार विकासवादी प्रक्रिया में परिवर्तन स्तरों से होकर आगे बढ़ता है जो समाज मे परिवर्तन लाने के साथ समाज की संरचना एवं समाज के कार्यो में होने वाले विकास की प्रवृत्ति को भी स्पष्ट करता है, जैसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में बात करे तो शैक्षणिक व्यवस्था एवं शिक्षा प्रणाली में सुधार, स्वास्थ्य सेवाओं एवं संसाधनों में वृद्धि एवं लोगों तक इसकी पहुच तथा रोजगार के अवसरों में सृजन के साथ–साथ समानता एवं सुरक्षा को बढ़ावा देना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विकासात्मक परिवर्तन समाज में एक सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य करते है, जिससे समाज विकास एवं प्रगति के मार्ग में अग्रसर हो सके।

विकासात्मक प्रकार से होने वाले सामाजिक परिवर्तन को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. विकासात्मक परिवर्तन समाज में निरन्तर होते है किन्तु यह परिवर्तन प्रायः धीमी गति से होते है।
2. यह परिवर्तन समाज में निवासरत व्यक्तियों के जीवन स्तर को विकास की दिशा में ले जाने का कार्य करते है, जिससे उनका सर्वागीण विकास हो सके जैसे – शिक्षा, अर्थव्यवस्था एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित होने वाले परिवर्तन ।
3. विकासात्मक परिवर्तन को एक सामूहिक प्रयास का प्रतिकल माना जा सकता है जिससें समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता आवश्यक होती है। समाज के विकास में जहॉ एक ओर प्रशासन एवं सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। वही दूसरी ओर समुदाय और समुदाय निवासरत लोगो की जागरूकता एवं सहभागिता भी आवश्यक एवं अनिवार्य होती है, तभी सामाजिक परिवर्तन सम्भव होता है।

2.3.2 सामाजिक एवं संस्थागत प्रकार

किसी भी समाज या समूह के सामाजिक सम्बन्धों या सामाजिक संरचना में जब भी परिवर्तन होने लगते है तब उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है, जैसे समाज के सदस्यों के मध्य त्याग या हम की भावना के स्थान पर स्वार्थ की भावना, या समाज की संरचना बनाने वाली विभिन्न इकाइयों जैसे – संस्थाऍ समुदाय एवं समिति में परिवर्तन आदि। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि जब भी समाज या व्यक्ति की सामाजिक स्थिति या संरचनाओं मे परिवर्तन होता है तब समाज एवं व्यक्ति के विभिन्न पक्षों में भी परिवर्तन होने लगता है जिसे समाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। इसी प्रकार संस्थागत परिवर्तन भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण प्रकार माना जा सकता है क्योकि कोई भी परिवर्तन जब समाज की संस्थाओं में परिवर्तन करके विकास एवं उन्नति में वृद्धि एवं समाज की सरंचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तनों से उत्पन्न समस्याओं के निराकरण एवं समाज को सगठित एवं प्रभावी बनाने के उद्देश्य से किया जाता है तो उसे संस्थागत परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है।

सामाजिक एवं संस्थागत परिवर्तन की प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. सामाजिक एवं संस्थागत परिवर्तन में समाज एवं संस्थाओं की संरचना एवं समाज के विभिन्न संगठनों में होने वाला परिवर्तन सम्मिलित है।
2. यह परिवर्तन समय – समय पर अनेक संवैधानिक अधिनियमों एवं योजनाओं के निर्माण, संस्थागत संरचना एवं कार्यविधि अथवा कार्यप्रणाली में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करती है।
3. व्यक्तियों की अनिवार्य आवश्यकताओं एवं जीवन स्तर को प्रभावित करने वाली प्रक्रियाओं को विकसित करना एवं उक्त प्रक्रियाओं की अधिक बेहतर बनाने में सहायता प्रदान करता है ।

2.3.3 सांस्कृतिक प्रकार

किसी भी समाज की संस्कृति उस समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने में अपना विशेष योगदान देती है, मैकाइवर ने सामाजिक परिवर्तन में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका प्रौद्योगिक कारकों से कही अधिक महत्वपूर्ण बताई है। उदाहरण के तौर पर मैकाइवर ने लिखा है कि एक कारखाने अथवा जहाज का निर्माण करना प्रौद्योगिकी का काम है लेकिन उस कारखाने में हम किस डिजायन के कपड़े बनायेगे अथवा एक जहाज से किन–किन स्थानों की यात्रा करेगें। इसका निर्धारण हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर होती है, सांस्कृतिक विशेषताये ही व्यक्तियों के विचारों, मनोवृत्तियों और व्यवहार के तरीकों का निर्धारण करती है।[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सांस्कृतिक परिवर्तन प्रायः समाज में व्याप्त सांस्कृतिक मान्यताओं, मूल्यों एवं परम्पराओं से सम्बन्धित होता है और जब भी इनमे परिवर्तन होता है समाज के व्यवस्थित स्वरूप एवं संगठन में भी परिवर्तन होने लगता है, उदाहरण के तौर पर समाज में सांस्कृतिक विविधता का उत्पन्न होना, संस्कृति में आधुनिकता का समावेश, तथा सामाजिक उत्सव, एवं त्यौहारों के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन होना इत्यादि। इस प्रकार सांस्कृतिक प्रकार सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण प्रकार है जो किसी भी समाज की संस्कृति, पारम्परिक मान्यताओं, रीति – रिवाजों प्रथाओं एवं मूल्यों में परिवर्तन को परिलक्षित करता है।

सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. सांस्कृतिक परिवर्तन से धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों मे तो परिवर्तन होता ही है साथ ही यह हमारे आदर्शो को भी परिवर्तित कर देते है।

2. यह परिवर्तन हमारी प्रथाओं में परिवर्तन करके उनसे सम्बन्धित क्रियाकलापों में भी परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। उदाहरण के तौर पर हमारे उत्सवों एवं त्यौहारो को मनाने में होने वाले बदलाव।
3. सांस्कृतिक परिवर्तन हमारी भाषा को भी प्रभावित करता है, अन्य भाषाओं के सम्पर्क में आने से हम कई नवीन भाषाओं को आत्मसात करने लगते है।
4. सांस्कृतिक परिवर्तन से हमारे जीवन जीने के ढ़ग या जीवन स्तर में भी बदलाव परिलक्षित होने लगते है, जिससे हमारे खान – पान की आदते तो परिवर्तित होती ही है साथ ही हमारी वेशभूषा व पहनावा भी परिवर्तित होने लगता है।
5. सांस्कृतिक परिवर्तन ने पुरानी रूढ़िवादी परम्पराओं एव ंअंधविश्वासों को भी समाप्त कर एक नयी चेतना का प्रसार किया है।

2.3.4 आर्थिक प्रकार

सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख प्रकार या आधार आर्थिक होता है। समाज में जब भी कोई परिवर्तन व्यक्ति के आर्थिक पक्ष को प्रभावित करता है, तब उसे आर्थिक परिवर्तन कहा जा सकता है। यह परिवर्तन सबसे अधिक व्यक्ति की आर्थिक संरचना के साथ–साथ उत्पादन के तरीकों में भी बदलाव उत्पन्न करती है।

आर्थिक परिवर्तन की मुख्य विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता हैं।

1. आर्थिक परिवर्तन में उत्पादन के नवीन तकनीको को प्राथमिकता दी जाती है, जिससे उत्पादन क्षमता को विकसित करने के लिए नये साधनों का तो विकास हो, साथ ही उत्पादन प्रणालियों में सुधार की सम्भावनाओं में भी वृद्धि सम्मिलित हो।
2. आर्थिक परिवर्तन में आर्थिक नीतियों में सुधार के साथ–साथ परिवर्तन भी सम्मिलित है।
3. आर्थिक परिवर्तन, आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने का कार्य करती है जिससे उत्पादन क्षमता विकसित हो साथ ही वितरण प्रणाली में भी सकारात्मक सुधार हो सके।
4. आर्थिक परिवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने का कार्य करता है।
5. आर्थिक परिवर्तन में तकनीकी उन्नति को विशेष प्राथमिकता दी जाती है, जिससे आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान की जा सके । आर्थिक प्रकार से समाज में होने वाले परिवर्तन निम्नांकित है।

1– परिवार और विवाह में परिवर्तन :– आर्थिक परिवर्तन ने परिवार और वैवाहिक संस्था मे भी अनेको परिवर्तन किये है उद्योग धन्धों के विकास, यातायात एवं संचार के साधनों के विकसित होने से सामाजिकता गतिशीलता को भी बढ़ावा मिला है, जिसने भारत के परम्परागत परिवारों के स्वरूप में विचारणीय परिवर्तन ला दियें है, साथ ही आर्थिक क्षेत्र में साथ – साथ काम करने से अन्तर्जातीय विवाह एवं विवाह को प्रक्रियाओं में भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है।

2– महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन :– आर्थिक कारकों ने महिलाओं की प्रस्थितियों में परिवर्तन ला दिये है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में यदि बात करे तो महिलाये शिक्षित होकर आत्मनिर्भर हो रही है।

3– वर्ग व्यवस्था में परिवर्तन :– आर्थिक कारकों ने परम्परागत वर्ग व्यवस्थाओं में भी कई परिवर्तन ला दिये है, औद्योगीकरण, और डिजिटल अर्थव्यवस्था के उदय ने समाज के वर्गो को परिवर्तित कर दिया है।

4– जीवन स्तर पर परिवर्तन :– आर्थिक परिवर्तन ने व्यक्तियों के परम्परागत जीवन शैली में भी अनेको परिवर्तन ला दिये है। आधुनिक उपकरणों एवं प्रविधियों के उपयोग से उनके जीवन स्तर में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे है।

2.3.5 राजनैतिक प्रकार

किसी भी समाज को व्यवस्थित एवं नियन्त्रित रखने में उस राज्य की सत्ता की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सत्ता राज्य को संगठित रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। राजनैतिक शक्तियॉ जहॉ एक ओर समाज को विकास की ओर उन्मुख करने का कार्य करती है। वही दूसरी ओर अनेक संवैधानिक अधिनियों, कल्याणकारी नीतियों, योजनाओं एवं दण्ड व्यवस्था के आधार पर व्यक्ति तथा व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करती है। समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में राजनीति में भी परिवर्तन होने लगता है जिसके परिणामस्वरूप समाज की राजनीतिक संरचना, एवं शासन व सत्ता की कार्यप्रणाली में बदलाव या परिवर्तन दृष्टिगत होने लगते हैं। उदाहरण के तौर पर लोकतन्त्र, चुनावी योजनाओं में सुधार या परिवर्तन तथा आगामी चुनाव रणनीतिया इत्यादि।

2.3.6 प्रौद्योगिकीय प्रकार

तकनीकी नवाचारों एवं अनेक नवीन अविष्कारों से उत्पन्न होने वाले परिवर्तन को प्रौद्योगिकी प्रकार कहा जा सकता है जो सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण प्रकार माना जा सकता है।

प्रौद्योगिकी परिवर्तन समाज द्वारा नवीन तकनीको, नये अविष्कारों एवं उपकरणों का सकारात्मक प्रयोग एवं उपभोग के परिणामस्वरूप परिलक्षित होता है। वास्तव में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन समाज के लगभग सभी परिप्रेक्ष्यों को प्रभावित करता है, जिससे जीवन स्तर को और अधिक सुविधाजनक बनाया जा सके साथ ही उत्पादन क्षमता को विकसित करने के साथ–साथ आर्थिक गतिविधियों को भी उच्च बनाया जा सके। उदाहरण के तौर पर इंटरनेट, डिजिटल क्रान्ति, मोबाठल, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजिटल भुगतान इत्यादि।

प्रौद्योगिकीय परिवर्तन को निम्नांकित विशेषताओं के आधार पर समझा जा सकता है।

1 – प्रौद्योगिकीय परिवर्तन में अनेक नयी तकनीको एवं उपकरणों जैसे कप्यूटर आदि को शामिल कर विकास एवं प्रगति मे वृद्धि की जाती है।

2 – नवीन तकनीको के माध्यम से उत्पादन क्षमता में परिवर्तन लाने का कार्य किया जाता है।

3 – प्रौद्योगिकी परिवर्तन से संचार एवं सूचना प्रणाली में भी परिवर्तन होता है।

4 – प्रौद्योगिकी परिवर्तन मानव के सर्वागीण विकास से सम्बन्धित होता है जैसे स्वास्थ्य, आर्थिक, शिक्षा, परिवहन एवं प्रशिक्षण में सुधार कर परिवर्तन की दिशा को एक नये आयाम प्रदान करने का कार्य करता है।

2.3.7 पर्यावरणीय प्रकार

समाजिक परिवर्तन में पर्यावरणीय परिवर्तन एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रकार है जो प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट करता है, प्रायः प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रियाओं मे जब मानवीय हस्तक्षेप अत्यधिक बढ़ जाता है तब प्रकृति में अनेको परिवर्तन आने लगते है, जो समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को प्रभावित करने लगते है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में उसके पर्यावरण एवं भौगोलिक दशाओं का विशेष महत्व होता है। व्यक्ति जिन भौगोलिक परिस्थितियों एवं पर्यावरण में अपना जीवन यापन करता है। उसका जीवन स्तर प्रायः उसी के अनुरूप हो जाता है। अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप ही उसका रहन–सहन, वेशभूषा, तथा खान–पान होता है। जैसे – जैसे भौगोलिक परिस्थितियॉ ंपरिवर्तित होती है उसी प्रकार व्यक्ति भी परिवर्तित जाता है क्योकि अपने परिवर्तित भौगोलिक दशाओं के आधार पर वह समायोजन एवं अनुकूलन करता है और इसी समायोजन एवं अनुकूलन के परिणामस्वरूप उसके व्यवहार एवं विचारों में भी परिवर्तन आने लगता है। उदाहरण के तौर पर जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदाये तथा प्रभाव एवं सतत विकास की दिशा में बनायी गयी नीतिया इत्यादि। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदाये मानवीय गतिविधियों एवं अत्यधिक हस्तक्षेप के फलस्वरूप उत्पन्न होते है।

पर्यावरणीय परिवर्तन की प्रमुख विशेषताये निम्नवत है।

1. पर्यावरण में परिवर्तन होने से व्यक्ति कि भौगोलिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन होने लगता है।
2. पर्यावरणीय परिवर्तन से जलवायु में विभिन्न परिवर्तन परिलक्षित होने लगते है जिससे धरती के सामान्य तापमान मे अचानक वृद्धि होती है, जिससे वर्षा चर्को में भी बदलाव होने लगता है।
3. पर्यावरणीय परिवर्तन से वनसम्पदा नष्ट होने लगती है साथ ही परिस्थितिक तंत्र में भी बदलाव होने लगता है।
4. जलवायु प्रदूषण में वृद्धि होने लगती है, मुख्य रूप से जल, वायु एवं भूमि मे प्रदूषण बढ़ने लगता है।
5. पर्यावरणीय परिवर्तन से कृषि योग्य भूमि भी खराब होने लगती है।
6. ग्लोबल वार्मिग से ग्लेशियर पिघलने लगते है तथा समुद्र के जल स्तर में भी वृद्धि होने लगती है।
7. प्रौद्योगिक परिवर्तन से पर्यावरणीय प्रदूषण की बढोत्तरी होने से अनेक प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं एवं पर्यावरणीय क्षति में बढ़ोत्तरी होने लगती है।

2.3.8 वैचारिकी प्रकार

जैसा की हम सब जानते है कि सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो प्रत्येक समाज में निरन्तर होता रहता है, सामाजिक परिवर्तन मानव समाज के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित कर उनमें परिवर्तन लाने का कार्य करता जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की सोच, दृष्टिकोण एवं मानसिकता में भी निरन्तर परिवर्तन होते रहते है, यही वैचारिक परिवर्तन समाजिक परिवर्तन का एक मुख्य कारक होता है। जिससे मानव की सोच परिवर्तन होने से नये आधुनिक विचारो का जन्म होता है और वह इन्ही नवीन आधुनिक विचारधाराओं के अनुरूप अपना जीवन यापन करने लगता है, परिवर्तित मानसिक सोच एंव विचारों के कारण परम्परागत मान्यताये, रूढिया, संस्कृति, सामाजिक संरचना एवं अधिकारों व कर्त्तव्य धीरे–धीरे परिवर्तित होने लगती है और इसके स्थान पर नये विचारों का समावेश होने लगता है उदाहरण के तौर पर नारीवाद, महिला सशक्तीकरण, समानता का अधिकार, धर्मनिरपेक्षता, रूढ़िवाद विचारों में कमी आदि।

वैचारिक परिवर्तन की मुख्य विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. वैचारिक परिवर्तन से मनुष्य के विचारों एवं मानसिकता में परिवर्तन होने से नवीन विचारों एवं आधुनिक मानसिकता का समावेश होता है।
2. वैचारिक परिवर्तन से परम्परागत धार्मिक विचारों, मान्यताओं एवं परम्पराओं में परिवर्तन आने लगता है।
3. वैचारिक परिवर्तन से समाज की संरचना एवं संस्था में भी व्यापक प्रभाव परिलक्षित होने लगते है जिससे नये सामाजिक सिद्धान्तों और सांस्कृतिक प्रथाओं का जन्म होने लगता है।
4. वैचारिक परिवर्तन से शिक्षा का स्तर उच्च होने लगता है जिससे मानव नवीन विचारधाराओं के महत्व को स्वीकार करता है और उसे आत्मसात करने का प्रयास करता है।

2.4 स्वप्रगति परीक्षण – प्रश्न

सत्य/असत्य लिखिए

1. विकासात्मक परिवर्तन समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य करते है।
2. नवीन तकनीकों के माध्यम से उत्पादन क्षमता में किसी प्रकार की भी वृद्धि नही होती।
3. प्रकृति में मानवीय हस्तक्षेप से जलवायु परिवर्तन की समस्या उत्पन्न होने लगती है।
4. सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया नही मानी जा सकती।
5. विचारधाराओं के परिवर्तन से परम्परागत मान्यताओं एवं प्रथाओं में भी धीरे–धीरे परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है।

2.5 सारांश

सम्पूर्ण अध्याय की विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि समाजिक परिवर्तन एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जो मानव समाज में होने वाले निरन्तर प्रभावों एवं परिवर्तन को परिलक्षित करती है, ये सामाजिक परिवर्तन अनेको प्रकार के होते है, और अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होते है, सामाजिक परिवर्तन के विविध प्रकार एवं कारक समाज के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित कर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव डाल कर समाज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, प्रौद्योगिक, एवं पर्यावरणी दशाओं को परिवर्तित करने का कार्य करती है जिसक फलस्वरूप समाज विकास और प्रगति की ओर उन्मुख होता है, और समाज सकारात्मक दिशा

में आगे बढ़ने का प्रयास करता है, जिससे समाज के सभी वर्गो को समान रूप से लाभ प्राप्त होता है, जो परिवर्तित समाज के समग्र विकास में सहायक होता है। सामाजिक परिवर्तन से जहॉ एक ओर समाज व्यवस्थित एवं संगठित होता है वही दूसरी ओर आर्थिक रूप से सुदृढ़ भी होता है। राजनैतिक परिवर्तन से न्याय एवं समानता का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। इसी प्रकार सामाजिक परिवर्तन से समाज तकनीकी उन्नति, नये अविष्कारों, वैचारिक उन्नति एवं जीवन स्तर में गुणवत्ता को प्राप्त करता है, साथ ही पर्यावरणीय परिवर्तन से होने वाले नकारात्मक प्रभावों को भी हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, जो नीति–निमाण में सहायक होते है।

2.5 पारिभाषित शब्दावली

1. सामाजिक परिवर्तन :– सामाजिक परिवर्तन एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जो समाज के प्रत्येक पक्ष में होने वाले परिवर्तनों अथवा बदलाव को हमारे सम्मुख परिलक्षित करता है।

2. विकासात्मक परिवर्तन :– समाज की संरचना एवं कार्यप्रणाली में विकास को हमारे सम्मुख परिलक्षित करता है।

3. सामाजिक एवं संस्थागत परिवर्तन :– समाज की संस्थाओं और संगठनों में होने वाले परिवर्तनों को परिलक्षित करता हैं।

4. सांस्कृतिक परिवर्तन :– सांस्कृतिक परिवर्तन समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं, मूल्यों एवं संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित होते है।

5. आर्थिक परिवर्तन :– आर्थिक परिवर्तन समाज को सभी आर्थिक प्रक्रियाओं, आर्थिक संरचना एवं उत्पाद एवं उत्पादन के तरीकों में होने वाले बदलाव को स्पष्ट करते है।

6. राजनैतिक परिवर्तन :– राजनैतिक परिवर्तन समाज या राष्ट्र की राजनैतिक संरचना, राजनैतिक कार्यप्रणाली, एवं शासन प्रणालियों में होने वाले परिवर्तन से सम्बन्धित होते है।

7. प्रौद्योगिकीय परिवर्तन :– प्रौद्योगिकीय परिवर्तन नये–नये अविष्कारों, तकनीकी उन्नति एवं नवाचारों के मध्यम से समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करती है।

8. पर्यावरणीय परिवर्तन :– पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन को पर्यावरणीय परिवर्तन के आधार समझा जा सकता है, जैसे – जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदाओं से पड़ने वाले प्रभाव।

9. वैचारिक परिवर्तन :– वैचारिक परिवर्तन व्यक्ति में मानसिक विचारों को परिवर्तित कर एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करने का कार्य करती है जिससे समाज को एक नयी प्रगतिशील मार्ग की ओर अग्रसर करा जा सके।

2.7 स्वप्रगति परीक्षण – प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

2.8 सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. श्यामचरण दुबे, '' विकास का समाजशास्त्र वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2010, पृ0स0 – 13
2. जी0के0 अग्रवाल, '' भारत में सामाजिक परिवर्तन'' एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स, पे0न0 – 03
3. रविन्द्रनाथ मुकर्जी, एवं भरत अग्रवाल ''समाजशास्त्र'' – 2018 एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स पे0न0– 07
4. जी0के0 अग्रवाल, ''भारत में सामाजिक परिवर्तन'' एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स, पे0न0 – 56

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए उसके प्रकारों की विवेचना कीजिए?
2. सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत कीजिए?
3. सामाजिक परिवर्तन पर प्रौद्योगिकी परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ता है?

4. प्रौद्योगिकी एवं आर्थिक परिवर्तन को स्पष्ट कीजिए?

5. वैचारिक परिवर्तन से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए?

इकाई 3: सामाजिक उद्विकास
Social Evolution

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 सामाजिक उद्विकास

3.2.1 सामाजिक उद्विकास का अर्थ एवं परिभाषाएं

3.2.2 सामाजिक उद्विकास की विशेषताएं

3.2.3 सामाजिक उद्विकास के स्तर या अवस्थायें

3.2.4 सामाजिक उद्विकासकी वास्तविकता: एक समालोचना

3.3 सारांश

3.4 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। भिन्न-भिन्न समाज में परिवर्तन की गति भिन्न-भिन्न हो सकती है। समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होती है जैसे उद्विकास, प्रगति, विकास, सामाजिक आन्दोलन एवं क्रांति इत्यादि। उपरोक्त प्रक्रियाओं का सामाजिक परिवर्तन के साथ गहन सम्बन्ध है। कभी-कभी इन प्रक्रियाओं को सामाजिक परिवर्तन के पर्यायवाची के रूप में भी प्रयोग किया गया है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में इन प्रक्रियाओं को समझना अति आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक उद्विकास का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करेगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्वरूपों में से सामाजिक उद्ववविकास को स्पष्ट करना है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः

1. उद्ववविकास की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. उद्ववविकास अवधारणा की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

3.2 सामाजिक उद्ववविकास

उद्ववविकास शब्द अंग्रेजी के 'Evolution' का हिन्दी रूपान्तरण है। Evolution' शब्द लैटिन भाषा के 'Evolvere' शब्द से लिया गया है। 'Evolvere' शब्द E+Volvere का युग्म है जिसमें E का अर्थ है 'बाहर की ओर तथा Volvere का अर्थ है फैलना। इस प्रकार उद्ववविकास (Evolution) का शाब्दिक अर्थ हुआ बाहर की और फैलना। अतः उद्ववविकासका अर्थ हुआ आन्तरिक शक्ति, तत्व एवं गुणों का बाहर की और फैलना।

'उद्ववविकास' शब्द का प्रयोग करने वाले विद्वानों में चार्ल्स डार्विन का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने उद्ववविकास शब्द का प्रयोग जीव विज्ञान में किया। डार्विन के अनुसार उद्ववविकास की प्रक्रिया में जीव की संरचना सरलता से जटिलता की ओर बढ़ती है। यह प्रक्रिया 'प्राकृतिक चयन' के सिद्धांत पर आधारित है। हरर्बट स्पेन्सर ने जैविक परिवर्तन की भाँति ही सामाजिक परिवर्तन को भी कुछ आन्तरिक शक्तियों के कारण संभव माना है। संक्षेप में उद्ववविकास वह प्रक्रिया है जिसके प्रारम्भ में किसी जीव, वस्तु अथवा व्यवस्था का स्वरुप सरल होता जाता है और जैसे-जैसे यह प्रक्रिया आगे बढती है उसका स्वरूप जटिल होता जाता है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में उद्ववविकास की अवधारणा को स्पष्ट करने हुए मैकाइवर तथा पेज ने कहा है" उद्ववविकास एक किस्म का विकास है। लेकिन प्रत्येक विकास उद्ववविकासनही हो सकाता

क्योंकि विकास में एक निश्चित दिशा होती है। जबकि उद्ववविकास की कोई निश्चित दिशा नहीं होती, वह किसी भी दिशा में हो सकती है। मैकाइवर तथा पेज ने बताया कि उद्ववविकासकेवल आकार में ही नहीं अपितु संरचना में भी विकास है। यदि किसी समाज के आकार में वृद्धि नहीं होती लेकिन उसका आन्तरिक रूप पहले से जटिल हो जाता है तो उसे उद्ववविकास कहेंगे। विकास में वृद्धि एक निश्चिचत दिशा में होती है अतः उद्ववविकासकी प्रक्रिया को विकास नहीं कहा जा सकता। उद्ववविकासएक आन्तरिक प्रक्रिया है जो स्वतः प्राकृतिक नियमों से संचालित होती है। वर्ण व्यवस्था का जाति व्यवस्था में परिवर्तित होना उद्ववविकास का एक उदाहरण है। क्योंकि वर्ण व्यवस्था की तुलना में जाति व्यवस्था में अधिक जटिलता आयी है।

उद्ववविकास वह प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक परवर्ती अवस्था का पूर्ववर्ती अवस्था से आवश्य कोई सम्बंध होता है। इसमें वृद्धि, विकास एवं निरंतरता की तीनों घटनाएं सन्निहित होती है। उद्ववविकास परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु की अन्तर्निहित विशेषताएं अपने आपको धीरे-धीरे प्रकट एवं प्रस्फुटित करती है। इस अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने सन 1859 में जीवों के विकास को समझने हेतु किया था। सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में इस अवधारणा का प्रयोग स्पेन्सर ने किया था। उन्होने उद्ववविकास की व्याख्या करते हुए लिखा है कि उद्ववविकास पदार्थ का एकीकरण तथा गति का अपव्यय है। इस प्रक्रिया में पदार्थ एक अनिश्चित एवं ससम्बध समानता से निश्चित एवं सुसम्बध विभिन्नता की ओर अग्रसर होता है।

3.2.1 सामाजिक उद्ववविकास की परिभाषा

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार "उद्ववविकास परिवर्तन की एक दिशा है जिसमें की बदलते हुए पदार्थ की बहुत सी दशाएं प्रकट होती है ओर जिसमें की उस पदार्थ की वास्तविकता का पता चलता है।"

हॉबहाउस के अनुसार "उद्ववविकास से तात्पर्य किसी भी प्रकार की वृद्धि से है।"

ऑगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार " उद्ववविकास केवल मात्र एक निश्चित दिशा में परिवर्तन है।"[1]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हमें यह स्पष्ट होता है कि उद्ववविकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु, व्यवस्था अथवा जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। उद्ववविकास की प्रक्रिया में किसी जीव वस्तु अथवा व्यवस्था की आन्तरिक विशेषताओं का प्रस्फुटन होता है।

उद्ववविकासवादियों की मान्यता है कि प्राणी के विकास की भांति समाज, संस्कृति तथा सामाजिक संस्थाओं का भी विकास विभिन्न स्तरों से हुआ है। विकास का यह क्रम आदिकाल से सरलता से जटिलता, समानता से विभिन्नता तथा अनिश्चितता से निश्चितता की ओर चलता रहता है। उद्ववविकास की अवधारणा का प्रयोग मोर्गन ने विवाह एवं परिवार, टायलर ने धर्म, कोम्ट ने दर्शन तथा स्पेन्सर ने सभ्यता के विकास को समझने में किया है। जैविक उद्ववविकास की प्रक्रियाओं जैसे अस्तित्व के लिए संघर्ष, प्रवरण तथा अनुकूलन आदि को सामाजिक उद्ववविकास की प्रक्रिया के समकक्ष स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन ये प्रक्रियायें समाजिक उद्ववविकास की प्रक्रियाओं के समकक्ष कदापि नहीं है। हरबर्ट स्पेन्सर ने समाज के विकास के संबंध में यह धारणा प्रकट की है कि वर्तमान के औद्योगिक समाजों का विकास आदिम अथवा असभ्य कहे जाने वाले समाजों से हुआ है। किन्तु विभिन्न सामाजिक संगठनों पर निर्मित आधुनिक समाजों को एक रेखीय विकास का परिणाम नहीं माना जा सकता।

स्वप्रगति परीक्षण

1 सामाजिक उद्ववविकास के बारे में मेकाइबर एवं पेज के विचार लिखें।

.....

.....

3.2.2 सामाजिक उद्ववविकास की विशेषताएं

सामाजिक उद्ववविकास की प्रक्रिया को उसकी विषेषताओं के आधार पर और स्पष्टता से समझा जा सकता है।

1. **सरलता से जटिलता की ओर-** उद्वविकास की प्रक्रिया में परिवर्तन सरलता से जटिलता की और होता है। जिस प्रकार आदिम सामाजिक व्यवस्था सरल तथा आधुनिक समाजिक व्यवस्था अपेक्षाकृत जटिल है।

2. विभिन्न अंगों में स्पष्टता- उद्वविकास की प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती है त्यों-त्यों प्राणी, वस्तु अथवा सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न अंग जैसे समिति, संस्था एवं अन्य संगठन के स्वरूप में स्पष्टता आती जाती है।

3. श्रम विभाजन में विशेषीकरण- उद्वविकास की प्रक्रिया में प्राणी या वस्तु के अंगों में स्पष्टता आने के साथ-साथ उन अंगों के कार्य भी निश्चित हो जाते हैं। उसी प्रकार समाज के विभिन्न अंगों जैसे समिति, संस्था व अन्य संगठनों के कार्य भी निश्चित हो जाते हैं तथा उनका विशेषीकरण हो जाता है।

4. अनिश्चिता- उद्वविकास की प्रक्रिया की भांति ही सामाजिक उद्वविकास की प्रक्रिया में यह कहना अनिश्चित है कि एक समय अन्तराल पर अथवा विकसित सामाजिक व्यवस्था का स्वरुप क्या होगा। दूसरे शब्दों में उद्वविकास की प्रक्रिया में परिवर्तन के परिणाम अनिश्चित होते है।

5. निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया- उद्वविकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इस प्रक्रिया की गति समय व देशकाल के अनुसार भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न भिन्न हो सकती हैं।

6. उद्वविकास के निश्चित स्तर- डार्विन की मान्यता है कि उद्वविकास की प्रक्रिया जीवन में जन्म, बचपन, युवावस्था, बूढ़ापा तथा अन्ततः मृत्यु विभिन्न स्तरों या सोपानों से होकर गुजरती है। उसी प्रकार समाज भी उद्वविकास की प्रक्रिया के अनुरूप विभिन्न स्तरों से होकर गुजरता है। इसी प्रकार समाज भी सर्वप्रथम शिकार करने की अवस्था, इसके उपरान्त चारागाह की अवस्था और फिर कृर्षि अवस्था से होते हुए अब औद्योगिक अवस्था में आया है।

3.2.3 सामाजिक उद्वविकास के स्तर या अवस्थायें

सामाजिक उद्ववविकासके लिए हरबर्ट स्पेन्सर ने डार्विन के योग्यतम की विजय (सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट) और (स्ट्रगल फॉर सर्वाइवल) अस्तित्व के लिए विकास के जैवकीय सिद्धान्तों को समाज पर लागू किया है। ऑगबर्न ने सामाजिक विकास के चार पहलू बताए-

(1) आविष्कार (Invention),

(2) संचय (Accumulation),

(3) प्रसार (Diffusion)

(4) सामंजस्य (Adjustment)।

वास्तव में बहुत से विद्वानों ने सामाजिक उद्ववविकास के इस सिद्धान्त का समर्थन किया है और इसकी अलग-अलग परिभाषायें दी हैं। इसी क्रम मे हाबहाउस के कहते हैं "मैं उद्ववविकास किसी भी प्रकार की वृद्धि समझता हूँ। सामाजिक प्रगति से सामाजिक जीवन के उन गुणों की वृद्धि समझता हूँ, जिनसे मानव प्राणी बुद्धिपूर्वक कुछ मूल्य जोड़ सकें।"[2] सामाजिक उद्ववविकास का सिद्धान्त समाज की क्रमिक प्रगति को मानता है। लेकिन कुछ विद्वान सामाजिक उद्ववविकासको क्रमिक नहीं मानते हैं। उनके अनुसार सामाजिक उद्ववविकाससमरैखिक (Unilinear) होता है पर कुछ अन्य विद्वान इसे चक्रिय (Cyclical) मानते हैं।

मॉर्गन, वैखोफन, हैडन और इंगेल्स कहते हैं कि प्रत्येक समाज निम्न तीन परिस्थितियों से विकसित होता है-

(1) वन्यावस्था (Savagery)

(2) बरर्बता Barbar- ism)

(3) सभ्यता (civilization)।

इसी तरह, विद्वान प्रत्येक समाज के आर्थिक विकास के चार चरणों को मानते हैं-

(1) आखेट (Hunting)

(2) पशुपालन (Pastoral)

(3) कृषि अवस्था (Agricultural),

(4) औद्योगिक अवस्था (Industrial)

विकासवादी सिद्धांतकारों ने प्रौद्योगिकी के विकास के कालक्रम के तीन स्तर बतायें हैं-

(1) प्रस्तर युग

(2) कांसा युग

(3) लौह युग

विकासवादी सिद्धांतकारों ने भी विवाह, परिवार, धर्म, सम्पत्ति, कानून, राज्य आदि मानव समाज के विभिन्न अंगों में विकास की अलग-अलग अवस्थायें दिखाने की कोशिश की है।

मैकाइवर का वर्गीकरण

समाजशास्त्री मैकाइवर का कहना है कि सामाजिक उद्वविकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया का वर्णन नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसका एक स्पष्ट चित्रण किया जा सकता है। मैकाइवर ने इस उद्वविकास की अवस्थाओं को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया है-

(1) सामूहिक प्रथायें (Cummunal Customs)

(2) विभेदीकृत सामूहिक संस्थायें (Differentiated Communal Institutions)

(3) विभेदीकृत समितियां (Differentiated Associations)

(1) सामूहिक प्रथायें- आदिम समाजों में कई सामूहिक प्रथाएं थीं जो सभी लोग मानते थे। आदिम समाजों पर इन सामूहिक प्रथाओं का शासन था। ये ही आदिम लोगों का सामाजिक जीवन नियंत्रित करते थे। उस समय सामाजिक जीवन के अलग-अलग हिस्सों को समझाने के लिए अलग-अलग प्रथायें नहीं थीं। इसलिए, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक सभी कामों को सामूहिक तरीकों से ही किया जाता था, जैसे कि एक समाज में मुखिया होने पर मुखिया ही धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी कार्यों में अध्यक्ष का काम करता था। वह समाज का राजा, पुजारी और अगुआ था। इस समय, ऐसे कार्यों के लिए अलग-अलग समितियां या संस्थाएं नहीं बनीं।

(2) विभेदीकृत सामूहिक संस्थायें- मैकाइवर ने कहा कि विभेदीकृत सामूहिक व्यवहार सामाजिक उद्वविकासकी दूसरी अवस्था हैं। जब समाजों की जनसंख्या बढ़ती है, नई समस्याएं और आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं। विभिन्न रुचि और प्रवृत्तियां हैं। विभिन्न उद्देश्यों, रुचियों, आवश्यकताओं और प्रवृत्तियों

को पूरा करने के लिए अलग-अलग संस्थाओं को अलग-अलग भूमिकाएं दी जाती हैं। प्रत्येक वर्ग अपनी संस्थाएँ बनाता है, और उनकी देखभाल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को करनी होती है। इससे समाज में अलग-अलग कामों की विशेष प्रणालियाँ और विधि निषेध (Taboos) लागू होते हैं। नई संस्थाएँ बनती हैं ताकि प्राकृतिक शक्तियों पर नियंत्रण रखें और उनके छिपे हुए फायदे निकालें। उदाहरण के लिए, जादू टोना करने वाले ओझा, जाति को के नियमों को पूरा करने वाले कर्मकांडए मंत्र-तंत्र और अभिचार की विधियाँ करने वाले व्यक्ति अपने विशेष वर्ग बना लेते हैं। इसी प्रकार, परिवार विवाह, आर्थिक और राजनीतिक कार्यों के लिए अलग-अलग संस्थाएँ बन जाती हैं।

(2) विभेदीकृत समितियाँ- मैकाइवर ने सामाजिक विकास की तीसरी अवस्था को "विभेदीकृत समितियाँ" कहा है। इस अवस्था में विभिन्न संस्थाएँ क्रमशः समितियों में बदल जाती हैं। उदाहरण के लिए, राज्य, आर्थिक संगठन, परिवार, स्कूल, चर्च आदि सभी विभिन्न समितियों का रूप ले लेते हैं। संस्थाओं से समितियों में बदलने की प्रक्रिया में समाज के विकास में काफी समय लगता है। आदिम समाजों में इस बदलाव की प्रक्रिया धीमी होती है क्योंकि उनमें आवश्यक लचीलापन और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विशेषीकरण का अभाव होता है। आदिम समाजों में सामूहिक प्रथाओं का जोर होता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इन्हीं का महत्व होता है।

इसके विपरीत, आधुनिक समाजों में ज्ञान की वृद्धि और श्रम-विभाजन के कारण समितियों के निर्माण की उपयुक्त परिस्थिति बन गई है। इसलिए जीवन के विभिन्न कार्य अलग-अलग समितियों को सौंप दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन काल में परिवार ही संतानोत्पत्ति, मनोरंजन, शिक्षा, और आर्थिक उत्पादन जैसे कार्य करता था। अब ये कार्य परिवार से अलग हो कर अन्य समितियों द्वारा किए जाते हैं।

सामाजिक विकास की इस अवस्था में धार्मिक और राजनैतिक संस्थाएँ भी अलग हो जाती हैं। दूसरी अवस्था में ये संस्थाएँ एक-दूसरे के साथ जुड़ी होती हैं, जबकि तीसरी अवस्था में राज्य धर्मनिरपेक्ष हो जाता है और धार्मिक समितियाँ स्वतंत्र हो जाती हैं। इस प्रकार, सामाजिक विकास की इस अवस्था में धार्मिक संस्थाएँ समितियों का रूप ले लेती हैं।

समाज के उद्ववविकास की उपरोक्त व्याख्या को हर समाजशास्त्री स्वीकार नहीं करते हैं। उदाहरण के लिए, गिन्सबर्ग ने इसमें गंभीर संदेह व्यक्त किया है कि विकास समाज को सरल से जटिल बनाने की निरंतर प्रक्रिया है। सामाजिक उद्ववविकासकी अवस्थाओं पर जितने सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं, उन सभी की कुछ न कुछ समीक्षा की गई है। इसमें कोई सामाजिक उद्ववविकासकी प्रक्रिया बहुत जटिल है, इसलिए सर्वसम्मत सिद्धान्त प्रस्तुत करना भी मुश्किल है।

स्वप्रगति परीक्षण-2

1 विकासवादी सिद्धांतकारों ने प्रौद्योगिकी के विकास के स्तर हैं।

(क) प्रस्तर युग (ख) कांसा युग (ग) लौह युग (घ) उपरोक्त सभी

2 आर्थिक विकास के चार चरणों को कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित कीजिये -

(1) आखेट

(2) पशुपालन

(3) कृषि अवस्था

(4) औद्योगिक अवस्था

(नीचे दिए गए विकल्पों में से सही उत्तर का चयन करें)

(क) 1,2,3,4

(ख) 2,3,4,1

(ग) 4,3,2,1

(घ) 1,3,2,4

3.2.4 सामाजिक उद्ववविकास की वास्तविकता: एक समालोचना

सामाजिक उद्ववविकासके समर्थकों ने अपने सिद्धांत को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है, लेकिन कई महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी की गई है। इसलिए, इस सिद्धांत को हमेशा उचित मानना एक बड़ी भूल हो सकती है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर चर्चा की जा रही है जो इस सिद्धांत की वास्तविकता को समझने में मदद करेंगे:

1. **समाज और प्राणी का विकास समान नहीं**: मैकाइवर के अनुसार, समाज और प्राणियों का विकास समान रूप से नहीं होता। प्राणियों के विकास में यह सिद्धांत महत्वपूर्ण हो सकता है, लेकिन समाज के विकास को यह स्पष्ट नहीं कर पाता। सामाजिक संबंध आंतरिक शक्तियों से उतने प्रभावित नहीं होते जितने कि बाहरी सामाजिक दशाओं से। इसलिए, सामाजिक संबंधों और ढाँचे में होने वाले परिवर्तनों को इस सिद्धांत द्वारा नहीं समझा जा सकता।
2. **संस्कृति का प्रसार**: गोल्डनवीजर का मानना है कि सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण संस्कृति का प्रसार (cultural diffusion) है, जिसे उद्विकासीय क्रम के माध्यम से स्पष्ट नहीं किया जा सकता।
3. **विभिन्न समाजों में भिन्नता**: इस सिद्धांत के अनुसार, सभी समाज समान स्तरों से गुजरते हुए वर्तमान स्थिति तक पहुंचे हैं। लेकिन अगर यह सच है, तो विभिन्न समाजों के सामाजिक संगठन और ढाँचे में इतना अंतर क्यों है? इससे यह साबित होता है कि विकास के विभिन्न स्तर सभी समाजों में समान नहीं रहे हैं।
4. **सरल से जटिल दिशा में परिवर्तन**: गिन्सबर्ग का कहना है कि यह धारणा कि उद्वविकास एक सरल स्थिति से जटिल दिशा में होने वाला परिवर्तन है, विवाद का विषय है। सामाजिक जीवन प्रत्येक परिवर्तन के साथ अनिवार्य रूप से जटिल नहीं होता, बल्कि इसकी संभावना मात्र होती है।
5. **आधुनिक समाजशास्त्रियों का दृष्टिकोण**: आज अधिकांश समाजशास्त्री मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन को उद्वविकासके बजाय आविष्कारों, संचय की प्रवृत्ति, सांस्कृतिक प्रसार और अभियोजन की प्रक्रिया के माध्यम से समझा जा सकता है।
6. **उद्वविकासका सिद्धांत भ्रांतिपूर्ण**: वर्तमान खोजें साबित करती हैं कि उद्वविकास का सिद्धांत, जिस पर डार्विन ने मनुष्य के उद्भव की चर्चा की थी, केवल एक कल्पना मात्र थी। 1966 में इटली में मिले कुछ नर कंकाल इस बात की पुष्टि करते हैं। यदि उद्वविकासका सिद्धांत ही एक

भ्रांति है, तो इसके आधार पर समाज और सामाजिक जीवन के परिवर्तन को स्पष्ट करना उचित नहीं हो सकता।

हालांकि, सामाजिक परिवर्तन की धारणा को स्पष्ट करने में उद्ववविकासका सिद्धांत महत्वपूर्ण नहीं बन पाया है, लेकिन कुछ सामाजिक विशेषताओं को समझाने में यह सहायक रहा है। मैकाइवर ने कहा है कि "विभिन्न अवस्थाओं को एक-दूसरे से पृथक करने में इस सिद्धांत ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।" इसके अलावा, सभ्यता में होने वाली प्रत्येक वृद्धि के साथ समाज का रूप सरल से जटिल होता जाता है, इसे भी यह सिद्धांत स्पष्ट करता है।

इस समालोचना के बाद भी यह नहीं भूलना चाहिए कि 'उद्विकास' एक अस्पष्ट और भ्रमपूर्ण शब्द है, और किसी भी संस्था या सामाजिक तथ्य की विवेचना करते समय इसके प्रयोग से बचना ही हमारे हित में है।

3.3 सारांश

समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया विभिन्न स्वरूपों जैसे उद्ववविकास, प्रगति, विकास, सामाजिक आन्दोलन तथा क्रांति आदि के रूप में निरन्तर चलती रहती है। परिवर्तन की पति इसके विभिन्न स्वरूपों के लिए उत्तरदायी है। परिवर्तन की यह गति ही सामाजिक परिवर्तन को उद्विकास, विकास, प्रगति अथवा क्रांति आदि बना देती है।

सामाजिक उद्ववविकास, जिसे अंग्रेजी में 'Evolution' कहा जाता है, का अर्थ है आंतरिक शक्ति, तत्व एवं गुणों का बाहर की ओर प्रस्फुटित होना। चार्ल्स डार्विन ने इस अवधारणा का प्रयोग जीव विज्ञान में किया, जबकि समाजशास्त्र में हरबर्ट स्पेन्सर ने इसे अपनाया। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में, उद्ववविकास एक आंतरिक प्रक्रिया है जो समाज के विभिन्न अंगों में स्पष्टता, श्रम विभाजन में विशेषीकरण और निरंतरता की प्रक्रिया को दर्शाती है।

उद्ग्विकास की अवधारणा का स्वरूप जैविक है। इसमें समाज सरलता से जटिलता की ओर अग्रसर होता है। उद्ग्विकास की प्रक्रिया में सामाजिक उत्तरीकरण न्यूनतम होता है और सजातियता अधिक होती है। इसमें परिवर्तन की दिशा निश्चित नही होती तथा परिवर्तन की गति धीमी होती है। उद्ग्विकाससामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है।

इसमें प्रत्येक परवर्ती अवस्था का पूर्ववर्ती अवस्था से संबंध होता है। हालांकि, कुछ आलोचक इस सिद्धांत को सीमित मानते हैं, यह अवधारणा समाज के विकास को समझने में सहायक रही है। मैकाइवर और पेज के अनुसार, "उद्ग्विकास परिवर्तन की एक दिशा है जिसमें बदलते हुए पदार्थ की बहुत सी दशाएं प्रकट होती हैं और उस पदार्थ की वास्तविकता का पता चलता है।" समग्रतः, सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया को समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह समाज के विकास और उसके विभिन्न स्वरूपों को स्पष्ट करती है।

3.4 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

स्वप्रगति परीक्षण-1

1 मैकाइवर एवं पेज के अनुसार- "उद्ग्विकास परिवर्तन की एक दिशा है जिसमें की बदलते हुए पदार्थ की बहुत सी दशाएं प्रकट होती है ओर जिसमें की उस पदार्थ की वास्तविकता का पता चलता है।"

स्वप्रगति परीक्षण-2

1- (घ) 2- (क)

3.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. “Evolution is merelya a change in a given direction”- Ogburn and Nimkoff. *A Handbook of sociology, Rotledge and Kegan Poul Ltd, Landon, 1959 P.603.*

2. "By evolution I mean any sort of growth, by social progress the growth of social life in respect of those qualities to which human beings can attach or can rationally attach values."
3. जे० पी० सिंह (2004) समाजसास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।
4. जे० पी० सिंह (1999) सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।
5. एस० एल० दोषी एवं पी० सी० जैन (2009) समाजसास्त्र: नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
6. नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) समाजसास्त्र विवेचन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
7. विद्याभूषण एवं डी० आर० सचदेव (2010) समाजसास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, नई दिल्ली।हरिकृष्ण रावत (2002): समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
8. Abrahas, Philip (1982): Historical Sociology, Cornell University Press, Ithaca NY.
9. Arendt, Hannah (1963): On Revolution, Faber and Faber, London.
10. Giddens, Anthony (1998): Sociology, Polity Press, Cambridge.
11. K.L. Sharma (2007): India Social Structure and Change, Rawat Publications, New Delhi.
12. M.N. Srinivas (2009): Social Change in Modern India, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.
13. T.B. Bottomore (1970): Sociology: A Guide to Problem and Litrature, S. Chand and Company, New Delhi.

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.सामाजिक उद्वविकास से आप क्या समझते है। व्याख्या कीजिए।

2. सामाजिक उद्वविकास के सिद्धांत की विषेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

इकाई4: सामाजिक प्रगति
Social Progress

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2प्रगति अर्थ एवं परिभाषा

4.3 प्रगति की विषेशताएं

4.4 सामाजिक प्रगति के मापदण्ड (आधार)

4.5 सामाजिक प्रगति में सहायक दशायें

4.6 प्रगति एवं उद्वविकास में अन्तर

4.7 सारांश

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

4.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

उद्वविकास की भांति प्रगति भी परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है। जब कोई परिवर्तन हितकारी या लाभकारी होता है तो उसे प्रगति कहते है। प्रगति में सामूहिक हित और समाज कल्याण की भावना निहित होती है। प्रगति समाजिक परिवर्तन की एक निश्चित दिशा को दर्शाती है। कुछ प्रारम्भिक विद्वानों ने प्रगति

एवं उद्ववविकास को समान अर्थों में प्रयोग किया है। इकाई-3 में उद्ववविकासके अध्ययन के बाद यह विदित हो गया है कि प्रगति और उद्ववविकास दोनों भिन्न अवधारणायें है।

सामाजिक पुनर्जागरण और नवीन चिन्तन के युग में यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो गया है कि सामाजिक प्रगति किस तरह का बदलाव है और क्या यह एक वैज्ञानिक संकल्पना है? भारत में लंबे समय तक परम्परागत जीवन और रूढ़िवादी धर्म का पालन को ही प्रगति कहा जाता था. हालांकि, एक अवधारणा के रूप में, प्रगति का तात्पर्य एक विशेष प्रकार के परिवर्तन से है, जिसमें परिवर्तन की एक विशेष दिशा और कुछ विशिष्ट मूल्य शामिल हैं। इस दृष्टिकोण से प्रगति की वैज्ञानिक व्याख्या करना आवश्यक है।

सामाजिक परिवर्तन का दूसरा प्रमुख स्वरूप प्रगति है। प्रगति समाज के सदस्यों द्वारा, समाज द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति का परिणाम है। प्रगति में सामूहिक हित और समाज कल्याण की भावना निहित होती है। प्रगति समाजिक परिवर्तन की एक निश्चित दिशा को दर्शाती है। प्रगति का उद्देश्य किसी न किसी रूप में समाजिक व्यवस्था के लिए लाभकारी होता है।

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप की विस्तृत चर्चा करना है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त-

1 प्रगति की अवधारणा को समझ सकेंगे।

2 प्रगति की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

3 प्रगति के आधार तत्वों को जान पाएंगे।

4 सामाजिक प्रगति में सहायक दशाओं को समझ सकेंगे।

5 उद्ववविकासएवं प्रगति की अवधारणा में अन्तर स्पष्ट समझ सकेंगे।

4.2 प्रगति अर्थ एवं परिभाषा

अंग्रेजी शब्द 'Progress' की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'Progredior' से हुई है, जिसका अर्थ 'आगे बढ़ना' या 'प्रगति करना' है। यह स्पष्ट करता है कि प्रगति का अर्थ समाज में ऐसे परिवर्तनों से है जो हमें 'आगे की ओर' ले जाएं। हालांकि, 'आगे की ओर बढ़ना' शब्द जितना सरल लगता है, इसका वास्तविक अर्थ उतना ही जटिल और तुलनात्मक है। विभिन्न काल, स्थान, और समूहों में इसे अलग-अलग रूप से परिभाषित किया गया है।

राजतंत्र और सामंतवादी व्यवस्था के समय, प्रगति का अर्थ जनता से अधिक-से-अधिक कर वसूलने और बेगार लेने में सफलता प्राप्त करना था। अठारहवीं शताब्दी में, राजकीय शोषण से मुक्ति को प्रगति माना गया, जबकि उन्नीसवीं शताब्दी से प्राकृतिक संसाधनों के अधिकतम उपयोग को प्रगति का आधार समझा जाने लगा। आज प्रगति का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि इसकी परिभाषा को किसी एक सीमा में बाँधना लगभग असंभव हो गया है। प्रगति एक तुलनात्मक धारणा है। जो स्थिति हमारे लिए प्रगति हो सकती है, वही कुछ पश्चिमी देशों के लिए 'पिछड़ापन' हो सकती है। इसी प्रकार, जो दूसरे समाजों के लिए 'प्रगति' है, उसे हम अनैतिकता और शोषण कह सकते हैं। इस प्रकार, 'प्रगति' शब्द इतना विवादास्पद है कि इसकी कोई सर्वसम्मत और वैज्ञानिक परिभाषा देना कठिन हो जाता है। मैकाइवर ने इसे वातावरण के अनुसार 'गिरगिट की तरह रंग बदलने वाला तथ्य' कहा है। प्रगति की अवधारणा को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई प्रगति की परिभाषाओं का अवलोकन करना होगा।

आगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार "प्रगति का अर्थ अच्छाई के निमित्त परिवर्तन है और इसलिए प्रगति में मूल्य निर्धारण होता है।"

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार "जब हम प्रगति की चर्चा करते है तो हम केवल दिषा को सूचित नहीं करते, अपितु उस दिशा को जो हम किसी अन्तिम लक्ष्य, किसी उद्देश्य की ओर ले जाती है जिसे आदर्श रूप में निश्चित किया गया है, न कि कार्यरत शक्तियों के वस्तुपरक विचार से।"

लूम्ले के अनुसार "प्रगति परिर्वतन है परन्तु यह इच्छित अथवा मान्यता प्राप्त दिशा में परिर्वतन है न कि किसी भी दिशा में।"

हॉरनेल हार्ट के अनुसार "सामाजिक प्रगति सामाजिक ढाँचे में वे परिवर्तन हैं जो कि मानवीय कार्यों को मुक्त करें, प्रेरणा और सुविधा प्रदान करें तथा उसे संगठित करें।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रगति से तात्पर्य अच्छाई की दिशा में परिवर्तन से है। प्रगति से एक इच्छित दिशा में विकास का बोध होता है और वह विकास हमेशा इच्छित विकास होता है। प्रगति में श्रेष्ठतर की ओर परिवर्तन का विचार निहित होता है। इससे मूल्याकंन किया जाता है। मानकों के संदर्भ के बिना प्रगति की कामना नही की जा सकती। वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार होना प्रगति का उदाहरण है, क्योंकि इसके माध्यम से समाज को एक इच्छित दिशा में ले जाना चाहते है। सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ अथवा दशाएं है जो प्रगति की प्रक्रिया में सहायक होती है। इन परिस्थितियों में शिक्षा का उच्च स्तर, प्रौद्योगिकीय उन्नति, नवीन अविष्कार, अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण, स्वतंत्रता एवं समानता, आदर्श जनसंख्या एवं स्वास्थ्य और उन्नतशील एवं योग्य नेता इत्यादि सम्मिलित हैं।

4.3 प्रगति की विषेशताएं

1. प्रगति एक इच्छित या विशिष्ट दिशा में परिवर्तन है।
2. प्रगति समाज के सदस्यों द्वारा, समाज द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति का परिणाम है।
3. प्रगति में सामूहिकता की भावना निहित होती है।
4. प्रगति में परिवर्तन की दिशा निश्चित होती है।
5. प्रगति की धरना बदलती रहती है
6. प्रगति में लाभ की सम्भावना की अधिकता तथा हानि की न्यूनता होती है।

इस प्रकार हम समझ सकते है कि प्रगति की प्रक्रिया परिवर्तनशील है। प्रगति का अर्थ भिन्न भिन्न समाजों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है। प्रगति का उद्देश्य किसी न किसी रूप में सामाजिक व्यवस्था के लिए

लाभकारी होता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रगति स्वस्थ एवं प्रगतिशील समाज का अभिन्न एवं आवश्यक अंग है।

स्वप्रगति परीक्षण-1

1. सामाजिक प्रगति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए हारनेल हार्ट ने क्या कहा है ?

.....

.....

.....

2. सामाजिक प्रगति की कोई चार विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 सामाजिक प्रगति के मापदण्ड (आधार)

गति का मानदंड क्या होना चाहिए? समाज में लक्ष्यों की कोई निश्चित सीमा नहीं होती, और विभिन्न समूहों के लक्ष्य एक-दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। एक समय में सभी लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं होती, तो ऐसे में प्रगति का आधार क्या हो सकता है? इस संदर्भ में कई विद्वानों ने अलग-अलग कसौटियों के आधार पर प्रगति को समझाने का प्रयास किया है। भौतिकवादी विचारधारा के अनुसार, आर्थिक साधनों में वृद्धि ही प्रगति का एकमात्र मापदंड है। इसके विपरीत, नैतिकतावादी प्रगति को आध्यात्मिकता, चारित्रिक गुणों और मानवीय मूल्यों की वृद्धि के संदर्भ में देखते हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री काम्ट ने भी कहा

है कि नैतिक और आध्यात्मिक तत्व प्रगति के महत्वपूर्ण आधार हैं, जिनके बिना प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती। जीववादी दृष्टिकोण से, जनसंख्या के गुणों जैसे रक्त की पवित्रता, स्वास्थ्य, दीर्घायु और शारीरिक शक्ति की वृद्धि को प्राथमिकता दी जाती है। कुछ विद्वानों ने संस्थागत नियंत्रण की वृद्धि को प्रगति का आधार माना है। बुद्धिवादियों के अनुसार, ज्ञान का संग्रह सबसे महत्वपूर्ण है, जबकि कलाकार संगीत और चित्रकला की उन्नति को सामाजिक प्रगति मानते हैं।

उपर्युक्त विचारों को उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि सभी वर्गों ने अपने-अपने हितों और विशेष समय की सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ये विचार प्रस्तुत किए हैं। उद्योगपति अधिक जनसंख्या को प्रगति का आधार इसलिए मानते हैं ताकि उन्हें कम मजदूरी पर अधिक श्रमिक मिल सकें, जबकि धर्मशास्त्री इसलिए अधिक जनसंख्या चाहते हैं ताकि उनके धर्म का अधिक विस्तार हो सके।

यदि समाज में दीर्घायु के बावजूद लोग भूख से पीड़ित हों, और स्वस्थ होने पर भी अनेक व्यक्ति मानसिक तनाव और सामाजिक कुरीतियों के शिकार हों, तो इसे प्रगति नहीं कहा जा सकता। अगर सम्पत्ति में वृद्धि के बावजूद समाज का एक बड़ा वर्ग निर्धन बना रहे और भ्रष्टाचार में निरंतर वृद्धि होती रहे, तो यह स्थिति भी प्रगति नहीं कहलाएगी। इसके अतिरिक्त, यदि ज्ञान का संग्रह प्रचुर मात्रा में हो जाए लेकिन समाज उसे कोई महत्व न दे और उसका कोई व्यावहारिक उपयोग न हो, तो इसे भी प्रगति कहना अनुचित होगा। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, प्रगति के विभिन्न मापदंडों की विवेचना आवश्यक है जो व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक विकास की प्रक्रिया को सरल बनाने में सहायक हो सकते हैं।

ई. एम. बोगार्डस (E. M. Bogardus)[1] ने प्रगति के चौदह मापदण्डों का उल्लेख किया है जिन्हें निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) सार्वजनिक हित के लिए प्राकृतिक साधनों का लाभप्रद उपयोग।

(2) शारीरिक और मानसिक दृष्टिकोण से व्यक्तियों का अधिकाधिक संख्या में स्वस्थ

(3) स्वस्थ वातावरण में वृद्धि।

(4) मनोरंजन के उपयोगी साधनों में वृद्धि।

(5) पारिवारिक संगठन की मात्रा में वृद्धि।

(6) रचनात्मक कार्यों के लिए व्यक्तियों को अधिक-से-अधिक अवसर प्राप्त होने की सुविधाएँ।

(7) व्यापार और उद्योग में जनता के अधिकारों में वृद्धि।

(8) सामाजिक दुर्घटनाओं, बीमारियों, बेकारी और मृत्यु के विरुद्ध सामाजिक बीमे (social insurance) की सुविधाओं में वृद्धि।

(9) समाज के अधिकांश व्यक्तियों के जीवन-स्तर में विकास।

(10) सरकार और जनता के बीच पारस्परिक सहयोग की मात्रा में अधिकाधिक वृद्धि।

(11) कलात्मक पक्ष का अधिकाधिक प्रसार।

(12) मनुष्य में धार्मिक और आध्यात्मिक पक्षों का विशेष विकास।

(13) व्यावसायिक, बौद्धिक और कल्याणकारी शिक्षा का विस्तार।

(14) सहयोगी अथवा सहकारी जीवन में वृद्धि।

मजूमदार के अनुसार प्रगति में छः तत्वों का होना आवश्यक है-

(1) मनुष्य के सम्मान में वृद्धिः

(2) प्रत्येक मानव-व्यक्तित्व के लिए आदर;

(3) आध्यात्मिक खोज एवं सत्य के अन्वेषण की अधिक स्वतंत्रता;

(4) मनुष्य तथा प्रकृति की कृतियों के सौन्दर्यात्मक आन्नद एवं सृजनात्मकता हेतु स्वतंत्रता;

(5) एक सामाजिक व्यवस्था जो प्रथम चारों मूल्यों को उन्नत करती है, और;

(6) सभी के लिए न्याय एवं समतासहित सुख, स्वतंत्रता एवं जीवन की वृद्धि करती है।

लेकिन यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जहाँ प्रगति में मूल्यों की अवधारणा निहित होती है, वहाँ मूल्यों का मापदण्ड़ करना कठिन है। मूल्यों का निर्धारण संस्कृति पर निर्भर करता है। भिन्न भिन्न समाजों के प्रगति के मापदण्ड भी भिन्न भिन्न हो सकते हैं।

बोगार्डस ने उपर्युक्त 14 मापदण्डों में जीवन के सामाजिक, पारिवारिक, स्वाप्थ्य सम्बन्धी, शिक्षात्मक, धार्मिक, नैतिक, कलात्मक और राजनीतिक सभी पक्षों को सम्मिलित किया है। इसका अर्थ है कि प्रगति

को किसी एक आधार पर नहीं बल्कि जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों में होने वाले विकास के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री टाड (A. J. Todd) ने सम्पत्ति, स्वास्थ्य, जनसंख्या, व्यवस्था, स्थिरता और अवसरों की अधिकता को सामाजिक प्रगति के प्रमुख आधारों के रूप में स्वीकार किया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री टाड (A. J. Todd) ने सम्पत्ति, स्वास्थ्य, जनसंख्या, व्यवस्था, स्थिरता और अवसरों की अधिकता को सामाजिक प्रगति के प्रमुख आधारों के रूप में स्वीकार किया है ।"[2] अर्थात हॉबहाउस (Hobhouse) ने समुदाय की प्रगति के लिए उचित जनसंख्या, कार्यकुशलता, स्वतंत्रता और पारस्परिक सेवा की प्रवृत्ति को आवश्यक कसौटियाँ माना है।

इन विचारधाराओं से यह भ्रमपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है कि प्रगति के वास्तविक मापदंड कौन-से हैं। हमें यह मानना होगा कि किसी भी समाज के लिए इन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति असंभव-सी घटना है। जैसे ही एक लक्ष्य की पूर्ति होती है, दूसरा उससे भी अधिक कठिन और महत्वपूर्ण लक्ष्य सामने आ जाता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई भी समाज प्रगति के सभी आधारों को एक साथ प्राप्त नहीं कर सकता। यही कारण है कि प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ अपूर्णता अवश्य रह जाती है।

प्रगति की इन कसौटियों में से जितनी अधिक दशाओं को समाज प्राप्त कर लेता है, वह उतना ही प्रगतिशील बन जाता है।

स्वप्रगति परीक्षण-2

1 ई. एम. बोगार्डस ने प्रगति के कितने मापदण्डों का उल्लेख किया है?

(क) चौदह (ख) छ: (ग) चार (घ) दस

4.5 सामाजिक प्रगति में सहायक दशायें

सामाजिक प्रगति में लाभकारी कारक भी हर देशकाल में एक सी नहीं हो सकते हैं। साथ ही, प्रगति के अलग-अलग क्षेत्रों के लिए उपयुक्त दशायें भी अलग-अलग होंगी। विभिन्न देशों की प्रगति में सहायक

अवस्थायें भी बदलती रहती हैं, जो उनकी प्रगति के स्तर पर निर्भर करती हैं। उदाहरण के लिए, भारत में वर्तमान परिस्थितियों में लोगों को शिक्षा, आजीविका के साधन, खाद्य सामग्री आदि प्रदान करना विकास में मदद करता है। ये चीजें हर समाज को चाहिए, लेकिन अगर ये पहले से उपलब्ध हैं तो प्रगति इन क्षेत्रों के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी होगी। इसलिए उसे अलग-अलग परिस्थितियों की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए, अमरीका में मानसिक और यौन रोगों को दूर करना प्रगति की आवश्यकता है। पर्याप्त भोजन की उपलब्धता वाले देश की प्रगति में सांस्कृतिक विकास के कार्यक्रमों का योगदान हो सकता है। जिस देश में लोगों को खाना भी नहीं है, वहाँ सांस्कृतिक कार्यक्रम समय और शक्ति बर्बाद करेंगे। इस प्रकार, प्रत्येक देश काल के लिये सामाजिक प्रगति में सहायक दशाओं को निर्धारित नहीं किया जा सकता। इस तुलनात्मक रूप को देखते हुए कुछ प्रमुख आम परिस्थितियां बताई जा सकती हैं-

1. **शिक्षा का विस्तार**:
    - गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सभी की पहुँच।
    - सार्वभौम शिक्षा।
    - शिक्षा में समानता और लैंगिक समानता।
2. **स्वास्थ्य सेवाएं**:
    - सबको सस्ती और सुलभ स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता।
    - स्वस्थ शरीर (शारीरिक व मानसिक रूप से)।
    - सार्वजनिक स्वास्थ्य में निवेश।
3. **आर्थिक अवसर**:
    - रोजगार के अवसर और आर्थिक सुरक्षा।
    - छोटे और मध्यम व्यवसायों को समर्थन।
4. **समानता और सामाजिक न्याय**:
    - सामाजिक भेदभाव और असमानताओं का उन्मूलन।
    - न्यायिक प्रणाली की प्रभावशीलता और निष्पक्षता।

5. **अच्छी शासन व्यवस्था**:
    - पारदर्शी और उत्तरदायी सरकार।
    - कानून का शासन और भ्रष्टाचार का उन्मूलन।
6. **सामाजिक सुरक्षा और कल्याण योजनाएं**:
    - सामाजिक सुरक्षा और कल्याणकारी योजनाएं।
    - बुजुर्गों, बच्चों और विकलांगों के लिए विशेष समर्थन।
7. **सांस्कृतिक संरक्षण और संवर्धन**:
    - सांस्कृतिक विविधता का सम्मान और प्रोत्साहन।
    - सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहरों का संरक्षण।
8. **पर्यावरणीय स्थिरता**:
    - पर्यावरण संरक्षण और स्थिरता के लिए नीतियां।
    - सतत विकास के लक्ष्य।
9. **सामाजिक संगठनों और नागरिक समाज की भूमिका**:
    - नागरिक समाज संगठनों की सक्रिय भागीदारी।
    - सामुदायिक संगठनों और स्वयंसेवी संस्थाओं का समर्थन।
10. **तकनीकी उन्नति और नवाचार**:
    - विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अनुसंधान और विकास।
    - नवाचार और डिजिटल क्रांति का समाज के हर वर्ग तक विस्तार।

सामाजिक प्रगति में सहायक दशाएँ विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्वों के संगठित और सामंजस्यपूर्ण मिश्रण से उत्पन्न होती हैं। इन सभी दशाओं का संयुक्त प्रभाव समाज के समग्र विकास और प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4.6 प्रगति एवं उद्विकास में अन्तर

उद्वविकास की प्रक्रिया की गति धीमी होती है, जबकि प्रगति की प्रक्रिया की गति धीमी या तीव्र कुछ भी हो सकती है।

उद्वविकासका परिप्रेक्ष्य विश्वव्यापी होता है, जबकि प्रगति का परिप्रेक्ष्य एक देश और व्यवस्था विशेष होता है।

1. उद्वविकास एक वैज्ञानिक अवधारणा है, जबकि प्रगति एक नैतिक अवधारणा है।

2. उद्वविकास की प्रक्रिया स्वतः प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलती है, जबकि प्रगति सचेत प्रयत्नों का परिणाम है।

3. उद्वविकास एक मूल्य निरपेक्ष अवधारणा है, जबकि प्रगति मूल्य सापेक्ष अवधारणा है।

4. उद्वविकास किसी भी दिशा में परिवर्तन है, जबकि प्रगति अच्छाई के लिए परिवर्तन है।

5. उद्वविकास की प्रक्रिया की गति धीमी होती है, जबकि प्रगति की प्रक्रिया की गति धीमी या तीव्र कुछ भी हो सकती है।

6. उद्वविकास का परिप्रेक्ष्य विश्वव्यापी होता है, जबकि प्रगति का परिप्रेक्ष्य एक देश और व्यवस्था विशेष होता है।

4.7 सारांश

सामाजिक प्रगति का तात्पर्य उन परिवर्तनशील गतिविधियों से है जो समाज को एक निश्चित दिशा में आगे बढ़ाती हैं। यह परिवर्तन समाज के सदस्यों की सामूहिक भलाई और कल्याण पर केंद्रित होता है। प्रगति का उद्देश्य समाजिक व्यवस्था को लाभ पहुंचाना है और इसमें अच्छाई की दिशा में बदलाव शामिल है।

'प्रगति' का मतलब है 'आगे बढ़ना', लेकिन इसका वास्तविक अर्थ जटिल है और समय, स्थान और समूहों के अनुसार बदलता है। विभिन्न विद्वानों ने इसे अलग-अलग रूपों में परिभाषित किया है। उदाहरण

के लिए, मैकाइवर ने इसे 'गिरगिट की तरह रंग बदलने वाला तथ्य' कहा है, जबकि हार्ट ने इसे मानवीय कार्यों को प्रेरित और सुविधाजनक बनाने वाले सामाजिक ढांचे में परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया है।

प्रगति समाज में ऐसे परिवर्तन को दर्शाती हैं जो एक विशेष और इच्छित दिशा में होता है, जो समाज द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति का परिणाम होता है। इसमें सामूहिकता की भावना निहित होती है और परिवर्तन की दिशा स्पष्ट और निश्चित होती है। प्रगति समय के साथ बदलती रहती है, यह सुनिश्चित करते हुए कि परिवर्तन से समाज को अधिकतम लाभ हो और हानि न्यूनतम हो। इन विशेषताओं के माध्यम से, प्रगति समाज के सदस्यों के जीवन में सुधार लाने और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास करती है।

विद्वानों द्वारा प्रगति को विभिन्न आधारों पर निर्धारित किए गए हैं। उदाहरण के लिए, बोगार्डस ने प्रगति के चौदह मापदंडों का उल्लेख किया है, जिनमें सार्वजनिक हित, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सांस्कृतिक विकास, और पर्यावरणीय स्थिरता शामिल हैं। टाड ने सम्पत्ति, स्वास्थ्य, जनसंख्या, व्यवस्था, स्थिरता और अवसरों की अधिकता को प्रगति के प्रमुख आधार माना है।

शिक्षा का विस्तार, स्वास्थ्य सेवाएं, आर्थिक अवसर, समानता और सामाजिक न्याय, और तकनीकी उन्नति सामाजिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रगति नैतिक अवधारणा है और इसमें अच्छाई की दिशा में परिवर्तन होता है, जबकि उद्ववविकासधीमी गति से होता है और यह वैज्ञानिक अवधारणा है।

अंततः, सामाजिक प्रगति का उद्देश्य एक स्वस्थ और प्रगतिशील समाज का निर्माण करना है।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

उद्विकास- धीमी गति से होने वाला स्वाभाविक और मूल्य-निरपेक्ष परिवर्तन है।

प्रगति- एक नैतिक अवधारणा है, जो अच्छाई की दिशा में इच्छित और लाभकारी परिवर्तन को इंगित करती है।

4.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

स्वप्रगति परीक्षण-1

1. हॉरनेल हार्ट के अनुसार "सामाजिक प्रगति सामाजिक ढाँचे में वे परिवर्तन हैं जो कि मानवीय कार्यों को मुक्त करें, प्रेरणा और सुविधा प्रदान करें तथा उसे संगठित करें।"

2. सामाजिक प्रगति की विशेषताएँ - (1) प्रगति एक इच्छित या विशिष्ट दिशा में परिवर्तन है।

(2) प्रगति समाज के सदस्यों द्वारा, समाज द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति का परिणाम है।

(3) प्रगति में सामूहिकता की भावना निहित होती है।

(4) प्रगति में परिवर्तन की दिशा निश्चित होती है।

स्वप्रगति परीक्षण-2 (क) चौदह

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

1 E. M. Bogardus. Sociology, pp. 397-98.

2 A. J. Todd, Theories of Social Progress, p. 121.

3 जे० पी० सिंह (1999) सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

4 जे० पी० सिंह (2004) समाजसास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

5 एस० एल० दोषी एवं पी० सी० जैन (2009) समाजसास्त्र: नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

6 नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) समाजसास्त्र विवेचन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

7 विद्याभूषण एवं डी० आर० सचदेव (2010) समाजसास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, नई दिल्ली।

8 हरिकृष्ण रावत (2002): समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

9 Abrahas, Philip (1982): Historical Sociology, Cornell University Press, Ithaca NY.

10 Arendt, Hannah (1963): On Revolution, Faber and Faber, London.

11 Giddens, Anthony (1998): Sociology, Polity Press, Cambridge.

12 K.L. Sharma (2007): India Social Structure and Change, Rawat Publications, New Delhi.

13 M.N. Srinivas (2009): Social Change in Modern India, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

14 T.B. Bottomore (1970): Sociology: A Guide to Problem and Litrature, S. Chand and Company, New Delhi.

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रगति से आप क्या समझते है?

2. उद्वविकासतथा प्रगति में अन्तर बताइए।

3. सामाजिक प्रगति की विशेषताएँ बताइए।

इकाई 5: सामाजिक आन्दोलन एवं सामाजिक गतिशीलता
Social Movement and Social Mobility

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 सामाजिक आन्दोलन का अर्थ तथा परिभाषा

5.3 सामाजिक आंदोलन की विशेषताएं

5.4 सामाजिक आंदोलन के प्रकार

5.4.1 सामाजिक आन्दोलनों के सामान्य प्रकार

5.5 सामाजिक आंदोलनों का महत्व

5.6 सामाजिक गतिशीलता का अर्थ एवं प्रकार

5.7 सामाजिक गतिशीलता के प्रकार

5.8 समाजिक परिवर्तन: सामाजिक आंदोलन एवं सामाजिक गतिशीलता

5.9 सारांश

5.10पारिभाषिक शब्दावली

5.11 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

5.12 संदर्भ ग्रंथ

5.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक आंदोलन एक दूसरे से जुड़े हैं। सामाजिक गतिशीलता सामाजिक आंदोलन से प्रेरित होती है। सामाजिक गतिशीलता व्यक्ति या समूह के सामाजिक पदानुक्रम में आगे बढ़ने

की क्षमता को बताती है, जबकि सामाजिक आंदोलन एक समूह की कोशिशें हैं जिनका उद्देश्य विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करना या किसी विशिष्ट परिवर्तन का विरोध करना है। ये विचार सामाजिक परिवर्तन के कई रूपों, समाज की विविधता और गतिशीलता को दिखाते हैं। सामाजिक आंदोलन और गतिशीलता लोगों को नए अनुभवों और चुनौतियों से सीखने का अवसर देते हैं। सामाजिक स्थिरता और विकास के लिए निरंतर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया आवश्यक है।

5.1 उद्देश्य

इकाई का मुख्य लक्ष्य सामाजिक आंदोलन और गतिशीलता के बारे में व्यापक जानकारी देना है। इकाई का अध्ययन करने के बाद आप सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक आंदोलनों को समझ सकेंगे।

5.2 सामाजिक आन्दोलन का अर्थ तथा परिभाषा

सामाजिक आंदोलन का अर्थ है एक बड़े समुदाय द्वारा समाज में बदलाव लाने या उसका विरोध करने का सामूहिक प्रयास। सामूहिक और निरंतर प्रयास, साझा विचारधारा, विशिष्ट लक्ष्य और संगठनात्मक संरचना सामाजिक आंदोलनों की विशेषताएं हैं। सामाजिक आंदोलन केवल ऐसे नहीं हैं जो समाज बदलते हैं; इसमें संगठित रूप से परिवर्तन को रोकने के लिए किये जाने वाले सामूहिक प्रयास भी शामिल हैं।

हरबर्ट ब्लूमर सामाजिक आंदोलन के विषय परिभाषित लिखते हैं, ''सामाजिक आंदोलन जीवन की एक नई व्यवस्था स्थापित करने के लिए एक सामूहिक प्रयास माने जा सकते हैं।''[1]

टर्नर तथा किलेन लिखते हैं कि ''सामाजिक आंदोलन का तात्पर्य व्यक्तियों के एक बड़े समूह द्वारा निरन्तरता के साथ उस समाज अथवा समूह में परिवर्तन लाने या परिवर्तन को रोकने के लिए प्रयत्न करना है जिसका कि वह अंग है।''[2] इस परिभाषा के अनुसार, सभी सामाजिक आंदोलन अलग-अलग प्रकार के हैं, जैसे धार्मिक, सुधारात्मक, क्रान्तिकारी, विरोधी आदि।

हर्टन के अनुसार, ''सामाजिक आंदोलन न तो एक संस्था है और न ही एक समिति।''[3] इस विषय में डॉ जी. के अग्रवाल लिखते हैं कि ''इसका कारण यह है कि सामाजिक संस्था एक स्थायी सांस्कृतिक विशेषता होती है, जबकि सामाजिक आन्दोलन की प्रकृति परिवर्तनशील होती है। इसी तरह समिति का एक निश्चित संगठन होता है लेकिन सामाजिक आन्दोलन में किसी तरह का कोई औपचारिक संगठन देखने को नहीं मिलता। वास्तव में, सामाजिक आन्दोलन दबाव पर आधारित एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा जागरूक अवस्था में सामाजिक आदर्श-नियमों तथा परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है।''[4]

उपरोक्त ने परिभाषा के अनुसार सामाजिक आंदोलन समाज में परिवर्तन लाने या रोकने के महत्वपूर्ण साधन हैं। ये आंदोलन एकजुट प्रयास, साझा विचारधारा, विशिष्ट लक्ष्य और संगठनात्मक संरचना पर आधारित हैं। हम सामाजिक आंदोलनों के विभिन्न पहलुओं और प्रभावों को बेहतर ढंग से समझने के लिए हरबर्ट ब्लूमर, टर्नर, किलेन और हर्टन की परिभाषाएँ पढ़ते हैं। सामाजिक आंदोलन समाज को बदलते हैं और संगठित परिवर्तन को रोकते हैं।

5.3 सामाजिक आंदोलन की विशेषताएं

1. **समस्या-** सामाजिक आंदोलन से जुड़ी समस्या सामाजिक आंदोलन का मूल किसी क्षेत्र, समुदाय, या बड़े समूह में पैदा होने वाली एक विशिष्ट समस्या या संकट है। यह समस्या व्यक्ति के आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक या राजनीतिक जीवन से जुड़ी हो सकती है।
2. **विशिष्ट लक्ष्य:** प्रत्येक आंदोलन के स्पष्ट और विशिष्ट लक्ष्य होते हैं।
3. **संगठनात्मक संरचना:** अधिकांश आंदोलनों में एक संगठनात्मक संरचना होती है, जो समय के साथ बदल सकती है।
4. **सामूहिक और निरंतर प्रयास:** लोग एवं समूह, सामाजिक आंदोलनों में संगठित होकर निरंतर काम करते हैं।

5 **विचारधारा:** आंदोलन के लिए एक विचारधारा होना आवश्यक है, जो आंदोलन उद्देश्यों को परिभाषित करती है।

6 **नेतृत्व-** सामाजिक आंदोलनों में नेतृत्व बहुत महत्वपूर्ण है। एक सफल नेता आंदोलन को दिशा देता है।

7 **असंतोष-** सामाजिक आंदोलन समाज में व्याप्त असंतोष और समस्याओं के प्रति क्रिया के रूप में उत्पन होते हैं। आंदोलन के सदस्य समाज की वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट होते हैं और साथ ही परिवर्तन की मांग करते हैं।

8 **लचीलापन:** सामाजिक आंदोलन समय और परिस्थिति के अनुसार अपने लक्ष्यों, रणनीतियों और कार्यप्रणालियों में परिवर्तन कर सकते हैं। यह लचीलापन उन्हें बदलते सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाता है।

9 **रणनीतियाँ-** सामाजिक आंदोलन अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रदर्शन, विरोध, सभाएं, प्रचार और मीडिया का उपयोग करते हैं। इस तरह आंदोलन अहिंसक या हिंसक हो सकती हैं।

10 **प्रभावशीलता-** सामाजिक आंदोलन समाज के विभिन्न पहलुओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं, जैसे कि कानून, नीतियाँ, सामाजिक मान्यताएं और सांस्कृतिक मूल्य। यह प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकता है।

11 **सक्रिय भागीदारी-** सामाजिक आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले लोग होते हैं, जो आंदोलन के विचारधारा और लक्ष्यों के प्रति गहरा समर्पण रखते हैं। यह सक्रिय भागीदारी आंदोलन की ऊर्जा और प्रभावशीलता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण होती है।

किसी समस्या या संकट की स्थिति होने पर कई व्यक्ति संगठित होकर या तो व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं या उस समस्या का समाधान के लिए उन परिवर्तनों का विरोध करते हैं जिनके कारण वह संकट उत्पन्न हुआ है।

सामाजिक आंदोलन समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने या मौजूदा व्यवस्था का विरोध करने के लिए महत्वपूर्ण साधन होते हैं। उनकी सामूहिकता, निरंतरता, साझा विचारधारा, विशिष्ट लक्ष्य और संगठनात्मक संरचना उन्हें प्रभावी बनाते हैं। सामाजिक आंदोलनों का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि संगठित प्रयास और सामूहिक संघर्ष कैसे सामाजिक न्याय, समानता और सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति कर सकते हैं

5.4 सामाजिक आंदोलन के प्रकार

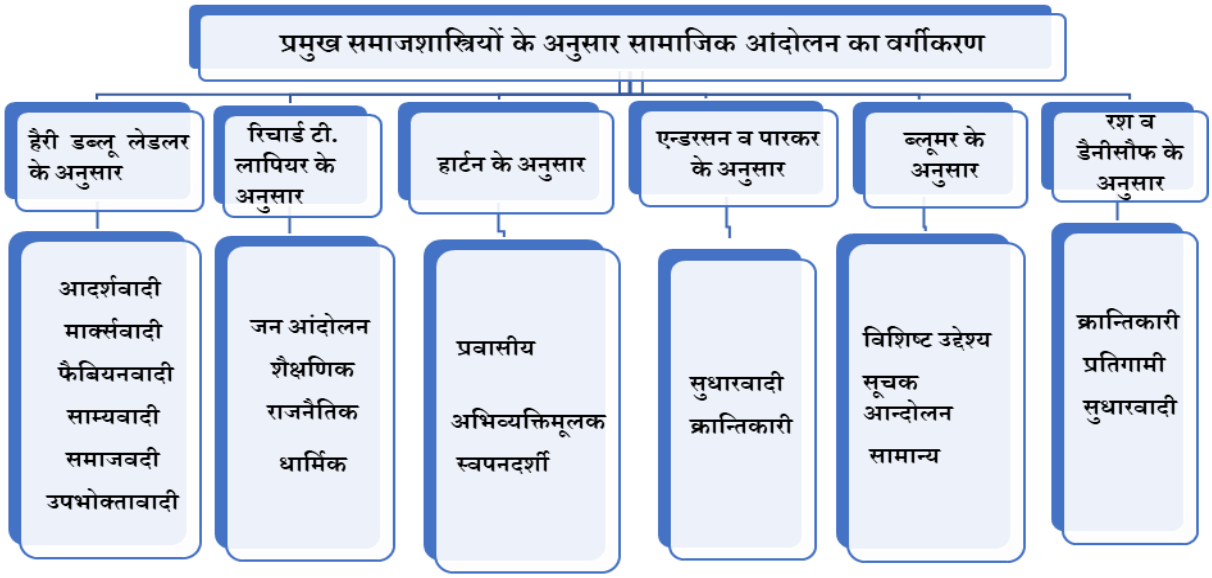

विभिन्न आन्दोलनों के लिए उत्तरदायी दशाओं, आन्दोलन के लक्ष्य, और आन्दोलन से सम्बन्धित व्यवहार-प्रतिमानों के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने इनके अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है।

- **हैरी डब्लू. लेडलर** ने सामाजिक आन्दोलन को छ: भागो में बांटा है -

1) आदर्शवादी **2)** मार्क्सवादी **3)** फैबियनवादी **4)** साम्यवादी **5)** समाजवादी **6)**उपभोक्ता सहकारी

- **वहीं** रिचार्ड टी. लापियर ने सामाजिक आन्दोलन को चार भागों में विभक्त किया है-

1) जन आन्दोलन **2)** शैक्षणिक आन्दोलन **3)** राजनैतिक आन्दोलन **4)** धार्मिक आन्दोलन

- **हायम्स** ने सामाजिक आन्दोलन को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया है-

1) क्रिया के क्षेत्र **2)** परिवर्तन के विस्तार **3)** परिवर्तन की दिशा **4)** प्रकार्यात्मक क्षेत्र **5)** सामाजिक व्यवस्था

- **एण्डरसन तथा पार्कर** द्वारा समाजिक आन्दोलन का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है-

1) आन्दोलन के लक्ष्य और व्यवहार को आधार मानकर:-

(क) सुधारवादी आन्दोलन: सामाजिक व्यवस्था में आंशिक कुछ परिवर्तन लाना।

(ख) क्रान्तिकारी आन्दोलन: सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन उत्पन्न करना।

2) आन्दोलन की व्यापकता को आधार मानकर:-

(क) खण्डनात्मक आन्दोलन: समाज के किसी एक भाग में परिवर्तन उत्पन्न करना।

(ख) सम्पूर्णतावादी आन्दोलन: जीवन की सम्पूर्ण प्रणाली में परिवर्तन उत्पनन करना या परिवर्तन की कोशिश।

- **रश और डैनीसौफ के अनुसार:**

1) क्रान्तिकारी आन्दोलन 2) प्रतिगामी आन्दोलन 3) सुधारवादी आन्दोलन

- **ब्लूमर के अनुसार:**

1) विशिष्ट उद्देश्य आन्दोलन 2) सूचक आन्दोलन 3) सामान्य आन्दोलन

- **हार्टन (Horton) के अनुसार:**

1) प्रवासीय आन्दोलन- इस प्रकार के आन्दोलन स्थान परिवर्तन या प्रवास करने वाले असन्तुष्ट व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

2) अभिव्यक्तिमूलक आन्दोलन- जब लोग प्रतीकात्मक क्रियाओं के द्वारा अपने विरोध को अभिव्यक्त करते हैं।

3) स्वप्नदर्शी आन्दोलन- इस प्रकार के आन्दोलन आदर्श लक्ष्य को लेकर किए जाते हैं जिन्हें व्यवहार में प्राप्त करना कठिन होता है।

5.4.1 सामाजिक आन्दोलनों के सामान्य प्रकार

सामाजिक आन्दोलनों की प्रकृति को समझने के लिए इनके विभिन्न प्रकारों को जानना आवश्यक है, क्योंकि इससे समाज में होने वाले परिवर्तनों की दिशा और स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। सामान्य रूप से सामाजिक आन्दोलनों को निम्नलिखित प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. **सुधार आंदोलन**- ये आंदोलन समाज की बुनियादी संरचना को बदले बिना इसके विशेष पहलुओं को बदलने की कोशिश करते हैं। यह उदाहरण के लिए भारत में पुनर्जागरण के दौरान और बाद में सामाजिक या धार्मिक सुधार के लिए चलाए गए आंदोलन से आता है। इनमें दलित आंदोलन, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज और सत्यशोधक समाज शामिल हैं।
2. **क्रांतिकारी आंदोलन**- इन आंदोलनों का उद्देश्य मौजूदा सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था को पूरी तरह से उखाड़ फेंकना और उसे एक नई व्यवस्था से प्रतिस्थापित करना है, जैसे फ्रांसीसी क्रांति, औद्योगिक क्रांति, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम आदि।

3. **प्रतिरोध आंदोलन**: ये आंदोलन अन्य समूहों या सरकार द्वारा प्रस्तावित परिवर्तनों का विरोध करते हैं। उदाहरणों में वैश्वीकरण विरोधी आंदोलन और जीवन समर्थक आंदोलन शामिल हैं।
4. **नए सामाजिक आंदोलन**: जैसे नारीवादी आंदोलन, जो महिलाओं के अधिकारों और लैंगिक समानता की वकालत करता है, ये आंदोलन पहचान, जीवन की गुणवत्ता और पर्यावरण पर ध्यान देते हैं। वहीं एलजीबीटीक्यू (LGBTQ) लोगों को सामाजिक स्वीकृति और समान अधिकार चाहिए। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण की रक्षा पर्यावरण आंदोलन का मुख्य मुद्दा है।

5.5 सामाजिक आंदोलनों का महत्व

सामाजिक आंदोलनों का समाज में बहुत महत्व होता है। ये आंदोलन समाज में परिवर्तन लाने और सामाजिक न्याय, समानता, और अधिकारों की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामाजिक आंदोलनों का महत्व निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

1. **सामाजिक जागरूकता**: ये आंदोलन समाज में जागरूकता फैलाते हैं और लोगों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करते हैं।
2. **सामाजिक न्याय**: सामाजिक आंदोलनों का प्रमुख उद्देश्य समाज में न्याय स्थापित करना होता है। वे असमानता, भेदभाव और अन्याय के खिलाफ लड़ाई लड़ते हैं।
3. **सत्ता को चुनौती**: ये आंदोलन सत्ता और प्रशासन को चुनौती देते हैं और उन्हें जवाबदेह बनाते हैं। इससे प्रशासन में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व बढ़ता है।
4. **नीति निर्माण में योगदान**: कई बार सामाजिक आंदोलनों के दबाव में सरकारें और प्रशासन नई नीतियों और कानूनों का निर्माण करते हैं जो समाज के विभिन्न वर्गों के लिए लाभकारी होते हैं।
5. **समाज में परिवर्तन**: सामाजिक आंदोलन समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाते हैं। वे पुराने, रूढ़िवादी और अनुचित प्रथाओं को बदलने में मदद करते हैं।

6. **सामाजिक एकता**: ये आंदोलन विभिन्न समुदायों और समूहों को एकजुट करते हैं और सामाजिक एकता और भाईचारे को बढ़ावा देते हैं।
7. **आवाज उठाने का माध्यम**: सामाजिक आंदोलन उन लोगों की आवाज बनते हैं जिनकी आवाज अक्सर दबा दी जाती है या अनसुनी कर दी जाती है।

उदाहरण के लिए, भारत में स्वतंत्रता संग्राम, दलित आंदोलन, महिला अधिकार आंदोलन, और हाल ही के किसान आंदोलन ने समाज पर गहरा प्रभाव डाला है और महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन लाए हैं।

भारतीय समाजिक आंदोलन-

समाजिक आंदोलनों ने किसी भी समाज में महत्वपूर्ण बदलाव लाने के लिए काम किया है। ये आंदोलन सामाजिक न्याय, समानता, और सुधार की दिशा में प्रयासरत रहे हैं। यहाँ कुछ प्रमुख भारतीय सामाजिक आंदोलनों के उदाहरण दिए गए हैं।

1. सत्याग्रह और स्वतंत्रता आंदोलन- महात्मा गांधी जी ने सत्याग्रह और असहयोग आंदोलनों से ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष किया। इन आंदोलनों ने भारतीय स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ जनता को एकजुट किया।

2. सामाजिक सुधार आंदोलनों- ब्राह्मो समाज राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित, इस आंदोलन ने धार्मिक और सामाजिक सुधार की दिशा में काम किया, जैसे बाल विवाह और सती प्रथा का विरोध। आर्य समाज स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित, इसने वेदों की ओर लौटने और जातिवाद और अंधविश्वास के खिलाफ सुधार की दिशा में काम किया।

3. अछूत अधिकार आंदोलन- डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलित समुदाय के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और जातिवाद और अछूत प्रथा के खिलाफ आंदोलन चलाया। उन्होंने भारतीय संविधान में जातिवाद के खिलाफ प्रावधान शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हरिजन सेवक संघ महात्मा गांधी द्वारा स्थापित, इस संघ ने दलितों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान के लिए काम किया।

4. महिला अधिकार आंदोलन- कई महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई और समान अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

6. भूमि सुधार आंदोलन- स्वतंत्रता के बाद भारत में कई राज्यों में भूमि सुधार की योजनाएँ लागू की गईं ताकि ज़मींदारी प्रणाली को समाप्त किया जा सके और भूमिहीन किसानों को भूमि वितरित की जा सके।

7. चिपको आंदोलन- चिपको आंदोलन भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय संघर्ष था और यह भारतीय पर्यावरण आंदोलन का एक प्रेरणादायक उदाहरण था।

8. आदिवासी अधिकार आंदोलन- विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों और राजनीतिक आंदोलनों ने आदिवासियों के अधिकारों, जैसे भूमि अधिकार और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा के लिए संघर्ष किया है। ये सामाजिक आंदोलन भारतीय समाज के कई पहलुओं पर प्रभाव डालने वाले महत्वपूर्ण प्रयास रहे हैं, और इन्हें भारतीय समाज में हुए सामाजिक और आर्थिक बदलावों के संदर्भ में समझा जा सकता है।

5.6 सामाजिक गतिशीलता का अर्थ एवं प्रकार

सामाजिक गतिशीलता एक सामाजिक पदानुक्रम के भीतर व्यक्तियों या समूहों के आंदोलन को संदर्भित करती है। यह गति ऊपर या नीचे की ओर हो सकती है और शिक्षा, रोजगार और सामाजिक नीतियों जैसे विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है।

सामाजिक गतिशीलता को विभिन्न विद्वानों ने निम्नानुसार परिभाषित किया है-

1. बोगार्डस- "सामाजिक पद में कोई भी परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता है।"[5]

2. फिचर- "सामाजिक गतिशीलता व्यक्ति, समूह या श्रेणी के एक सामाजिक पद या स्तृत से दूसरे में गति करने को कहते हैं।"[6]

3. हार्टन तथा हण्ट- "सामाजिक गतिशीलता का तात्पर्य उच्च या निम्न सामाजिक प्रस्थितियों में गमन करना है।"[7]

4. सोरोकिन-"सामाजिक गतिशीलता से हमारा तात्पर्य सामाजिक समूहों तथा स्तरों के झुण्ड में एक सामाजिक पद से दूसरे सामाजिक पद में परिवर्तन होना है।"[8]

5. फेयरचाइल्ड-"इन्होंने लोगों के एक सामाजिक समूह से दूसरे सामाजिक समूह में गमन को ही सामाजिक गतिशीलता कहा है।"[9]

6. एस० एम० दुबे -"सामाजिक गतिशीलता एक बहुत ही विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत या तो व्यक्ति या सम्पूर्ण समूह की आर्थिक, राजनीतिक या व्यावसायिक प्रस्थिति में ऊपर या नीचे की ओर परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है।"[10]

सामाजिक गतिशीलता व्यक्ति या समूह के पद या प्रस्थिति से जुड़ी होती है, जिसके माध्यम से उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव होता है। यह परिवर्तन केवल एक समाज या समूह की संरचना के भीतर ही होता है। सामाजिक गतिशीलता की कोई स्पष्ट दिशा नहीं होती है। यह समानांतर व ऊपर-नीचे की ओर हो सकती है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सामाजिक गतिशीलता व्यक्ति या समूह की सामाजिक स्थिति में होने वाले परिवर्तन को दर्शाती है।

5.7 सामाजिक गतिशीलता के प्रकार

सोरोकिन ने सामाजिक गतिशीलता के दो प्रमुख प्रकारों का उल्लेख किया है-

(1) क्षैतिज या समरैखिक सामाजिक गतिशीलता

(2) रैखिक गतिशीलता

1. क्षैतिज या समरैखिक सामाजिक गतिशीलता –

क्षैतिज या समरैखिक सामाजिक गतिशीलता की परिभाषायें निम्नवत् हैं-

(i) गोल्ड एवं कॉब (Gould and Colb) - "बिना सामाजिक वर्ग पद में परिवर्तन किये प्रस्थिति एवं भूमिकाओं के विशेष रूप से व्यावसायिक क्षेत्र में परिवर्तन को क्षैतिज गतिशीलता कहते हैं।''[11]

(ii) फिचर - "क्षैतिज गतिशीलता का अर्थ एक ही सामाजिक स्तर के एक ही प्रकार के सामाजिक समूह या स्थिति से दूसरे में आगे या पीछे गमन करना है।"[12]

क्षैतिज या समरैखिक सामाजिक गतिशीलता एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी व्यक्ति या समूह की सामाजिक स्थिति या पेशा बदलता है, लेकिन वे एक ही सामाजिक स्तर पर रहते हैं। इसका मतलब है कि उनकी आर्थिक या सामाजिक स्थिति में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं होता, बल्कि केवल उनके कार्य या भूमिका में परिवर्तन होता है।

उदाहरण के लिए:

- **पद बदलना**: एक शिक्षक जो एक स्कूल से दूसरे स्कूल में शिक्षक के रूप में स्थानांतरित होता है। उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं होता, केवल कार्य स्थल बदलता है।
- **कंपनी बदलना**: एक सॉफ़्टवेयर इंजीनियर जो एक कंपनी से दूसरी कंपनी में समान पद पर नौकरी बदलता है। उसकी आय और सामाजिक स्थिति समान रहती है, केवल कार्य स्थान और सहकर्मी बदलते हैं।
- **स्थानांतरण**: एक सरकारी कर्मचारी जो एक शहर से दूसरे शहर में स्थानांतरित होता है, लेकिन उसी पद पर बना रहता है। उसकी सामाजिक स्थिति और आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता।

क्षैतिज सामाजिक गतिशीलता का महत्व यह है कि यह दिखाता है कि व्यक्ति या समूह अपने कार्यों में लचीलापन और विभिन्न अनुभव प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं होता। यह गतिशीलता रोजगार की संतुष्टि, व्यक्तिगत विकास और भौगोलिक स्थिति में बदलाव से जुड़ी हो सकती है। अत: क्षैतिज सामाजिक गतिशीलता में व्यक्ति की प्रस्थिति में को उल्लेखनीय परिवर्तन नही होता है।

2 रैखिक सामाजिक गतिशीलता-

रैखिक सामाजिक गतिशीलता की परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

1) गोल्ड एवं कॉब लिखते हैं, "यदि किसी प्रस्थिति एवं भूमिका में ऐसा परिवर्तन जिसमें सामाजिक वर्ग में भी परिवर्तन सम्मिलित हो तो उसे उदग्र या रैखिक गतिशीलता कहते हैं जिसके उपवर्ग में ऊपर एवं नीचे की ओर गतिशीलता सम्मिलित है।"[13]

(ii) बर्दाण्ड-"एक सामाजिक स्तर (Strata) से दूसरे में ऊपर या नीचे की ओर गमन की उदग्र सामाजिक गतिशीलता कहते हैं। "[14]

रैखिक सामाजिक गतिशीलता का अर्थ है कि किसी व्यक्ति या समूह की सामाजिक स्थिति में लगातार और सीधी दिशा में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन या तो ऊर्ध्व (उपरी) दिशा में हो सकता है या अधोगामी (नीचे) दिशा में। रैखिक सामाजिक गतिशीलता का उद्देश्य यह दिखाना होता है कि किसी व्यक्ति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कैसे समय के साथ सुधार (ऊर्ध्व) या गिरावट (अधोगामी) होती है।

ऊर्ध्व रैखिक सामाजिक गतिशीलता

इसमें व्यक्ति या समूह की सामाजिक स्थिति लगातार बेहतर होती जाती है। उदाहरण के लिए:

- एक गरीब परिवार का बच्चा उच्च शिक्षा प्राप्त कर अच्छे पद पर नौकरी पाता है, फिर प्रमोशन पाकर उच्च प्रबंधन स्तर तक पहुंचता है।
- एक छोटे व्यापारी का व्यवसाय लगातार बढ़ता जाता है और वह एक दिन बड़ा उद्योगपति बन जाता है।

अधोगामी रैखिक सामाजिक गतिशीलता

इसमें व्यक्ति या समूह की सामाजिक स्थिति लगातार गिरती जाती है। उदाहरण के लिए:

- एक अमीर व्यक्ति जो वित्तीय कठिनाइयों के कारण अपनी संपत्ति खो देता है और निम्न आय वर्ग में आ जाता है।
- एक किसान का बेटा उच्च शिक्षा प्राप्त कर डॉक्टर बन जाता है, फिर अपनी मेहनत और योग्यता से एक बड़े अस्पताल का प्रमुख बन जाता है।
- एक उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी वित्तीय अनियमितताओं के कारण नौकरी से निकाला जाता है और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा खत्म हो जाती है, जिससे वह निम्न वर्ग की जीवनशैली अपनाने को मजबूर हो जाता है।

- एक स्वस्थ और सफल व्यक्ति गंभीर बीमारी के कारण अपनी नौकरी और सामाजिक स्थिति दोनों खो देता है।

रैखिक सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह दर्शाता है कि कैसे व्यक्तिगत प्रयास, सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थितियाँ और नीतियाँ व्यक्ति की सामाजिक स्थिति पर प्रभाव डालती हैं।

3 अन्त: तथा अंतरपीढ़ी गतिशीलता

पीढ़ि के अधार पर गतिशीलता को दो प्रकार में विभाजित किया जा सकता है। अंतरपीढ़ीगत गतिशीलता तथा अंतःपीढ़ीगत गतिशीलता दोनों ही सामाजिक गतिशीलता के महत्वपूर्ण प्रकार हैं जो विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को दर्शाते हैं।

i) अंतरपीढ़ीगत गतिशीलता- अंतरपीढ़ीय गतिशीलता तब होती है जब दो या अधिक पीढ़ियों के बीच सामाजिक स्थिति में परिवर्तन होता है। यह दर्शाता है कि किस तरह एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार या गिरावट होती है।

उदाहरण:

1. **शिक्षा और रोजगार**: एक परिवार में माता-पिता किसान हैं, लेकिन उनका बच्चा उच्च शिक्षा प्राप्त कर डॉक्टर बन जाता है। इस मामले में, बच्चे की सामाजिक स्थिति उसके माता-पिता से ऊँची हो जाती है।
2. **आर्थिक स्थिति**: एक परिवार में माता-पिता निम्न आय वर्ग के श्रमिक हैं, लेकिन उनकी अगली पीढ़ी का बच्चा सफल व्यवसायी बन जाता है और उच्च आय वर्ग में चला जाता है।

ii) अंतःपीढ़ीगत गतिशीलता- अंतःपीढ़ीय गतिशीलता वह स्थिति है जब किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में उसके जीवनकाल के दौरान परिवर्तन होता है। यह उस व्यक्ति के जीवन में सामाजिक और आर्थिक स्थिति के सुधार या गिरावट को इंगित करता है।

उदाहरण:

1. एक व्यक्ति जो अपने करियर की शुरुआत में एक निम्न स्तर की नौकरी करता है, कंपनी का सीई ओ बनने के लिए मेहनत और परिश्रम करता है। इससे उसकी सामाजिक स्थिति उसके अपने जीवनकाल में बदलती है।
2. एक व्यक्ति जो एक सफल व्यवसायी था, आर्थिक संकट के कारण अपना व्यवसाय खो देता है और निम्न आय वर्ग की नौकरी करने लगता है।

3 मुक्त व बन्द गतिशीलता

सामाजिक गतिशीलता में "मुक्त" और "बंद" के बीच महत्वपूर्ण अंतर होता है। यह निर्धारित करती हैं कि किसी समाज में व्यक्तियों या समूहों के लिए सामाजिक स्थिति में परिवर्तन कितना संभव और सुलभ है।

i) मुक्त गतिशीलता (Open Mobility)

मुक्त गतिशीलता: मुक्त गतिशीलता प्रणाली में, लोगों को अपनी सामाजिक स्थिति को सुधारने या बदलने का अधिक अवसर मिलता है, जो उनकी योग्यता, शिक्षा, कौशल और मेहनत पर निर्भर करता है। सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बदलाव के लिए इसमें कोई बाधा या सीमाएँ नहीं होतीं।इस प्रणाली में प्रतिस्पर्धा और अवसर समान हैं। **उदाहरणार्थ:** अच्छी शिक्षा और मेहनत से एक गरीब परिवार का बच्चा डॉक्टर, इंजीनियर, या वैज्ञानिक बन सकता है। योग्यता और परिश्रम उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को प्रभावित करते हैं।

ii) बंद गतिशीलता

बंद गतिशीलता प्रणाली में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में बदलाव के अवसर सीमित हैं। इसमें जन्म के आधार पर सामाजिक स्थिति निर्धारित होती है और व्यक्ति को उनकी जन्मजात स्थिति से ऊपर उठने या नीचे गिरने के सीमित अवसर मिलते हैं।इस प्रणाली में विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच बहुत कम या कोई संबंध नहीं है। **उदाहरण-** जाति व्यवस्था कुछ समाजों में इतनी कठोर होती है कि लोग सिर्फ अपनी जाति के आधार पर अपनी सामाजिक स्थिति में बंधे रहते हैं। जन्मजात जाति उसके काम, विवाह और सामाजिक स्थिति पर निर्भर करती है।

उपरोक्त विभाजन यह समझने में मदद करता है कि अलग-अलग समाजों में कैसे सामाजिक गतिशीलता के अवसर और सीमाएँ निर्धारित होती हैं।

5.8 समाजिक परिवर्तन: सामाजिक आंदोलन एवं सामाजिक गतिशीलता

सामाजिक परिवर्तन: सामाजिक आंदोलन और सामाजिक गतिशीलता

सामाजिक आंदोलन सामाजिक गतिशीलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं क्योंकि वे व्यक्तिगत और सामूहिक उन्नति को सीमित करने वाली संरचनात्मक बाधाओं को चुनौती देते हैं और बदलते हैं। सामाजिक आंदोलन सामाजिक गतिशीलता को सुविधाजनक बना सकते हैं, लेकिन उन्हें निहित हितों और सामाजिक जड़ता से प्रतिरोध जैसी चुनौतियों का सामना भी करना पड़ता है। हालांकि, सफल सामाजिक आंदोलन एक अधिक समावेशी और न्यायसंगत समाज का निर्माण कर सकते हैं, जिससे हाशिए पर रहने वाले समूहों को ऊपर की ओर गतिशीलता के अवसर मिल सकते हैं।

सामाजिक आंदोलन और सामाजिक गतिशीलता आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं, और एक दूसरे को महत्वपूर्ण तरीकों से प्रभावित करते हैं। सामाजिक आंदोलन अन्याय को दूर करने और अधिक न्यायसंगत समाज बनाने का प्रयास करते हैं, जो अक्सर अधिक सामाजिक गतिशीलता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसके विपरीत, बढ़ी हुई सामाजिक गतिशीलता व्यक्तियों और समूहों को सामाजिक आंदोलनों में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए सशक्त बना सकती है, जिससे आगे परिवर्तन हो सकता है। इन गतिशीलता को समझना एक न्यायपूर्ण और गतिशील समाज को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है जहां हर किसी को सफल होने का अवसर मिले।

उदाहरण के लिए, लैंगिक समानता की वकालत के परिणामस्वरूप नीतिगत बदलाव हुए हैं, जैसे समान वेतन कानून और भेदभाव-विरोधी सुरक्षा, जिसने अधिक महिलाओं को कार्यबल में प्रवेश करने और करियर में उन्नति करने के अवसर प्रदान किए हैं।

स्वप्रगति परीक्षण-

सामाजिक गतिशीलता का सामाजिक परिवर्तन से को सम्बन्ध नही है। सत्य/ असत्य

5.9 सारांश

सामाजिक आंदोलन और सामाजिक गतिशीलता समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन के वाहक होते हैं और एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। सामाजिक आंदोलन समाज में बदलाव लाने के लिए सामूहिक प्रयास होते हैं, जैसे सुधार, क्रांति, या विरोध। ये आंदोलन समाज के विभिन्न पहलुओं में बदलाव लाने के लिए एक साझा विचारधारा और संगठनात्मक संरचना पर आधारित होते हैं। सामाजिक गतिशीलता, दूसरी ओर, व्यक्ति या समूह के सामाजिक पदानुक्रम में ऊपर या नीचे की ओर होने वाले परिवर्तन को दर्शाती है।

सामाजिक आंदोलन के प्रकारों में सुधारवादी, क्रांतिकारी, और प्रतिरोध आंदोलन शामिल हैं। सुधारवादी आंदोलन मौजूदा व्यवस्था में आंशिक परिवर्तन लाते हैं, जबकि क्रांतिकारी आंदोलन पूरी व्यवस्था को बदलने का प्रयास करते हैं। प्रतिरोध आंदोलन मौजूदा परिवर्तनों का विरोध करते हैं।

सामाजिक गतिशीलता को क्षैतिज (समान सामाजिक स्तर पर बदलाव) और रैखिक (उपरी या नीचे की ओर बदलाव) में विभाजित किया जाता है। क्षैतिज गतिशीलता में किसी की सामाजिक स्थिति में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं होता, जबकि रैखिक गतिशीलता में सामाजिक स्थिति में ऊपर या नीचे की ओर परिवर्तन होता है।

सामाजिक आंदोलन सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दे सकते हैं, जबकि सामाजिक गतिशीलता भी समाज में परिवर्तन की दिशा में योगदान कर सकती है। दोनों ही मिलकर समाज को अधिक न्यायसंगत और गतिशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

सामाजिक आंदोलन- सामाजिक आंदोलन समाज में बदलाव लाने या उसके किसी पहलू का विरोध करने के लिए एक बड़े समुदाय द्वारा किए गए सामूहिक प्रयासों को कहते हैं। इसमें धार्मिक, सुधारवादी, क्रांतिकारी, और विरोधपूर्ण आंदोलनों के विभिन्न प्रकार शामिल होते हैं।

सामाजिक गतिशीलता- सामाजिक गतिशीलता से तात्पर्य समाज में व्यक्तियों या समूहों की सामाजिक स्थिति में होने वाले परिवर्तनों से है। यह परिवर्तन ऊपर या नीचे की दिशा में हो सकता है और शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक नीतियों जैसे विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है।

5.11 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

असत्य

5.12 संदर्भ ग्रंथ

1 "Social movement is a collectivity action with some continuity to promote or to resist change in the society or group of wich it is a part."

-Ralph M. Turner and Lewis M. Killian, Collective Behaviour, p 308

2 P. B. Horton and other, sociology, p. 501

3 Horton and Others, *op*. cit., pp. 482-89

4 जी. के. अग्रवाल. (2000). सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन . आगरा: साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.) लि., पेज न. 338

5 "Social Mobility is any change in social position."

-Bogardus, Sociology, p. 395.

6 "Social Mobility is movement of person, group or category from one social position or stratum to another." Fitcher, Sociology, p. 319.

7 "Social Mobility refers to movement up or down, in social status."

-Horton and Hunt, Sociology, p. 291.

8 "By Social Mobility is meant any transition of an individual from one social position to another in a constellation of social groups and strata."

-P. A. Sorokin, Society, Culture and Personality, Harper, 1947, p. 9.

9 H. P. Fairchild, Dictionary of Sociology, p. 286.

10 S. M. Dubey, Social Mobility Among the Profession, p.

11 J. Gould and W. L. Kolb. Dictionary of Social Science, p. 434.

12 "Horizontal Mobility means movement back or forth on the same social level from one similar social group or situation to another." -Fitcher, op. cit., p. 319

13 "If change in status and role does involve a change in social class position, it is called vertical mobility with its sub-classes of upward mobility and downward mobility." --Gould and Kolb, op. cit., p. 434.

14 "Movement up or down from one social strata to another is termed vertical mobility." --Bertarnd, op. cit., p.

15 J. H. Fitcher, pp. 323-24.

16 P. A. Sorokin, Social and Cultural Mobility, 1959, pp. 164-180.

17 "Social movement can be viewed as collective enterprises to establish a new order of life" -Herbert blumer, Collective Behaviour, AM Lee(Ed) Outline of the principles of sociology, New York, Barnes and Noble (1946), p199.

5.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 सामाजिक आन्दोलन से क्या अभिप्राय है? संक्षेप में समझाइए।

2 सामाजिक गतिशीलता से आप क्या समझते है?

इकाई 6: जनसंख्यात्मक कारक
Demographic Factors

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 जनसंख्यात्मक कारक की अवधारणा

6.3 जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्ष

6.3.1 अति जनसंख्या

6.3.2 जन्म दर एवं मृत्यु दर

6.3.3 जनसंख्या की संरचना

6.3.4 आप्रवास तथा उत्प्रवास

6.4 सारांश

6.5 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.7 संदर्भ ग्रंथ

6.0 प्रस्तावना

समाजिक परिर्वतन एक सार्वभौमिक एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक परिवर्तन के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हो सकते हैं। विभिन्न सामाजिक कारकों का अलग-अलग समाज पर प्रभाव भिन्न-भिन्न हो सकता है। विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन के लिए जनसंख्यात्मक कारक को महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी माना है। माल्थस का विचार है कि यदि किसी देश की बढती हुई जनसंख्या

को नियंत्रित ना किया जाए तो वह खाद्य आपूर्ति की तुलना में अधिक तीव्र गति से बढती है। ऐसी विषम परिस्थिति में अर्थात् जनसंख्या व खाद्य आपूर्ति में संतुलन स्थापित करने के लिए या तो जनता स्वयं सन्तति-निरोध के उपायों से जनसंख्या को नियंत्रित करती है, या कुछ प्राकृतिक अवरोध जैसे प्लेग, हैजा, चेचक, अकाल, बाढ, भुखमरी इत्यादि समाज में क्रियाशील हो जाते हैं। सोरोकिन जैसे विद्वानों ने जनसंख्यात्मक कारकों में जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में वृद्धि अथवा ह्रास को सम्मिलित किया हैं। ऐसे विद्वानों का मानना है कि जनसंख्या के आकार एवं घनत्व ऐसे जनसंख्यात्मक कारक हैं जिन पर समाज की प्रगति निर्भर करती हैं। इसके अतिरिक्त जन्म दर एवं मृत्यु दर, जनसंख्या की संरचना तथा आप्रवास एवं उत्प्रवास जनसंख्यात्मक कारक के महत्वपूर्ण पक्ष हैं जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक की अवधारणा को समझना है। इस इकाई में जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्ष का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव की विस्तृत जानकारी प्रदान की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

1. जनसंख्यात्मक कारक की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्षों का सामाजिक परिवर्तन में भूमिका को समझेंगे।
3. जनसंख्या के विभिन्न पक्षों का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव को समझ सकेंगे।

6.2 जनसंख्यात्मक कारकों की अवधारणा

सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में जनसंख्यात्मक कारकों का अत्यधिक महत्व है। जनसंख्या की विशेषताएँ अनेक रूपों में सामाजिक परिवर्तनों को उत्पन्न करती है। जनांकिकी के अन्तर्गत हम जनसंख्या, पुरुष-स्त्री अनुपात, औसत आयु, स्थानान्तरण आदि का अध्ययन करते है। तकनीकी भाषा में जनांकिकी और जनसंख्या में अन्तर है। जनांकिकी के अन्तर्गत जनंसख्या का अध्ययन किया जाता है। सामान्यतः जनसंख्या का तात्पर्य तो मनुष्यों की गणना से है। इसके अन्तर्गत जन्म-मृत्यु दर, बीमारी, और

स्थानान्तरण का अध्ययन होता है, लेकिन जनसंख्या को जब पुरूष-स्त्री, विवाहित-अविवाहित, बालक-वृद्ध आदि दृष्टियों से देखा जाता है तो इसे जनांकिकी कहते है। उदाहरण के लिये, भारत में स्त्री-पुरुष के अनुपात में देखे तो पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि यहाँ के लोगों में पुत्र जन्म बहुत बड़ी अभिलाषा है। पुत्र के बिना परिवार का वंशानुक्रम टूट जाता है, बुढ़ापे का सहारा छिन जाता है। ऐसे ही कुछ कारणों से पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या घट गयी है। जनसंख्या के कुछ ऐसे पहलू हैं जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते है।

जनसंख्या भी सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। जितनी अधिक जनसंख्या होगी उतनी ही गरीबी का विकास होगा। गरीबी से संघर्ष बढ़ता है व समाज में तनाव हो जाता है। जनसंख्या के बढ़ने से उत्प्रवास होता है जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ता है। मैकाइवर व पेज के अनुसार, "उन्नीसवीं शताब्दी में जनसंख्या की अभूतपूर्व वृद्धि के साथ परिवार नियोजन का विकास हुआ। इस पद्धति का पारिवारिक सम्बन्धों तथा विवाह के प्रति दृष्टिकोण पर भी प्रभाव पड़ा। एकाकी परिवार की कमी के साथ विवाह व तलाक की सुविधा, पति-पत्नी के सम्बन्ध व माता-पिता के प्रति सन्तान का सम्बन्ध, परिवार की आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि में परिवर्तन हो रहे हैं।" जब जनसंख्या अधिक होती है तो संघर्ष बढ़ता है, जिसमें योग्य आदमी ही जीवित रह पाते है, इस तरह यहां डार्विन का सिद्धान्त लागू होता है कि जन्म दर घट जाती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है तो देश की जनसंख्या घटती चली जाती है जिससे समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी हो जाती है और उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का समुचित प्रयोग नहीं हो पाता जिससे उस समाज की आर्थिक दशा गिरती जाती है। फलस्वरूप परिवार छोटे होते चले जाते जिसका अंतिम परिणाम सामाजिक व पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन के रूप में होता है।

गुन्नार मर्डल ने कहा है कि यूरोप में उच्च जन्म दर और मृत्यु की कम दर में बड़ा अन्तर आने के कारण परिवर्तन ने 'जनसांख्यिकीय संक्रमण' का रूप ले लिया है। जापान के मामले में भी परिवर्तन के देर से शुरू होने के कारण, दोनों के बीच एक अंतराल आ गया है। भारत में आर्थिक विकास जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप नहीं हो पाया है। प्रति व्यक्ति आय और रहने के मानकों में सुधार, आबादी पर एक जाँच के साथ

ही संभव हो पाऐगा। भारत अपने लोगों को खिलाने की उच्च लागत के कारण से, अभी इस स्थिति में नही है कि वह अपनी अर्थव्यवस्था के सुधार में निवेश करे।

6.3 जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्ष

जनसंख्या के आकार एवं घनत्व, जन्म दर एवं मृत्यु दर, जनसंख्या की संरचना तथा आप्रवास एवं उत्प्रवास इत्यादि जनसंख्यात्मक कारक के महत्वपूर्ण पक्ष हैं जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं। यहाँ हम जनसंख्यात्मक कारक के इन पक्षों की विशेषताओं के द्वारा उत्पन्न सामाजिक परिवर्तनों की विवेचना करेगें, जिससे यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जायेगा कि जनसंख्यात्मक कारक के ये पक्ष सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैं।

6.3.1. अति-जनसंख्या

जनसंख्या वृद्धि जिसे हम कई बार जनांकिकीय विस्फोट (Population Explosion) कहते है, भारत ने ही नहीं, चीन के सामने भी सामाजिक व्यवस्था के कई नये प्रश्न खड़े कर दिये है। जब किसी देश में अति जनसंख्या की स्थिति होती है तो समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन जन्म लेते हैं। अति जनसंख्या का अभिप्राय उस स्थिति से है जब देश में पोषण के लिए खाद्यान्न की कमी हो और जनसंख्या अत्यधिक तीव्र गति से बढ़ रही हो। माल्थस के अनुसार अति-जनसंख्या की स्थिति में देश में भुखमरी, महामारी, निर्धनता, बेकारी आदि का बोलबाला हो जाता है। यह स्वाभाविक ही है कि इन परिस्थितियों से यदि एक ओर जन स्वास्थ्य का स्तर गिरता है तो दूसरी ओर जनता के रहन-सहन का स्तर भी नीचा होने लगता है। इन सब बातों से वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन और सामाजिक विघटन को अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिलता है। दूसरे शब्दों में, अति-जनसंख्या की स्थिति में सामाजिक ढाँचे और संगठन में विघटनकारी परिवर्तन होते हैं।

जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण सर्वप्रथम खाद्यान्न की कमी का संकट उत्पन्न होता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ खद्यान्न पूर्ति की समस्या गम्भीर होती जाती है। तथा समाज का अस्तित्व

खतरे में पड़ने लगता है। खाद्यान्न की कमी का सीधा प्रभाव जन स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिसके कारण जन साधारण विशेषकर गरीब जनता पर ज्यादा प्र भाव पड़ता है। बच्चे कुपोषण का शिकार हो जाते है। भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण प्रति वर्ष एक बडी संख्या में बच्चे कुपोषण का शिकार होकर काल का ग्रास बन जाते हैं। परिवार नियोजन के अनेकों उपाय करने पर भी जनसंख्या वृद्धि एक बडी समस्या के रूप में हमारे सामने है। जनसंख्या का एक बडा भाग आधारभूत सुविधाओं के अभाव में नरकीय जीवन जीने के लिए विवश हैं।

खाद्यान्न की पूर्ति के साथ-साथ निर्धनता तथा बेरोजगारी दूसरी बडी समस्यायें हैं जिसके लिए बढ़ती हुई जनसंख्या उततरदायी है। लाखों की संख्या में युवा बेरोजगारी का शिकार हैं। भारत में न केवल अशिक्षित अपितु पढ़े-लिखे युवाओं की भारी भरकम फौज में प्रति वर्ष लाखों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। बेरोजगारी की समस्या यहीं समाप्त नहीं हो जाती। बेरोजगारी के शिकार युआवों के मन में व्यवस्था के प्रति आक्रोश बढ़ता जा रहा है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए युवा गलत रास्ता अपना लेते हैं। जो समाज के लिए घोर संकट का प्रयाय बनता जा रहा है। बेरोजगारी सामाजिक विघटन में आग में घी का काम कर रही है। युवा दिशाहीन हो रहे है। निराश युवक मादक पदार्थों तथा नशे की लत में आ जाते हैं। इसके अलावा युवकों में लूटमार, चोरी, अपराध आदि की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ रहीं है। बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति न कर पाने की स्थिति में आत्महत्या, भूण हत्या आदि सामाजिक समस्याओं ने भी विकराल रूप ले लिया है। विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी संगठनों द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों, योजनाओं एवं जागरुकता अभियानों का भी जनसंख्या वृद्धि पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड रहा हैं।

6.3.2 जन्मदर एवं मृत्युदर

जन्म दर एवं मृत्यु दर का प्रभाव विभिन्न रूपों में समाज पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश की जन्म-दर घट जाती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है तो उसकी जनसख्या घटती जायेगी जिससे समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी होगी और उस देश में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक साधनों का भरपूर प्रयोग नहीं हो

सकेगा। इससे भी देश की आर्थिक दशा गिरती जायगी, परिवारों का आकार घटता जायेगा और इसके फलस्वरूप सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों में अनेक परिवर्तन होगे। और यदि किसी देश की जन्म-दर बढ़ जाती है और मृत्यु दर घट जाती है तो उसकी जनसख्या बढती जायेगी, जिससे समाज में भुखमरी, महामारी, निर्धनता, बेकारी आदि समस्याओं में तीव्र गति से वद्धि होगी।

6.3.3 जनसंख्या की सरंचना

जनसंख्या के घटने बढ़ने से उसकी सरंचना में परिवर्तन हो जाता है और यह परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का कारण बन जाता है। साधरणतः जनसंख्या की संरचना में व्यक्तियों की आयु-सरंचना, बच्चों व युवकों में अनुपात, स्त्रियों और पुरुषों का अनुपात आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस सभी बातों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। यदि किसी समाज में वृद्धों और बच्चों की संख्या अधिक है तो स्वभावतः उस देश में आर्थिक उत्पादन उचित ढंग से नहीं हो सकेगा, क्योंकि युवा व्यक्ति ही उत्पादन का कार्य अधिक अच्छी तरह से कर सकते है। इसके विपरीत, वृद्धो की संख्या अधिक होने से आविष्कार अधिक हो सकेंगे, क्योंकि वृद्धों के अनुभवों का लाभ प्राप्त हो सकेगा। यदि समाज में स्त्रियों की संख्या पुरुषों के अनुपात में अधिक है तो उस समाज में बहुपत्नी-प्रथा का प्रचलन होगा। इसके विपरीत, यदि पुरुषों की संख्या अधिक है तो बहुपति प्रथा और वधू-मूल्य प्रथा का प्रचलन होगा। ये सभी बातें समाज के सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है।

जनसंख्या एवं उसकी संरचना में परिवर्तन का सामाजिक व्यवस्था पर गहन प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश की भौगोलिक, आर्थिक, सामजिक तथा राजनीतिक दशा का वहाँ की जनसंख्या एवं उसकी संरचना पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। भारत में स्वतंत्रता पूर्व शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं की निम्न स्थिति के कारण जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों अधिक थी। स्वतंत्रता पश्चात् सरकार द्वारा चलायी गयी विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का जन्मदर एवं मृत्यू दर दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ा, और जन्मदर में वृद्धि तथा मृत्यु दर में कमी आने लगी। जिससे भारत में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। जन्म दर एवं मृत्यु दर में अन्तर का समाज के विभिन्न स्वरूपों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी देश की जन्म दर की

अपेक्षा मृत्यु दर अधिक है तो उसकी जनसंख्या घटती जायेगी। जिससे उस समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी हो जायेगी। कर्यशील व्यक्तियों की कमी के कारण उस देश में उपलब्ध समस्त प्रकृतिक संसाधनों का उपयोग नहीं हो सकेगा। जिससे देश की आर्थिक दशा निम्नतर होती जायेगी। जिसका सीधा प्रभाव समाजिक व्यवस्था पर पड़ेगा और जीवन स्तर घटता जायेगा। परिवार का आकार भी घटेगा। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ेगा।

जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ उसकी संरचना में भी परिवर्तन होता रहता है। जनसंख्यात्मक संरचना मे यह परिवर्तन विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न हो सकता है। यह परिवर्तन समय और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जनसंख्यात्मक संरचना से तात्पर्य आयु-संरचना स्त्री पुरुष का अनुपात अर्थात लिंगानुपात, बच्चे-युवा एवं बूढ़ों की संख्या में अनुपात से है। भारत के सन्दर्भ में लिंगानुपात चिन्ता का विषय बना हुआ है विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों के प्रभाव के बाद भी लिंगानुपात में सकारात्मक परिणाम नहीं मिल रहे हैं। इसके लिये शिक्षा एवं जागरुकता की कमी के साथ-साथ हमारी धार्मिक मान्यतायें भी समान रूप से उत्तरदायी है। स्त्री एवं पुरुषों की संख्या में अन्तर से कई समाजिक समस्याओं ने विकराल रुप ले लिया है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या में कमी के कारण दहेज प्रथा, वधू-मूल्य आदि सामस्याओं का विकास हुआ है। दहेज प्रथा के बढ़ते प्रभाव ने कन्या भ्रूण हत्या को प्रोत्साहन दिया है, जो विभिन्न प्रयासों के बाद भी कम नहीं हो पा रहा है। दहेज की व्यवस्था करने के प्रयास में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, और अत्याधिक धन कमाने की होड़ लग गयी है। जिससे सामाजिक विघटन की प्रक्रिया में तेजी आयी है पुरुषों की तुलना में स्त्रीयों की संख्या में कमी के कारण बहुत से युवा अविवाहित रह जा रहे हैं। जिससे उन्हें सामाजिक व्यवस्था में अपने आपाको व्यवस्थित करने में कठिनाई होती है तथा कई सामाजिक कठिनाइयों का सामना करने के लिए विवश होना पडता है। अविवाहित युवकों में सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश बढता है तथा वे कई विघनकारी आदतों के शिकार हो जाते हैं। विवाह न होने के कारण नये परिवारों का निर्माण नहीं हो पता तथा परिवार जो कि समाज की महत्वपूर्ण इकाई है, की कमी के कारण सामाजिक व्यवस्था पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है।

जनसंख्या की वृद्धि को यदि रोक दिया जाये या नियंत्रित कर दिया जाये तो इसके परिणाम जीवन स्तर में उन्नति, स्त्रियों के स्वास्थ्य में सुधार, बच्चों का श्रेष्ठतर पालन-पोषण और अन्ततः स्वास्थ्य समाज का निर्माण के रूप में सामने होगा। जिन देशों में जनसंख्या की वृद्धि होती रहती है तथा प्राकृतिक संसाधन सीमित होते है वहाँ साम्राज्यवाद एवं सैनिकवाद की प्रवृत्ति विकसित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। जनसंख्या की वृद्धि जीवन स्तर के लिए भयावह बन जाती है। जनसंख्या संरचना में परिवर्तन का विवाह तलाक, पति-पत्नी के सम्बंधों, माता पिता एवं बच्चों के सम्बन्धों, बच्चों के पालन पोषण के तरीकों तथा परिवार की समाजिक आर्थिक दशाओं, आदि पर गहन प्रभाव पड़ता है।

6.3.4. अप्रवास और उत्प्रवास का प्रभाव

आप्रवास का अर्थ है बाहर या दूसरे देशों से लोगों का आना और उत्प्रवास का अर्थ है देश के लोगों का अन्य देशों को जाना। दोनों ही स्थितियों में समाज में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन जन्म लेते है। आप्रवास के सन्दर्भ में भारतवर्ष का उदाहरण दिया जा सकता है। विभाजन के बाद लाखों की संख्या में शरणार्थी पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान (आज के बंग्लादेश) से बे-घरबार होकर भारतवर्ष में आकर बस गये। उनके आने से देश के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसी प्रकार उत्प्रवास भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी देशों से जब अतिरिक्त लोगों को अमरीका में जाकर बसने के लिए भेज दिया गया तभी इन देशों में अति-जनसंख्या की समस्या कुछ कम हुई और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। निष्कर्षतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अत्यधिक जनसंख्या के कारण बेराजगारी, गरीबी, आवास की कमी, अशिक्षा, खराब स्वास्थ्य एवं कस्बों व शहरों में ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन के कारण भीड़-भाड़ का निरन्तर बढ़ना आदि समस्याएँ बढ़ी है। माल्थस का सिद्धान्त भारतीय स्थिति में लागू नहीं होता क्योंकि स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के कारण मृत्यु दर काफी काफी कम हो गयी हैं। यद्यपि, जन्म दर में बहुत कम परिवर्तन आया है। अतः किसी भी देश के सामाजिक परिवर्तन को दिशा देने के लिये जनांकिकीय नियोजन आवश्यक है, क्योंकि जनांकिकीय कारक

सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। जिसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन को नियोजित परिवर्तन के रूप में बदला जा सकता है। जिससे किसी भी देश की सामाजिक उन्नति में सहायता प्राप्त की जा सकती है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. तकनीकी भाषा में जनांकिकी और जनसंख्या में क्या अन्तर है ?

.....

.....

.....

2. जन्मदर एवं मृत्युदर में अन्तर बताएँ।

.....

.....

.....

1. अप्रवास एवं उत्प्रर्वास का प्रभाव स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

6.4 सारांश

जनसंख्या में परिवर्तन का सामाजिक परिवर्तन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या के घटने-बढ़ने का देश की आर्थिक स्थिति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जिन देशों में प्राकृतिक स्रोत तो कम होते हैं परन्तु जनसंख्या अधिक होती है वहाँ निर्धनता और भुखमरी का बोलबाला रहता है। जहाँ अनुकूल व आदर्श

जनसंख्या होती है वहाँ के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा होता है। इसके साथ ही जन्म व मृत्यु दर भी परिवर्तन लाता है। अगर मृत्यु दर अधिक है तो जनसंख्या कम होती जाती है तथा अधिक बच्चों के जन्म को प्राथमिकता देने वाली प्रथाएँ विकसित होने लगती हैं। अगर जन्म दर अधिक है और मृत्यु दर कम है तो जनाधिक्य की समस्या पैदा हो जाती है जिनसे निर्धनता, बेरोजगारी, भुखमरी आदि में वृद्धि हो जाती है। जनसंख्या में गतिशीलता (आप्रवास तथा उत्प्रवास), जनसंख्या में औसत आयु तथा लिंग अनुपात कुछ अन्य जनसंख्यात्मक कारक हैं जोकि सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायक हैं। जनसंख्या के विकास के साथ-साथ सामाजिक मान्यताओं, प्रथाओं और रीति-रिवाजों में भी परिवर्तन आता है। जनसंख्या एवं उसकी संरचना में परिवर्तन का सामाजिक व्यवस्था पर गहन प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश की भौगोलिक, आर्थिक, सामजिक तथा राजनीतिक दशा का वहाँ की जनसंख्या एवं उसकी संरचना पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। भारत में स्वतंत्रता से पूर्व शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं की निम्न स्थिति के कारण जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों अधिक थी। स्वतंत्रता पश्चात् सरकार द्वारा चलाये गये विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ा। और जन्म दर में वृद्धि तथा मृत्यु दर में कमी आने लगी, जिससे भारत की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। जन्म दर एवं मृत्यु दर में अन्तर का समाज के विभिन्न स्वरूपों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी देश की जन्म दर की अपेक्षा मृत्यु दर अधिक है तो उसकी जनसंख्या घटती जायेगी। जिससे उस समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी हो जायेगी। कर्यशील व्यक्तियों की कमी के कारण उस देश में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग नहीं हो सकेगा। जिससे देश की आर्थिक दशा निम्नतर होती जायेगी। जिसका सीधा प्रभाव समाजिक व्यवस्था पर पड़ेगा और जीवन स्तर घटता जायेगा। परिवार का आकार भी घटेगा। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ेगा। अतः सामाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि परिवर्तन के लिए उत्तरदायी जनसंख्यात्मक कारकों का गहनता से अध्ययन करना चाहिए। जिससे जनसंख्या परिवर्तन के सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव को समझ सके तथा इससे उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत कर एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सके।

7.5 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. तकनीकी भाषा में जनांकिकी और जनसंख्या में अन्तर है। जनांकिकी के अन्तर्गत जनसख्या का अध्ययन किया जाता है। सामान्यतः जनसंख्या का तात्पर्य तो मनुष्यों की गणना से है। इसके अन्तर्गत जन्म-मृत्यु दर, बीमारी, और स्थानान्तरण का अध्ययन होता है, लेकिन जनसंख्या को जब पुरूष-स्त्री, विवाहित-अविवाहित, बालक-वृद्ध आदि दृष्टियों से देखा जाता है तो इसे जनांकिकी कहते है।

2. जन्म दर एवं मृत्यु दर का प्रभाव विभिन्न रूपों में समाज पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश की जन्म दर घट जाती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है तो उसकी जनसख्या घटती जायेगी जिससे समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी होगी और उस देश में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक साधनों का भरपूर प्रयोग नहीं हो सकेगा। इससे भी देश की आर्थिक दशा गिरती जायगी, परिवारों का आकार घटता जायेगा और इसके फलस्वरूप सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों में अनेक परिवर्तन होगे। और यदि किसी देश की जन्म दर बढ़ जाती है और मृत्यु दर घट जाती है तो उसकी जनसख्या बढती जायेगी, जिससे समाज में भुखमरी, महामारी, निर्धनता, बेकारी आदि समस्याओं में तीव्र गति से वद्धि होगी।

3. आप्रवास का अर्थ है बाहर या दूसरे देशों से लोगों का आना और उत्प्रवास का अर्थ है देश के लोगों का अन्य देशों को जाना। दोनों ही स्थितियों में समाज में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन जन्म लेते है। आप्रवास के सन्दर्भ में भारतवर्ष का उदाहरण दिया जा सकता है। विभाजन के बाद लाखों की संख्या में शरणार्थी पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान (आज के बंग्लादेश) से बे-घरबार होकर भारतवर्ष में आकर बस गये। उनके आने से देश के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसी प्रकार उत्प्रवास भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी देशों से जब अतिरिक्त लोगों को अमरीका में जाकर बसने के लिए भेज दिया गया तभी इन देशों में अति जनसंख्या की समस्या कुछ कम हुई और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक से क्या अभिप्राय है?

2. जनसंख्यात्मक कारक के प्रमुख पक्षों का उल्लेख कीजिए।

3. जनसंख्या का आकार एवं घनत्व में वृद्धि या हास किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करता है।

4. जन्मदर एवं मृत्यु दर की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका की विवेचना कीजिए।

6.7 संदर्भ ग्रंथ

1. जे० पी० सिंह (2004) समाजसास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

2. जे० पी० सिंह (1999) सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

3. एस० एल० दोषी एवं पी० सी० जैन (2009) समाजसास्त्र: नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

4. नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) समाजसास्त्र विवेचन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

5. विद्याभूषण एवं डी० आर० सचदेव (2010) समाजसास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, नई दिल्ली।

6. हरिकृष्ण रावत (2002): समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर। K.L. Sharma (2007): India Social Structure and Change, Rawat Publications, New Delhi.

7. T.B. Bottomore (1970): Sociology: A Guide to Problem and Litrature, S. Chand and Company, New Delhi.

8. M.N. Srinivas (2009): Social Change in Modern India, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

इकाई 7: प्रौद्योगिकीय कारक
Technological Factors

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 उत्पादन-प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

7.3 संचार प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

7.4 यातायात-प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

7.5 पारिवारिक जीवन पर प्रभाव

7.6 आर्थिक जीवन पर प्रभाव

7.7 सामाजिक जीवन पर प्रभाव

7.8 राज्य पर प्रभाव

7.9 धार्मिक जीवन पर प्रभाव

7.10 सारांश

7.11 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

7.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.13 संदर्भ गंर्थ

7.0 प्रस्तावना

प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन का एक सषक्त कारक है। प्रौद्योगिकी समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है, क्योंकि प्रौद्योगिकी में कोई भी परिवर्तन किसी संस्था अथवा समूह में परिवर्तन का कारण बनता है। ऊर्जा के नए स्रोतों की खोज के फलस्वरूप यंत्र प्रौद्योगिकी के आगमन के इतने महत्वूपर्ण परिणाम हुए

कि इसे बहुधा क्रांति का नाम दिया गया है। आदिमकाल से आज तक कई प्रौद्योगिकीय क्रान्तियाँ हुई हैं। क्रान्तियों के इस क्रम में भाप के इंजन तथा कोयले का महत्वपूर्ण योगदान रहा। कोयले ने बड़े-बड़े भीमकाय कल-कारखाने चलाये। इसके बाद बिजली आयी और आज हम सूचना के युग में खड़े हैं। इन प्रौद्योगिकी क्रान्तियों ने सामाजिक परिवर्तन को निरन्तर नई दिशा प्रदान की है। प्रौद्योगिकी जनित क्रान्ति ने सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया। सामाजिक क्रान्ति का बहुत अच्छा दृष्टान्त थर्सटीन वेबलीन का विलास अर्थात् फुरसत का सिद्धान्त है।

ऑगर्बन का कथन है, "प्रौद्योगिकी समाज को हमारे पर्यावरण में परिवर्तन द्वारा जिसके प्रति हमें अनुकूलित होना पड़ता है, बदलती है। यह परिवर्तन प्रायः भौतिक आयामों में आता है तथा हम इन परिवर्तनों के साथ जो अनुकूलन करते है, उससे प्रथाओं एवं सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन हो जाता है।"

मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि जब किसी भी नयी मषीन का आविष्कार होता है तो वह अपने साथ सामाजिक जीवन में एक नये परिवर्तन को लाती है।

बॉटोमोर ने कहा है "भारत वर्ष में अनेक प्रक्रियाएँ एक साथ घटित हो रही हैं। औद्योगिकीय विकास की योजनाबद्ध कार्यषीलता तथा इसके साथ साथ कृषि संबंधी अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण योजना भी लागू है। इसके अतिरिक्त अनेक अवांछित और अनपेक्षित परिवर्तन दिखाई देते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप में औद्योगीकरण तथा नवीनीकरण से उत्पन्न होते हैं। इन विशाल परिवर्तनों का समाजशास्त्रियों द्वारा विष्लेषण करना तो दूर रहा, अभी तक उनका वर्णन भी नहीं किया गया।"

ममफोर्ड के अनुसार "हमारे युग का नवीनतम तथा व्यापक तत्व पूँजीवाद नहीं अपितु यंत्रीकरण है, जिसका परिणाम पूँजीवाद है। हमें यह विदित है कि इस यन्त्रीकरण ने हमारी जीवन विधि को तथा विचार पद्धति को परवर्तित कर दिया है।"

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारक तथा समाज में उनके प्रभाव को समझना है। विज्ञान के विकास के साथ-साथ किन प्रतिदिन नई-नई प्रौद्योगिकी का अविष्कार हो रहा है। इस इकाई द्वारा मानव जीवन से जुडे विभिन्न आयामों में हुए प्रौद्योगिकी परिवर्तन पर प्रकाश डाला गया है तथा इन परिवर्तनों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. समाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारकों को समझ सकेंगे।
2. मानव जीवन से जुडे प्रमुख आयामों में हुए प्रौद्योगिकी परिवर्तनों को समझ सकेंगे।
3. प्रौद्योगिकीय कारकों के सामाजिक जीवन पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.2 उत्पादन-प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

प्रौद्योगिकी की उन्नति के सम्मुख हमारी मनोवृत्तियाँ, विष्वास एवं रीति-रिवाज शिथिल हो गये हैं। श्रमिकों की चेतना, सामाजिक वर्गों की दैवी व्यवस्था, रीति-रिवाज, तथा जन्म की प्रतिष्ठा सभी प्रौद्योगिकी के षिकार हुए हैं। औद्योगिक युग में स्त्रियों की प्रस्थिति का उदाहरण लिया जा सकता है। औद्योगिकतावाद ने उत्पादन की घरेलू प्रणाली को नष्ट कर स्त्रियों को घर से कर्यषाला एवं कार्यालय में पहुँचा कर उनकी आय को विभेदित कर दिया है। इसने स्त्रियों को नवीन सामाजिक जीवन प्रदान किया है। आधुनिक प्रौद्योगिक के परिणामस्वरूप वस्तुओं के उत्पादन को सस्ता बना दिया है, अपितु वस्तुओं के वितरण को भी उच्च ढंग से संगठित, कुषल एवं व्यापक बना दिया है। उद्योगों ने श्रमिकों को संगठित कर दिया है तथा उत्पादन एवं वितरण की जटिल व्यवस्था को जन्म दिया है। उद्योग में उन्नत उत्पादन क्षमता ने जनसंख्या के अधिकांष भाग को सेवा कार्यों से मुक्त कर दिया है। अभियन्ताओं, लेखाकारों, कच्चे पदार्थों के क्रेताओं एवं निर्मित वस्तुओं के विक्रेताओं, जो वास्तविक रूप में उत्पादन कार्य नहीं करते, की सख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। उत्पादन एवं व्यापार की विधि में परिवर्तन के कारण राजनीतिक नियमन की नई समस्याओं का जन्म हुआ। कानून के कार्यों का विस्तार हुआ। कानून-निर्माताओं कानून को क्रियान्वित करने वाले नौकरषाहों तथा कानून की व्याख्या करने वाले वकीलों की संख्या में तीव्र गति से

वृद्धि हुई है। उद्योग, कृषि एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में विज्ञान के प्रयोग से अनेक नवीन सेवागत कार्यों का जन्म हुआ। औद्योगिक श्रमिकों की सामाजिक प्रस्थिति में ह्रास हुआ, जबकि सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के सामाजिक मान में वृद्धि हुई। यदि हम अपने चारों ओर देखे तो हमें प्रौद्योगिकीय आविष्कारों के फलस्वरूप समाज में हो रहे विषाल परिवर्तनों का आभास हो जाएगा। बारूद के आविष्कार से युद्ध की प्रविधि ही बदल गई हैं। हमारे युग का सर्वाधिक विशिष्ट अन्वेषण अणु षक्ति है, जिसने हमारे जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। युद्ध के अभिकर्ता के रूप में इसने हीरोषिमा एवं नागासाकी में भीषण नर-संहार किया। शांति के अभिकर्ता के रूप में वह अन्ततः समृद्धि का अभूतपूर्व युग ला सकता है। यत्रंचालित वाहनों ने सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र को व्यापक बना दिया है तथा पड़ोस के सामुदायिक स्वरूप को कम कर दिया है। जीवन स्तर में वृद्धि,

वर्ग-सरंचना एवं वर्ग-मानको में परिवर्तन, मध्यम वर्ग का उत्थान, स्थानीय लोक-रीतियों की महत्वहीनता, पड़ोस का विघटन, प्राचीन पारिवारिक व्यवस्था की ध्वस्तता, ग्राम्य ढंगों पर शहरी जीवन-क्रम की बढ़ती हुई प्रबलता, स्त्रियों की दषां में उन्नति, नवीन विचारधाराओं एवं आन्दोलनों, तथा साम्यवाद एवं समाजवाद का जन्म, औद्योगिक समूहों विषेषतः श्रमिक संघो की चुनौती तथा शोभाचार का प्रसार उत्पादन-प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के परिणाम है। मनुष्यों की विचाराधाएँ अधिक अनुभववादी हो गई है। वे गुण की तुलना में परिणाम के प्रति तथा मूल्यांकन की अपेक्षा मापन के प्रति अधिक निष्ठावान् हैं। उनकी मनोवृत्ति यांत्रिक हो गयी है तथा चिन्तन प्रधान जीवन का अभाव है।

कृषि प्रविधियों में परिवर्तनों ने ग्राम्य समुदाय को प्रभावित किया है। नवीन कृषि उपकरणों एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रयोगों से कृषि उत्पादक में वृद्धि हुई है। जिससे ग्रामीण लोगों का जीवन स्तर उन्नत हो गया है। अब कृषि के लिए अपेक्षाकृत कम लोगों की आवष्यकता होती है। परिणामतः अनेक कृषि श्रमिकों ने नगरों की ओर काम की तलाष में प्रवास किया है।

7.3 संचार प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

न केवल उत्पादन-प्रौद्योगिकी में परिवर्तनों ने अपितु संचार-साधनों में परिवर्तनों ने भी सामाजिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। आधुनिक संचार प्रविधियों में परिवर्तनों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव उत्पादन-प्रौद्योगिकी में परिवर्तनों के प्रभाव के समान है परन्तु संचार-साधनों में परिवर्तनों का अतिरिक्त प्रभाव भी पड़ता है, क्योंकि जिस प्रयोग में वे लाए जाते हैं, उनका स्वयं सामाजिक महत्व होता है। सभी संचार-विधियों का मूल कार्य समय एवं दूरी पर विजय प्राप्त करना हैं। संचार की प्रविधियाँ उन संगठनों, जिनका मनुष्य विकास कर सकता है, के क्षेत्र को तथा पर्याप्त सीमा तक उनके स्वरूप को सीमित कर देती हैं। संचरण हमारे सामाजिक जीवन को निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसकी प्रविधियाँ निष्चित रूप से संगठित जीवन के प्रकारों को सीमित करती हैं। संचरण की प्राथमिक प्रविधियाँ वाणी एवं संकेत हैं, क्योंकि संचरण के अन्य सभी ढंग इन पर आधारित हैं। लेखन वाणी का लिखित स्वरूप है; रेडियों संचरण दूरी मिटाते हुए वाणी का संचार है। सांकेतिक एवं भाषायी अन्तर विभिन्न समूहों एवं समाजों के लोगों के बीच सद्भावना एंव सम्पर्क की वृद्धि करने में विषिष्ट बाधक हैं। गत कुछ शताब्दियों में संचार की अनुषंगी प्रविधियों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुए हैं। प्रौद्योगिकीय परिवर्तन ने इन विचारों को प्रोत्साहित किया है। भावचित्रों द्वारा लेखन, जो ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से लेखन-प्रतीकीकरण का प्राथमिक रूप था, की अपेक्षा वर्णमाला द्वारा लेखन श्रेष्ठतर है। लेखन की नमनीय एवं सरल प्रणाली राजनीतिक संगठन के आनुषंगिक रूपों के जन्म को सुगम बना देती है। जब व्यक्ति संचार की प्राथमिक प्रविधियों पर पूर्णतया आश्रित होते हैं तो स्थायी, जटिल एवं उच्च रूप से एकीकृत संगठनों की उत्पत्ति कठिन होती है। वर्णमालात्मक लेखन सांस्कृतिक तत्वों के अन्वेषण एवं विसरण को सुलभ बना देता है।

मुद्रणालय के आविष्कार ने सस्ती पाठ्य सामग्री के उत्पादन को सुगम बना दिया है। विज्ञान की उन्नति को मुद्रणालय के विकास ने प्रोत्साहित किया है। वैज्ञानिक खोजों के मुद्रण ने ज्ञान के संचय को सम्भव बनाया। इस प्रकार, भावी अन्वेषक ज्ञान के इस मुद्रित भडांर का अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है।

मुद्रित शब्द अन्वेषणों एवं खोजों को किसी समाज के सदस्यों एवं समाजों के बीच द्रुत गति से विसरित कर देता है। इससे ज्ञान, जो केवल कुछेक लोगों की सम्पत्ति बनकर रह जाता, अनेक लोगों में व्याप्त हो जाता है। जिस द्रुत गति से आधुनिक युग में सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं, उनका श्रेय संचरण के रूप में मुद्रित शब्द के बढ़ते हुए प्रयोग को दिया जा सकता है। मुद्रणालय ने मनोरजंन, शिक्षा, राजनीति एवं व्यापार को प्रभावित किया है। इसने ग्रामवासी को शहरी जीवन का ज्ञान कराया है तथा उसमें नगरीय वस्तुओं की इच्छा उत्पन्न की है अथवा उसे नगर में प्रवास करा दिया है।

इस प्रकार हम समझ सकते है कि रेडियों, दूरभाष एवं तार के आविष्कार ने व्यापार मनोरंजन एवं जनमत को प्रभावित किया है तथा संगठन के नए ढंगों के विकास को आगे बढ़ाया है। आगबर्न ने संस्कृति की एकरूपता एवं इसके विसरण, मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद, यातायात, षिक्षा, सूचना-प्रसारण धर्म, उद्योग, व्यापार, व्यावसाय शासन-प्रणाली, राजनीति एवं अन्य आविष्कारों पर रेडियों के 150 तात्कालिक एवं अन्य दूरगामी सामाजिक प्रभावों को सूचीबद्ध किया है।

7.4 यातायात-प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

यातायात के साधनों में परिवर्तन ने हमारे सामाजिक सम्बन्धों को विविध प्रकार से प्रभावित किया है। यातायात के साधनों में परिवर्तन अथवा उन्नति दूरी पर भौतिक विजय है। यातायात के साधन एवं ढंग इस बात का निर्धारण करते हैं कि मनुष्य कितनी सुगमता से आ-जा सकते हैं तथा कितनी सुगमता से दूसरे स्थानों अथवा समाजों के लोगों से विचारों अथवा वस्तुओं के आदान-प्रदान हेतु संपर्क स्थापित कर सकते हैं। आधुनिक सामाजिक जीवन में यातायात का महत्व स्पष्ट है। आधुनिक मनुष्य पहियों पर इतना अधिक आश्रित है कि यदि स्थानीय यातायात न होता तो वह उपनगरों में रहकर नगर में कार्य नहीं कर सकता था, यदि यंत्रचलित वाहन न होते तो वह स्टेषन पर रेलगाड़ी पकड़ने के लिए कुछ ही मिनट पूर्व घर को नहीं छोड़ सकता था। यदि रेलगाड़ियाँ अथवा जहाज न होते, जो संसार के विभिन्न भागों को व्यापारिक रूप में संयुक्त करते हैं, तो वह विभिन्न संस्कृतियों को जानने व समझने से अछुता रह जाता।

यदि यातायात के पहिए एक दिन के लिए भी रूक जाएँ तो आधुनिक समाज का जीवन-विश्रृंखलित हो जाएगा।

यातायात सामाजिक सम्बन्धों के स्थानिक स्वरूप को निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक हैं। जैसे-जैसे यातायात के साधनों में परिवर्तन हुआ है, वैसे-वैसे ही समूह के सदस्यों के स्थानिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है। यातायात के द्रुतगामी साधनों की सुविधा से अन्तःद्वीपीय व्यापार एवं देशों की आन्योन्याश्रियता में वृद्धि हुई है। विभिन्न देशों के लोगों के परस्पर मिलने से अधिकांश भ्रांतियाँ दूर हो गई है तथा घृणा एवं ईर्ष्या का स्थान सहानुभूति एवं सहयोग ने ले लिया है। इससे सार्वभौमिक भ्रातृत्व की भावना का विस्तार हुआ है। वायुयानों एवं पानी के जहाजों के आविष्कार ने वस्तुओं के आयात-निर्यात को और भी अधिक तीव्र बना दिया है। नगरों का विकास तथ इसकी सभी समस्याएं यातायात के साधनों के विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम है। आजकल जनसंख्या अति गतिशील है जिसमें यातायात के आधुनिक द्रुत साधनों ने योगदान दिया है। यातायात के नये ढंगों ने सांस्कृतिक तत्वों के विसरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। वायुयान, रेलवे, मोटर गाड़ियाँ, यंत्रचालित वाहनों ने रेडियों एवं मुद्रणालय सहित सांस्कृतिक पृथकत्व को कम करके सांस्कृतिक एकरूपता के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। गत कुछ शताब्दियों, विशेषतः गत एक सौ वर्षों के यातायात सम्बन्धी विकास ने प्रदेशों, राष्ट्रों एवं समग्र रूप से संसार के लोगों के आर्थिक एकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, यद्यपि उनके बीच सामाजिक एकीकरण का अभी विकास होना शेष है।

इस प्रकार, प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों ने सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों को प्रभावित किया हैं। लोगों में सामूहिकता का भावना का ह्रास हुआ है। उनमें व्यक्तिवाद की जड़ें गहरी होती जा रही हैं। इन परिवर्तनों ने सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक निर्मूलता को गहनतम बना दिया है। व्यक्तिवाद ने परम्परावाद का स्थान ले लिया है। नौकरशाही की सत्ता एवं उसकी संख्या में वृद्धि हुई है। मानवी सम्बन्ध अवैयक्तिक अथवा आनुषंगिक बन गए हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि परिवर्तन पहले प्रविधियों की एक प्रणाली में उत्पन्न होकर बाद में दूसरी प्रणालियों में आयें हैं जब कभी प्रविधियों की प्रणाली के किसी तत्व में परिवर्तन हुआ है तो उससे सम्पूर्ण प्रणाली में उथल-पुथल हुई जिसमें इसके सभी तत्वों में परिवर्तन आए।

प्रमुख सामाजिक संस्थाओं पर प्रौद्योगिक के प्रभावों को निम्न प्रकार से संक्षेपित किया जा सकता है।

7.5 पारिवारिक जीवन पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी पारिवारिक जीवन में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तनों को जन्म देती है। मशीनों के आविष्कार के फलस्वरूप बड़े-बड़े उद्योग-धन्धें पनप जाते हैं। इसमें काम करने के लिए अनेक लोगों की आवश्यकता होती है। अतः लोग गाँव से आकर शहर में बसने लगते हैं। परन्तु मकानों की समस्या के कारण वे अपने संयुक्त परिवारों को नगरो में बनाये नहीं रख पाते; इससे संयुक्त परिवार का विघटन होता है। प्रौद्योगिकीय विकास स्त्रियों को भी नौकरी का अवसर प्रदान करता है। इससे स्त्रियों की आर्थिक स्थिति सुधरती है, लेकिन परिवार का सामान्य संगठन बिगड़ता है। पति-पत्नी में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं पनप पाता तथा बच्चों का पालन-पोषण भी उचित ढंग से नहीं होता। इतना ही नहीं, प्रौद्योगिकी विकास परिवार के कार्यों को भी कम करता है। आज परिवार के अनेक कार्य बाहरी समिति और संस्थाओं ने ले लिये हैं। साथ ही, प्रौद्योगिकी युवक-युवतियों को साथ-साथ काम करने, शिक्षा प्राप्त करने व मिलने-जुलने का अवसर प्रदान करती है। जिससे प्रेम-विवाह, अर्जातीय विवाह, विलम्ब-विवाह और विवाह-विच्छेद आदि को प्रोत्साहन मिलता है। आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बन्धों को अनेक प्रकार से प्रभावित किया। प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं-

(i) प्रौद्योगिकी ने संयुक्त परिवार प्रणाली के विघटन में योगदान दिया है।

(ii) कार्यशालाओं एवं कार्यालयों में स्त्रियों द्वारा नौकरी में भागीदारी ने पति-पत्नी के सम्बन्धों के स्वरूप को बदल दिया है तथा अन्य अनेक प्रकार से पारिवारिक संरचना एवं कार्यों को प्रभावित किया है।

iii) स्त्री और पुरुष दोनों के नौकरी करने से बच्चों के सामाजिकरण पर कुप्रभाव पडा है।

(iv) प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 'स्त्री मुक्ति आन्दोलन' प्रौद्योगिकी को परिणाम है।

(v) प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब से विवाह प्रौद्योगिकी के अन्य प्रभाव है।

(vi) संतति-नियंत्रण के साधनों के आविष्कार ने परिवार के आकार को कम कर दिया है।

7.6 आर्थिक जीवन पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप, जैसा कि कहा जा चुका है, औद्योगिक विकास सम्भव होता है। इससे अनेक प्रकार के परिवर्तन स्वतः ही घटित होते हैं। जैसे औद्योगिकरण का एक सामान्य परिणाम पूँजीवाद का विकास है। उसी प्रकार, प्रौद्योगिकीय विकास के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है। और जब उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है तो श्रम-विभाजन की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि एक या कुछ व्यक्तियों द्वारा प्रत्येक प्रकार का कार्य नहीं हो सकता। एक व्यक्ति जब काफी दिनों तक एक प्रक्रियों के अन्तर्गत एक विशेष प्रकार का कार्य करता रहता है, तब वह उसमें विशेषीकरण प्राप्त कर लेता है। प्रौद्योगिकीय उन्नति हमारे जीवन स्तर को भी ऊँचा करती है, परन्तु साथ ही अनेक प्रकार की औद्योगिक दुर्घटनाएँ, बीमारी और झगडें भी इसी की उपज हैं। ये प्रभाव निम्न लिखित हैं-

(i) उद्योग घरेलू नहीं रह गए हैं। अब कार्यशालाओं, एजेन्सियों, भंडारों, बैंको आदि जैसे आर्थिक संगठनों का विकास हुआ है।

(ii) इसने पूँजीवाद एवं इसकी सब बुराइयों को जन्म दिया है।

(iii) इसने जीवन-स्तर में वृद्धि की है।

(iv) श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण प्रौद्योगिकी की उपज हैं।

(v) इसने आर्थिक मंदी, बेकारी, औद्योगिकी संघर्षो, दुर्घटनाओं एवं रोगों को जन्म दिया है।

vi) इसने श्रमिक संघ आन्दोलन को जन्म दिया है।

7.7 सामाजिक जीवन पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी से एक बड़ा परिवर्तन यह होता है कि उद्योग-धन्धों में प्रगति होती है। औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े नगरों का विकास होता है। और समुदाय की जनसंख्या जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाये रखना कठिन होता है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम सामुदायिक जीवन का ह्रास होता है। इसी प्रकार बड़े-बड़े नगरों के विकास के फलस्वरूप अनेक प्रकार के अपराध, व्याभिचार और संघर्ष आदि स्वतः बढ़ते रहते हैं। उद्योग-धन्धों में रोजगार के अवसरों में प्रगति होने से नगरों में काम करने के लिए अनेक लोग दूर-दूर से आकर नगरों में रहने लगते हैं। नये परिवेश की कठिनाइयों, कम आमदनी तथा मकानों इत्यादि की समस्यों के कारण नगरों में रहने वाले अनेक लोगों के पत्नी-बच्चों को गाँव में ही रहना पड़ता है। जो अनैतिक सम्बंधों और वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराइयों को बढाने में सहायक होता है। प्रौद्योगिकीय विकास का एक और सामान्य प्रभाव यह होता है कि व्यक्तिवादी आदर्श उत्तरोत्तर गहन होते जाते हैं। क्योंकि प्रौद्योगिकीय समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा धन तथा वैयक्तिक गुणों के आधार पर होती है। इतना ही नहीं, मनोरंजन का व्यापारीकरण और अनेक मानसिक चिन्ताएँ और रोग भी प्रौद्योगिकीय विकास के स्वाभाविक परिणाम है। कुछ प्रभाव निम्न लिखित हैं-

(i) प्रौद्योगिकीय विकास से सामुदायिक जीवन का ह्रास हुआ है।

(ii) इससे व्यक्तिवादिता की भावना में वृद्धि की है।

(iii) प्रौद्योगिकीय विकास ने नगरों में मकानों एवं गन्दी बस्तियों की समस्या को जन्म दिया है।

(iv) मनोरंजन का व्यापारीकरण हो गया है।

(v) प्रौद्योगिकीय विकास ने जन्म से लेकर मृत्यु तक सामाजिक स्तरीकरण के आधार को बदल दिया है।

(vi) जाति-व्यवस्था के बंधनों को शिथिल कर दिया है।

(vii) इसने सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन किया है। मनुष्य यंत्र बन गया है, सामाजिक सम्पर्क आनुषंगिक हो गए हैं। सम्बन्धों की घनिष्ठा समाप्त हो गई हैं। मनुष्य का सम्मान उसके धन से कि उसके गुणों से किया जाता है।

(viii) इसने मानसिक चिंताओं एवं रोगों में वृद्धि की है। आधुनिक व्यक्ति मानसिक तनाव, भावनात्मक अस्थिरता एवं आर्थिक असुरक्षा से पीड़ित है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बंधों को कैसे प्रभावित किया है?
2. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बंधें को और किस तरह प्रभावित किया है?
3. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने राज्य पर कैसा प्रभाव डाला है?

7.8 राज्य पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी विकास ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से राज्य को भी प्रभावित किया है। प्रौद्योगिकी विकास से आर्थिक विकास को नई दिशां मिली है। जिससे राज्य को होने वाली आय में अप्रत्यासित वृद्धि की है। राज्य द्वारा जिसका प्रयोग सामाजिक कल्याण की योजनाओं के लिए किया जाता है। प्रौद्योगिकी के कारण हुएं आर्थिक विकास ने विभिन्न आर्थिक संगठनों एवं संस्थाओं को जन्म दिया है, जो राजनीतिक गतिविधियों हेतु राजनीतिक संगठनों को धन उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। इसके बदले में लाभ पहुंचाने वाली नीतियों के निर्माण के लिए राज्य को बाध्य करती है। जिसका प्रभाव राज्य की गरीब जनता पर पडता है। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिकी राज्य को निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करती है:-

(i) अनेक कार्य परिवार से राज्य को हस्तांतरित हो गए हैं समाज कल्याण की अवधारणा प्रौद्योगिकी की उपज हैं। राज्य के कार्यक्षेत्र में भी वृद्धि हुई है।

(ii) राज्य पर दबाव-समूहों का प्रभाव बढ़ गया है।

(iii) स्थानीय शासन के कार्य केन्द्रीय सरकार के पास आ गए हैं।

(iv) राष्ट्रवाद के अवरोधक चूर-चूर हो गए हैं तथा विश्व राज्य का विचार बल पकड रहा है।

(v) प्रजातंत्र शासन का सामान्य रूप बन गया है।

7.9 धार्मिक जीवन पर प्रभाव

वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि होने से अंधविश्वास समाप्त हो रहे हैं। अब धार्मिक सहनशीलता अधिक मात्रा में पाई जाती है। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों ने अपनी रूढ़िवादिता को समाप्त करके दूसरे धर्मों के लोगों के साथ उठना-बैठना आरम्भ कर दिया है। धर्म अब अधिक वैज्ञानिक एवं लौकिकीकृत बन गया हैं। उपर्युक्त सभी प्रभाव भारतीय जीवन में भी देखे जा सकते हैं। प्रौद्योगिकी कारक धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को भी पर्याप्त रूप में परिवर्तित करता है। वास्तव में प्रौद्योगिकीय प्रगति का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के ज्ञान और विज्ञान का स्तर उसी अनुपात में ऊँचा उठ गया है। जहाँ ज्ञान और विज्ञान है, वहाँ धर्म की प्रभुता, धर्म सम्बन्धी विश्वास और कुसंस्कार स्वतः कम होते जाते हैं। साथ ही, प्रौद्योगिकीय उन्नति से नगरों का विकास होता है। नगरों में विभिन्न धर्मों के मानने वाले साथ-साथ मिलते हैं, उठते-बैठते तथा काम करते हैं। इससे दूसरे धर्मों के प्रति लोगों में सहनशीलता पनपती है और धार्मिक संकीर्णताएँ दूर होती जाती है। इसी प्रकार सांस्कृतिक जीवन में भी प्रौद्योगिकी अनेक परिवर्तनों को जन्म देती है। नृत्य, संगीत, साहित्य आदि सभी के स्वरूप बदल जाते हैं।

7.10 सारांश

प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन का एक सषक्त कारक है। प्रौद्योगिकी समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। प्रौद्योगिकी में कोई भी परिवर्तन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी संस्था अथवा समूह में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होता है। ऊर्जा के नए स्रोतों की खोज के फलस्वरूप यंत्र प्रौद्योगिकी के आगमन के इतने महत्वूपर्ण परिणाम हुए कि इसे बहुधा क्रांति का नाम दिया गया है। प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव जीवन से जूडे विभिन्न पहलूओं जैसे उत्पादन की पद्धतियाँ, यातायात के साधन तथा सूचना एवं संचार के साधनों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया हैं। जिसने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रौद्योगिकीय कारक सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है।

7.11 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बन्धों को अनेक प्रकार से प्रभावित किया। प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं-

(i) प्रौद्योगिकी ने संयुक्त परिवार प्रणाली के विघटन में योगदान दिया है।

(ii) कार्यशालाओं एवं कार्यालयों में स्त्रियों द्वारा नौकरी में भागीदारी ने पति-पत्नी के सम्बन्धों के स्वरूप को बदल दिया है तथा अन्य अनेक प्रकार से पारिवारिक संरचना एवं कार्यों को प्रभावित किया है।

(iii) स्त्री और पुरुष दोनों के नौकरी करने से बच्चों के सामाजिकरण पर कुप्रभाव पडा है।

(iv) प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 'स्त्री मुक्ति आन्दोलन' प्रौद्योगिकी को परिणाम है।

(v) प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब से विवाह प्रौद्योगिकी के अन्य प्रभाव है।

(vi) संतति-नियंत्रण के साधनों के आविष्कार ने परिवार के आकार को कम कर दिया है।

2. प्रौद्योगिकीय उन्नति हमारे जीवन स्तर को भी ऊँचा करती है, परन्तु साथ ही अनेक प्रकार की औद्योगिक दुर्घटनाएँ, बीमारी और झगडें भी इसी की उपज हैं। ये प्रभाव निम्न लिखित हैं-

(i) उद्योग घरेलू नहीं रह गए हैं। अब कार्यशालाओं, एजेन्सियों, भंडारों, बैंको आदि जैसे आर्थिक संगठनों का विकास हुआ है।

(ii) इसने पूँजीवाद एवं इसकी सब बुराइयों को जन्म दिया है।

(iii) इसने जीवन-स्तर में वृद्धि की है।

(iv) श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण प्रौद्योगिकी की उपज हैं।

(v) इसने आर्थिक मंदी, बेकारी, औद्योगिकी संघर्षो, दुर्घटनाओं एवं रोगों को जन्म दिया है।

(vi) इसने श्रमिक संघ आन्दोलन को जन्म दिया है।

3. प्रौद्योगिकी राज्य को निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करती हैः-

(i) अनेक कार्य परिवार से राज्य को हस्तांतरित हो गए हैं समाज कल्याण की अवधारणा प्रौद्योगिकी की उपज हैं। राज्य के कार्यक्षेत्र में भी वृद्धि हुई है।

(ii) राज्य पर दबाव समूहों का प्रभाव बढ़ गया है।

(iii) स्थानीय शासन के कार्य केन्द्रीय सरकार के पास आ गए हैं।

(iv) राष्ट्रवाद के अवरोधक चूर-चूर हो गए हैं तथा विश्व राज्य का विचार बल पकड़ रहा है।

(v) प्रजातंत्र शासन का सामान्य रूप बन गया है।

7.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारक से क्या अभिप्राय है?
2. प्रौद्योगिकीय कारकों की सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में व्याख्या कीजिए।
3. उत्पादन-प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के सामाजिक परिवर्तन में योगदान की विवेचना कीजिए।
4. संचार प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के सामाजिक प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
5. सामाजिक परिवर्तन में यातायात प्रौद्योगिकी की भूमिका की विवेचना कीजिए।

7.13 संदर्भ ग्रंथ

- जे० पी० सिंह (2004) समाजसास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।
- जे० पी० सिंह (1999) सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।
- एस० एल० दोषी एवं पी० सी० जैन (2009) समाजसास्त्र: नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) समाजसास्त्र विवेचन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

- विद्याभूषण एवं डी० आर० सचदेव (2010) समाजसास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, नई दिल्ली।
- हरिकृष्ण रावत (2002): समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- K.L. Sharma (2007): India Social Structure and Change, Rawat Publications, New Delhi.
- T.B. Bottomore (1970): Sociology: A Guide to Problem and Litrature, S. Chand and Company, New Delhi.
- M.N. Srinivas (2009): Social Change in Modern India, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

इकाई 8: आर्थिक कारक
Economic Factors

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक कारक

8.2.1 सामाजिक संस्थाओं पर आर्थिक कारको का प्रभाव

8.2.2 धार्मिक जीवन पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

8.2.3 राजनीतिक व्यवस्था पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

8.2.4 जनसंख्यात्मक पहलुओं पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

8.2.5 संस्कृति पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

8.2.6. सामाजिक विघटन एवं आर्थिक कारक

8.3 आर्थिक परिस्थितियाँ एवं सामाजिक परिवर्तन

8.3.1 धर्म एवं सामाजिक परिवर्तन

8.4 सारांश

8.5 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.6 संदर्भ गंर्थ

8.7अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

आर्थिक कारक सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है। मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्था अपने आप में एक स्वतंत्र कारक है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति हेतु हमेशा प्रकृति के दोहन के नये-नये तरीकों का प्रयोग करता आया है। इससे प्रौद्योगिकी का विकास होता है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होता रहता है। क्योंकि उत्पादन के साधन समाज की आधारभूत संरचना है। इसलिए जब इसमें परिवर्तन आता है तो उत्पादन के सम्बन्धों तथा उत्पादन की शक्तियों में भी परिवर्तन होता है। मार्क्स का मानना है कि आधारभूत संरचना में परिवर्तन आता है तो इससे अधिसंरचना अथवा आश्रित संरचना में भी परिवर्तन आता है। समाज के ऐतिहासिक विकास में एक ऐसा समय आता है, जब उत्पादन के सम्बन्ध तथा उत्पादन के साधन विकास का मार्ग अवरूद्ध करने लगते हैं। जिसके फलस्वरूप समाज मे वर्ग संघर्ष उत्पन्न होता है और मानव समाज एक स्तर से दूसरे ऐतिहासिक स्तर में प्रवेश करता है। मार्क्स का मानना है कि आर्थिक व्यवस्था ही सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला है। सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक समाज की संरचना, मूल्यों और मानदंडों को गहराई से प्रभावित करते हैं। औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, आर्थिक असमानता, कृषि से औद्योगिक समाज की ओर संक्रमण, और नई प्रौद्योगिकियों का विकास जैसे कारक समाज में व्यापक और विविध परिवर्तन लाते हैं। इन कारकों का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे आर्थिक घटनाएँ और प्रक्रियाएँ सामाजिक परिवर्तन को संचालित करती हैं और समाज की दिशा को निर्धारित करती हैं। आर्थिक कारकों के प्रभाव को समझना इसलिए महत्वपूर्ण है ताकि समाज इन परिवर्तनों के साथ समायोजित हो सके और विकास की दिशा में सही कदम उठा सके।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों तथा सामाजिक परिवर्तन में उनके महत्व को समझना हैं। इस इकाई में सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों का विस्तृत वर्णन किया गया हैं। तथा समाज के विभिन्न पक्षों पर इनके प्रभावों का गहनता से विश्लेषण किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः-

1. सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक की अवधारणा को समझ सकेंगे।

2. समाज के विभिन्न पक्षों पर आर्थिक कारक के प्रभावों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4. आर्थिक कारक की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका को समझेंगे।

8.2 सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक कारक

आर्थिक कारक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आर्थिक कारक मानव जीवन के प्रत्येक पहलु को प्रभावित करता है। सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आर्थिक कारक के प्रभाव निम्नलिखित हैं:-

8.2.1 सामाजिक संस्थाओं पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक कारक का सामाजिक संस्थाओं पर गहरा प्रभाव पडता है। भारत में परिवार, जाति व्यवस्था, जाति पंचायत, विवाह इत्यादि सामाजिक संस्थाओं पर आर्थिक विकास का अत्यधिक प्रभाव पड रहा हैं। आर्थिक विकास के फलस्वरूप उद्योग धन्धों, यातायात और संचार के साधनों, नौकरी के अवसरों तथा नगरों का विकास तीव्र गति से हुआ हैं। जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूट रहे है। जिसका स्थान एकाकी परिवार ले रहे है। आर्थिक विकास से पूर्व अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के द्वारा ही हो जाया करती थी। लेकिन अब इन आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न आर्थिक संसाधनों द्वारा की जा रही है। उद्योगीकरण तथा नगरों के विकास ने युवक एवं युवतियों को एक साथ काम करने के अवसर उपलब्ध कराए हैं। जिससे स्त्रियाँ भी घरों से निलकर पुरूषों के साथ नौकरी कर रही है। स्त्रियों में भी आत्मनिर्भरता बढ़ रही है। जिसके परिणामस्वरूप विलम्ब विवाह, प्रेम विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ रहा है। अब तो एक कदम आगे बढ़कर "लिव इन रिलेशनशिप" अर्थात बिना विवाह के युवक एवं युवतियाँ एक साथ रह रहे हैं। बड़े शहरों में यह प्रचलन तेजी से पनप रहा है।

आर्थिक कारकों के कारण जाति व्यवस्था एवं वर्ग व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। उद्योगीकरण, नगरीकरण तथा संचार के साधनों में उन्नति तथा धन का अत्यधिक महत्व आदि ऐसे आर्थिक कारक हैं जिनके कारण जाति का परम्परागत स्वरूप बदल रहा हैं। उद्योगीकरण तथा नगरीकरण

ने रोजगार के अवसरों में तीव्र वृद्धि की है तथा विभिन्न जातियों, समुदायों तथा धर्मों आदि के लोग को एक साथ काम करने का अवसर प्रदान किया है। जिससे जातिगत बन्धनों जैसे- छुआछूत, भेदभाव, उँच नीच की भावना में कमी आ रही है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप विकसित औद्योगिक एवं नगरीय समाजों में जाति व्यवस्था के स्थान पर वर्ग व्यवस्था का प्रचलन दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

आर्थिक विकास के चलते शहरीकरण या नगरीकरण की प्रक्रियाओं का विकास हुआ है। गाँव के लोग नगरों के ओर पलायन कर रहे हैं। जिसका प्रभाव गाँव की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पर भी पड रहा है। इसके साथ-साथ ग्रामीण परम्पराओं, मान्यताओं तथा मूल्यों का ह्रास हो रहा है। सामूहिकता की भावना क्षीण होती जा रही है। तथा व्यक्तिवादिता की भावना तेजी से विकसित हो रही है। महँगाई के बढने तथा मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए परिवारों का आकार छोटा होता जा रहा है। आर्थिक कारकों के कारण जाति पंचायतों का प्रभाव भी कम हुआ है। इस प्रकार हम देखते है कि आर्थिक कारकों अथवा परिस्थितियों का सामाजिक संस्थाओं पर गहरा प्रभाव पडा है।

स्वप्रगति परीक्षण

1.जनसंख्यात्मक पहलुओं पर आर्थिक कारकों के प्रभाव विषय पर एक टिप्पणी लिखें।

……

……

……

……

……

2.सामाजिक संस्था ओं एवं सामाजिक परिवर्तन पर एक लघु टिप्पणी लिखें।

……

……

……

……

8.2.2 धार्मिक जीवन पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक कारकों अथवा परिस्थितियों ने धार्मिक आस्थाओं, विश्वास एवं मूल्यों को गहनता से प्रभावित किया है। आर्थिक विकास के कारण बदलती हुई परिस्थितियों के कारण धार्मिक आस्थाओं विश्वास एवं मूल्यों का स्थान धन ने ले लिया है। विभिन्न कल-कारखानों एवं कार्यालयों में विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ काम कर रहे हैं। एकसाथ रह रहे हैं। और विभिन्न होटलों अथवा भोजनालयों में एक साथ भोजन करते हैं। भौतिकद के बढते महत्व के कारण धार्मिक अनुष्ठानों, त्यौहारों एवं आयोजनों में व्यक्ति की सहभागिता कम हुई है। व्यापार एवं वाणिज्य में विभिन्न धर्मों के लागों को एक-दूसरे पर निर्भर रहना पडता है। जिससे एक दूसरे के धर्म को समझाने का अवसर मिलता है। तथा धार्मिक सहिष्णुता बढती है। धन के बढते प्रभाव के कारण प्राकृतिक शक्तियों में श्रद्वा तथा उनका भय दोनो कम हो गये हैं। लोग स्वर्ग और नरक की व्याख्या भी धार्मिक आधार के स्थान पर आर्थिक स्तर से करते है। जिसके पास धन है, वह स्वर्गीय आन्नद प्राप्त कर रहे हैं। और जो धन के अभाव में हैं, वह नरक भोग रहे हैं। पारलौकिक जीवन में लोगों का विश्वास कम हो रहा है। इस प्रकार लौकिक सुख की प्राप्ति व्यक्ति का लक्ष्य रह गया है। जहाँ परम्परागत एवं ग्रामीण समाज में धार्मिक आस्थाओं, विश्वास एवं मूल्यों की प्रधानता है। वही आर्थिक विकास के फलस्वरूप विकसित औद्योगिक एवं नगरीय समाजों में उनका स्थान भौतिक सुख सुविधाओं ने ले लिया है। आर्थिक विकास के साथ साथ भौतिकतावादी प्रवृत्ति सुदृढ होती जा रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक कारकों ने धार्मिक व्यवस्था को शिथिल कर भौतिक सुख-सुविधाओं को बढावा दिया है।

8.2.3 राजनीतिक व्यवस्था पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक विकास ने जिन आर्थिक संस्थाओं एवं शक्तियों को जन्म दिया है, वे इतने महत्वपूर्ण एवं प्रभावी हैं कि वे राजनीतिक व्यवस्था को गहनता से प्रभावित कर रही हैं। राजनीतिक गतिविधियों को चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति जनता से एकत्रित किए गये चन्दे तथा आर्थिक संगठनों एवं पूँजीपतियों द्वारा उपलब्ध कराये गये धन से होती है। आर्थिक संगठनों एवं पूँजीपतियों का अपना

स्वार्थ होता है। जिसका प्रयोग वे राजनीतिक इकाइयों को प्रभावित कर अपने लाभ की नीतियाँ बनवाने के लिए दबाव देते हैं। चार्ल्स बीयर्ड का कथन है कि संविधान एक आर्थिक मसविदा है। यह देखने में आया है कि जिस देश में बडे-बडे पूँजीपति होते हैं, वहाँ उनका राज्य पर अत्यधिक प्रभाव होता है। उदहाणार्थ भारत में अम्बानी, टाटा, बिरला आदि। मार्क्स वर्ग संघर्ष को राजनीतिक संघर्ष बताता है तथा राज्य की उत्पत्ति को आर्थिक कारक मानता है। मार्क्स कहता है कि उत्पादन के प्राकृतिक अथवा भौतिक साधनों पर स्वामित्व पाने के लिए, दो वर्गों के सघर्ष को समाप्त करके राज्य की शक्ति का विकास हुआ है। उनका मानना है कि आर्थिक कारक समाप्त होते ही राज्य स्वयं समाप्त हो जाएगा। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आर्थिक ढाँचा ही समाज का वास्तविक आधार है।

अन्य सभी सामाजिक संरचनाएँ इस पर आधारित है। आर्थिक संगठनों के प्रभाव से जितनी भी राजनीजिक नीतियाँ एवं कार्यक्रम बनाये जाते हैं उनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लाभ आर्थिक संगठनों को ही मिलता है। और देश की जनसंख्या का एक बडा भाग, जिन्हें इन नीतियों एवं कार्यक्रमों की अत्यधिक आवश्यकता है, उससे वंचित रह जाता है। राजनीति में धन का प्रभाव दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। सत्ता हथियाने के लालच में सांसदो की खरीद फरोक्त इसका जीवन्त उदहारण है। राजनीति में धनाढ्य लागों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपितु ग्राम पंचायतों के चुनावों में भी धन के बल पर राजनीतिक परिस्तिथियों को अपने पक्ष में किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक कारक किस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था को गहनता से प्रभावित कर रहे हैं।

8.2.4 जनसंख्यात्मक पहलुओं पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक कारक जनसंख्यात्मक पहलुओं को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या के शारीरिक व मानसिक लक्षणों का आर्थिक कारकों एवं परिस्तिथियों से गहरा सम्बन्ध है। सामान्यतः धनी वर्ग के लोगों का स्वास्थ्य निर्धन वर्ग के व्यक्तियों से बेहतर होता है। उन्नत आर्थिक स्तर विभिन्न आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है। जो जनसंख्यात्मक

ढाँचे को प्रभावित करता है। आर्थिक परिस्तिथियाँ जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों को प्रभावित करती है। निम्न आर्थिक वर्ग के लोग जनसंख्या वृद्धि में अपेक्षाकृत अधिक योगदान देते है। जिसका जनसंख्या वृद्धि पर सीधा प्रभाव पडता है, जो विभिन्न सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है।

8.2.5 संस्कृति पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

संस्कृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी समाज की संस्कृति के स्वरूप निर्धारण में वहाँ की आर्थिक परिस्तिथियाँ एवं कारक महत्वपूर्ण रूप में उत्तरदायी होते हैं। संस्कृति से जुडे विभिन्न पहलुओं जैसे- खान-पान, रहन-सहन, शिष्टाचार के तौर तरीके, सोचने विचारने का ढ़ग, आदत एवं व्यवहार वहाँ की आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसी अवधारणा के आधार पर वेबलन एक वर्ग को दूसरे वर्ग से अलग करता है। आर्थिक परिस्थितियाँ ही सामाजिक स्तर का निर्धारण करती है। सामाजिक व्यवस्था से जुडे विभिन्न कार्यक्रमों, आयोजनों तथा त्यौहारों को मनाने के तौर-तरीके आदि भी आर्थिक स्थित पर निर्भर करते हैं। समाज में प्रचलित दहेज एवं वधू-मुल्य
जैसी प्रथाएँ आर्थिक महत्वकांक्षा का ही परिणाम है। संस्कृति का कोई भी पक्ष चाहे वह भौतिक हो अथवा अभौतिक, ऐसा नहीं है जो आर्थिक कारकों से प्रभावित न होता हो।

8.2.6. सामाजिक विघटन एवं आर्थिक कारक

आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न संस्थाएँ, शक्तियाँ एवं प्रक्रियाएँ समाज में विघटन के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। जैसै नगरीकरण एवं उद्योगीकरण की प्रक्रियाओं ने कई सामाजिक समस्याओं जैसे मलिन बस्तियों का विकास, निवास स्थान की कमी, अपराध, वर्ग संघर्ष, आदि को जन्म दिया है। बढ़ती हुई आर्थिक महत्वकांक्षा के कारण व्यक्तिगत लाभ को बढावा मिला है। तथा सामूहिकता की भावना का ह्रास हुआ है। भारतीय समाज की विशेषता एवं पहचान परम्परागत संयुक्त परिवार, विश्वास एवं मूल्यों का विघटन हो रहा है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाने की दशा में व्यक्ति

के मानसिक रोग एवं चिन्ता में वृद्धि हुई है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु माता-पिता दोनों के कार्यरत होने से बच्चों के समाजीकरण पर कुप्रभाव पड़ा है। बच्चों की उचित देख-रेख न होने के कारण बाल अपराध की घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, वेश्यावृत्ति, जालसाजी, चौरी, डकैती, अपहरण आदि भी आर्थिक कारणों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुडे हुए हैं।

8.3 आर्थिक परिस्थितियाँ एवं सामाजिक परिवर्तन

संस्कृति का आर्थिक पक्ष भी सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है। मार्क्स संस्कृति के अर्थिक पक्ष को सामाजिक परिवर्तन का मूलभूत आधार मानता है। वह सामाजिक संरचना को दो भागों में बांटकर देखते हैं- अधारभूत संरचना तथा अधिसंरचना अथवा आश्रित संरचना। समस्त उत्पादन प्रणाली को उन्होंने आधारभूत संरचना माना है और समाज के अन्य अंगों जैसे धर्म परिवार, राज्य, आदर्ष, दर्षन इत्यादि को आश्रित संरचना कहा है। मार्क्स की मान्यता है कि उत्पादन प्रणाली ही समस्त सामाजिक व्यवस्था की आधारषिला है। अतः यदि आर्थिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन आता है तो उससे समाज की अधिसंरचना में भी परिवर्तन आता है। उत्पादन के साधनों के आधार पर मार्क्स समाज को दो वर्गो में बांटकर देखते हैं तथा यह प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि सामाजिक परिवर्तन वर्ग संघर्ष द्वारा ही संभव होता है। इसी अर्थ में उन्होंने अपने साम्यवादी घोषणापत्र में लिखा है "अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है। मार्क्स का मानना है कि जब तक समाज में वर्ग विभाजन है, समाज में षोषण की प्रक्रिया चलती रहेगी। क्योंकि यह विभाजन षोषण पर आधारित है। उसी तरह जब तक समाज में षोषण है संघर्ष की प्रक्रिया चलती रहेगी। इसी वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया से समाज में परिवर्तन होता है।

8.3.1 धर्म एवं सामाजिक परिवर्तन

कुछ विचारकों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन से न केवल समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन होता है अपितु आर्थिक व्यवस्था में भी परिवर्तन होता है। इन विचारकों में

मैक्स वैबर का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी पुस्तक The Protestant Ethics and the Spirit of Capitalism (1959) में यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि पाष्चात्य देषों में पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के विकास में प्रोटेस्टेंट आचार संहिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मैक्स वेबर ने विष्व के छः बडे धर्मों हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, कन्फूषियस तथा यहूदी का विस्तृत अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि समाजिक घटनाओं, सामाजिक संगठन एवं आर्थिक व्यवस्था के निर्धारण में धर्म की भूमिका सबसे अधिक रही है। भारत के संदर्भ में पूँजीवाद के विकसित न होने में धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। क्योंकि हिन्दू धर्म की प्रवृति मानवतावादी रही है जो परम्पराओं पर आधारित है। लेकिन पाष्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने तथा प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने धार्मिक मान्यताओं को षिथिल कर दिया है। जिसके फलस्वरुप भारत में भी पूँजीवाद का विकास होता दिख रहा है। धार्मिक मूल्य एवं मान्यताएं अन्य प्रकार से भी सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देती हैं। भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के मध्य सम्पर्क तथा संघर्ष दोनों ही समाजिक परिवर्तन लाने में सहायक होते हैं। यदि हम भारतीय इतिहास को देखें तो पता चलता है कि विदेषी आक्रमणकारियों एवं षासकों के धर्मों का समाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके साथ-साथ विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों जैसे बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि के उदय होने से न केवल भारतीय समाज को अपितु विष्व के समाजों को गहनता से प्रभावित किया है।

8.4 सारांश

समाजिक परिर्वन एक सार्वभौमिक एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक मानव जीवन के प्रत्येक पहलु जैसे सामाजिक संस्थाओं, मूल्यों, प्रतिमानों, धार्मिक विचारों एवं मान्यताओं तथा राजनीतिक व्यवस्था इत्यादि को गहनता से प्रभावित करते हैं। आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न संस्थाएँ, शक्तियाँ एवं प्रक्रियाएँ समाज में विघटन के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। जैसै नगरीकरण एवं औद्यौगिकरण की प्रक्रियाओं ने कई सामाजिक समस्याओं जैसे- मलिन

बस्तियों का विकास, निवास स्थान की कमी, अपराध, वर्ग संघर्ष, आदि को जन्म दिया है। अतः हम समाजशास्त्रियों अथवा समाज के विद्यार्थियों के रूप में सामाजिक परिवर्तन, इसके स्रोतों एवं कारकों का गहन अध्ययन कर समझने की आवश्यकता है। जिससे हम परिवर्तन से उत्पन्न समाजिक समस्याओं को समझ कर उनका समुचित समाधान प्रस्तुत कर सकें।

8.5 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. आर्थिक कारक जनसंख्यात्मक पहलुओं को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या के शारीरिक व मानसिक लक्षणों का आर्थिक कारकों एवं परिस्तिथियों से गहरा सम्बन्ध है। सामान्यतः धनी वर्ग के लोगों का स्वास्थ्य निर्धन वर्ग के व्यक्तियों से बेहतर होता है। उन्नत आर्थिक स्तर विभिन्न आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है। जो जनसंख्यात्मक ढाँचे को प्रभावित करता है। आर्थिक परिस्तिथियाँ जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों को प्रभावित करती है। निम्न आर्थिक वर्ग के लोग जनसंख्या वृद्धि में अपेक्षाकृत अधिक योगदान देते है। जिसका जनसंख्या वृद्धि पर सीधा प्रभाव पडता है, जो विभिन्न सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है।

3.परिवार एवं विवाह संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व हैं। जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। विवाह समाज की एक प्रमुख संस्था है, जो स्त्री-पुरुष के सम्बंधों को नियंत्रित करने के साथ-साथ वैधता प्रदान करती हैं। विवाह के नियम ही इस बात का निर्धारण करते है कि समाज में स्त्री-पुरुष के सम्बंध और उनका स्वरूप कैसा होगा। विवाह परिवार के निर्माण में सहयोग करता है। परिवार बच्चों का समाजीकरण कर उन्हें सामाजिकता प्रदान करता है। यदि इन महत्वपूर्ण संस्थाओं के नियम बदलते हैं तो इनका सीधा प्रभाव सामाजिक सम्बंधों पर होगा तथा विवाह एवं परिवार का स्वरूप, संरचना तथा इनकी भूमिका को भी प्रभावित करेगा।

8.6 संदर्भ गंथ

जे० पी० सिंह (2004) समाजसास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

जे० पी० सिंह (1999) सामाजिक परिवर्तनः स्वरूप एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

एस० एल० दोषी एवं पी० सी० जैन (2009) समाजसास्त्र: नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) समाजसास्त्र विवेचन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

विद्याभूषण एवं डी० आर० सचदेव (2010) समाजसास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, नई दिल्ली।

• हरिकृष्ण रावत (2002): समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

K.L. Sharma (2007): India Social Structure and Change, Rawat Publications, New Delhi.• T.B. Bottomore (1970): Sociology: A Guide to Problem and Litrature, S. Chand and Company, New Delhi.

• M.N. Srinivas (2009): Social Change in Modern India, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक क्या है। व्याख्या कीजिए।

2. आर्थिक कारकों का सामाजिक संस्थओं पर प्रभाव की समीक्षा कीजिए।

3. आर्थिक कारकों का राजनीतिक व्यवस्था पर पडने वाले प्रभाव का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए:-

i आधारभूत संरचना तथा अधिसंरचना

ii आर्थिक विकास एवं सामाजिक विघटन

iii आर्थिक विकास एवं सामाजिक संस्थाए

इकाई 9: सांस्कृतिक कारक
Cultural Factors

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 सामाजिक परिवर्तन एवं संस्कृति का अर्थ

9.3 सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक

9.4 विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (नवाचार) तथा सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक

9.5 सांस्कृतिक-प्रसार एवं पर-संस्कृतिग्रहण तथा सामाजिक परिवर्तन

9.6 संस्कृति संघर्ष एवं सामाजिक परिवर्तन

9.7 संस्कृति संचय एवं सामाजिक परिवर्तन

9.8 संस्कृति विलम्बन एवं सामाजिक परिवर्तन

9.8.1 सांस्कृतिक पिछड़ की स्थिति के कारण तथा परिणाम

9.9 वैचारिक एवं सामाजिक परिवर्तन

9.10 सामाजिक संस्थाएँ एवं सामाजिक परिवर्तन

9.11 सांस्कृतिक परिवर्तन के कारकों का प्रभाव

9.12 सारांश

9.13 बोध प्रश्न के उत्तर

9.14 संदर्भ गंर्थ

9.15 अभ्यास प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन एक सदैव चलने वाली प्रक्रिया है, जो समय के साथ समाज के ढांचे, मान्यताओं, मूल्यों, और प्रथाओं में परिवर्तन को दर्शाती है। इस प्रक्रिया में सांस्कृतिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये कारक समाज के मानसिकता और व्यवहार को प्रभावित करते हैं, जिससे सामाजिक परिवर्तन संभव हो पाता है। सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया का हिस्सा हैं। ये कारक समाज के मूल्यों, मान्यताओं, और व्यवहार को प्रभावित करते हैं, जिससे समाज में बदलाव संभव होता है। सांस्कृतिक कारकों की भूमिका को समझना और उनके प्रभावों का विश्लेषण करना समाज के विकास और प्रगति के लिए आवश्यक है। केवल तभी हम एक समृद्ध, न्यायसंगत, और समावेशी समाज का निर्माण कर सकते हैं। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में सांस्कृतिक कारको की भूमिका को हम कुछ प्रमुख आधारों जैसे परिवार, विवाह, धर्म तथा विज्ञान इत्यादि के आधार पर विस्तृत से चर्चा करेंगे।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. समाज के विभिन्न पक्षों पर सांस्कृतिक कारक के प्रभावों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. सामाजिक परिवर्तन और संस्कृति के बीच संबंध को समझ सकेंगे।

9.2 सामाजिक परिवर्तन एवं संस्कृति का अर्थ

सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न कारकों जैसे आर्थिक, प्रौद्योगीकीय, जनसंख्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, जैविक, भौतिक अथवा भौगौलिक आदि के साथ-साथ सांस्कृतिक कारक भी परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक को समझने के लिए सर्वप्रथम हमें संस्कृति की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझना होगा। संस्कृति शब्द का प्रयोग विभिन्न समाज विज्ञान में अलग-

अलग अर्थों में किया गया है। समाजषस्त्रीय परिप्रेक्ष्य में संस्कृति के अर्थ को समझने की आवश्यकता है। जिसे हम विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का विश्लेषण करके समझ सकते हैं।

मैकाइवर एवं पेज (Machiver and Page) के अनुसार- "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनन्द में पाये जाने वाले तत्व, रहन-सहन और विचार के ढ़ग से हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति हैं।"

टायलर (Tylor) के अनुसार "संस्कृति वह जटिल सम्पूर्ण व्यवस्था है जिसमें समस्त ज्ञान, विष्वास, कला, नैतिकता के सिद्धांत, विधि-विधान, प्रथाएँ एवं अन्य समस्त योजनाएँ सम्मिलित हैं जिन्हें व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।"

मैलिनोव्स्की (Malinowski) के अनुसार "संस्कृति प्राप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था और उद्देश्यात्मक क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है।"

बीरस्टीड (Biersstedt) के अनुसार- "संस्कृति वह सम्पूर्ण जटिलता है जिसमें वे सभी वस्तुएँ सम्मिलित है जिन पर हम विचार करते हैं, कार्य करते हैं और समाज का सदस्य होने के नाते अपने पास रखते हैं।"

रैडफील्ड (Redfield) के अनुसार "संस्कृति ऐसे परम्परागत विचारों के संगठित समूह को कहते हैं जो कला एवं कलाकृतियों में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा जो परम्परा द्वारा चलते रहते हैं। और किसी मानव समुह की विशेषता को चित्रित करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति का अभिप्राय मानव जाति के रहन-सहन, आचार-विचार, भावनाएँ, विश्वास एवं विभिन्न प्रकार की उपलब्धियों के समग्र रूप से हैं। संस्कृति मानव जीवन से जुड़े हुए विभिन्न पहलूओं को सीखने की एक प्रक्रिया है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।

संस्कृति के दो विषिष्ट पहलू है जो आपस में परस्पर घनिष्ठता से सम्बन्धित होते हैं। ऑगर्बन ने इन्हें भौतिक व अभौतिक संस्कृति के नाम से सम्बोधित किया है। भौतिक संस्कृति के अंतर्गत समाज की भौतिक उपलब्धियों को रखा जा सकता है। ये मूर्त होती है, इन्हें हम स्पर्श कर सकते हैं एवं देख सकते हैं।

ये मनुष्यों द्वारा निर्मित होती हैं, जैसे- वायुयान, घडी, वस्त्र, भवन, यातायात के साधन, इत्यादि। मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक औजारों, उत्पादनों तथा प्रौद्योगिकी का आविष्कार किया है। ये सभी उपलब्धियाँ भौतिक संस्कृति की श्रेणी में आती है। अभौतिक संस्कृति से तात्पर्य प्रथाओं, लोक रीतियों, धर्म, समाजिक मूल्यों, कला, साहित्य, विश्वास, दार्शनिक विचारधाराओं तथा आदर्श विज्ञान इत्यादि से हैं। अभौतिक संस्कृति अमूर्त तथा व्यक्तिनिष्ठ होती है। इसे हम न तो देख सकते हैं और न ही स्पर्श कर सकते हैं। अभौतिक संस्कृति की अपेक्षा भौतिक संस्कृति में परिवर्तन अधिक तीव्र गति से होते हैं।

बोध प्रश्न

1.मेकाइबर एवं पेज ने संस्कृति के बारे में क्या कहा है ?

9.3 सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक

सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों को समझने से पहले उन विशेषताओं को जानना आवश्यक है जिन्हें हम 'सांस्कृतिक परिवर्तन' कहते हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन के सूचकों (indicators) में से अधिकांश की प्रकृति इस तरह की है कि उनका कोई निश्चित माप नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, समूह की मनोवृत्तियों, विश्वासों, मूल्यों, नैतिकता तथा विचारों में होने वाला परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन से सम्बन्धित है, लेकिन ऐसे परिवर्तनों की कोई निश्चित माप कर पाना अत्यधिक कठिन है। दूसरी ओर, समूह की कलात्मक अभिरुचियों, वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, फैशन तथा आकांक्षाओं में होने वाला परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का वह भाग है जिसकी कुछ सीमा तक माप की जा सकती है। यदि ऐसे सभी परिवर्तनों के कारणों को ढूँढ़ने का प्रयास किया जाए तो निश्चित रूप से इन्हें समाज की प्राविधिक अथवा आर्थिक व्यवस्था में नहीं ढूँढ़ा जा सकता। यह परिवर्तन संस्कृति की कुछ विशेष परिस्थितियों में विद्यमान होते हैं जैसे- नवाचार, प्रसार, पर-संस्कृति-ग्रहण, संस्कृति संघर्ष, संस्कृति संचय, सांस्कृतिक विलम्बन और वैचारिक आदि।

9.4 विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (नवाचार) तथा सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक

भौतिक संस्कृति में जो भी परिवर्तन आया है उसके लिए विज्ञान की उन्नति प्रमुखता से उत्तरदायी है। क्योंकि विज्ञान भी संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व है। इसलिए हम कह सकते है कि संस्कृति के विकास ने मानव जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन लाया है। विज्ञान के विकास ने मानव को तार्किक और अन्वेषी बना दिया है, जिससे हमारे धार्मिक विश्वासों, विचारों एवं जीवन के उद्देश्यों में परिवर्तन आया हैं और इस परिवर्तन ने सम्पूर्ण सामाजिक संरचना, मूल्यों एवं प्रतिमानों आदि को प्रभावित किया है। ज्ञान और विज्ञान की प्रगति ने सामाजिक परिवर्तनों को गति प्रदान की है। परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक के संदर्भ में मैक्स वेबर का यह विचार उल्लेखनीय है उल्लेखनीय है कि विज्ञान के विकास ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन लाया है। जिसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक एवं नौकरशाही की व्यवस्था में गहन परिवर्तन आया है।

जी. एच. बार्नेट ने अपनी पुस्तक 'नवाचार: सांस्कृतिक परिवर्तन का आधार' में यह बताया कि नवाचार एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक तत्व है और इसे समझकर सभी प्रमुख सामाजिक परिवर्तनों का विश्लेषण किया जा सकता है। उनके अनुसार, "सभी नए आविष्कार और खोजें जो सांस्कृतिक परिवर्तन लाती हैं, उन्हें नवाचार कहा जाता है।" बार्नेट ने यह भी लिखा कि "नवाचार का मतलब किसी भी ऐसे नए विचार, व्यवहार या वस्तु से है जो मौजूदा स्वरूप से अलग होती है।" यह स्पष्ट है कि नवाचार का संबंध उन नए तरीकों से है जिनसे काम, सोच या व्यवहार किया जाता है, और इन्हें प्रोत्साहन मिलने पर लोगों की जीवनशैली और सामाजिक संबंधों में बदलाव आता है। जब भी समाज में नई प्रौद्योगिकी का विकास होता है, नए उपकरणों का उपयोग शुरू होता है, या नए विचार और विश्वास हमारे व्यवहारों को प्रभावित करते हैं, तब नवाचार के रूप में ये हमारे जीवन पर एक प्रमुख सांस्कृतिक कारक के प्रभाव को दर्शाते हैं।

9.5 सांस्कृतिक-प्रसार एवं पर-संस्कृतिग्रहण तथा सामाजिक परिवर्तन

समाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों के संदर्भ में मानवशास्त्रियों की यह मान्यता है कि सांस्कृतिक-प्रसार एवं पर-संस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया से समाज में परिवर्तन आता है। इस संदर्भ में एम० एन० श्रीनिवास की पश्चिमीकरण की अवधारणा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत में अंग्रेजी शासन के कारण हमारे वैचारिक दृष्टिकोण, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था, खान-पान, रहन-सहन, जाति व्यवस्था, शिक्षण पद्धति तथा भाषा इत्यादि में अत्याधिक परिवर्तन आए हैं। मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में इन प्रक्रियाओं को हम सांस्कृतिक-प्रसार एवं संस्कृति संक्रमण की प्रक्रिया मानते हैं। यातायात, संचार के माध्यमों एवं शिक्षा के विकास से विश्व स्तर पर संस्कृति संक्रमण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। प्रौद्योगिकी के विकास ने सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों के लिए एक उत्प्रेरक अभिकर्ता के रूप में कार्य किया है। यूरोप में बोर्दियो और द्विदा जैसे विचारकों ने भाषा को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त कारक माना है। ऐन्थनी गिडेन्स सांसकृतिक कारकों को एक बृहत् रूप में देखते हैं। इन कारकों में नेतृत्व भी एक महत्वपूर्ण कारक है। विश्व इतिहास में व्यक्तिगत रूप से विभिन्न धार्मिक, राजनीतिक और सैन्य नेताओं ने सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

9.6 संस्कृति संघर्ष एवं सामाजिक परिवर्तन

संस्कृति संघर्ष वह स्थिति है जिसमें दो या अधिक सांस्कृतिक समूह एक-दूसरे के मूल्यों, विश्वासों, और प्रथाओं में अंतर के कारण टकराव या असहमति का अनुभव करते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के लोग विभिन्न मूल्यों और विश्वासों का पालन करते हैं, जिससे उनके दृष्टिकोण और व्यवहार में अंतर होता है। सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं में भिन्नता भी संस्कृति संघर्ष का एक प्रमुख कारण हो सकती है। उदाहरण के लिए नारीवादी आंदोलन ने महिलाओं के अधिकारों और समानता के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष ने कई सामाजिक परिवर्तन लाए, जैसे कि महिलाओं के शिक्षा, रोजगार, और राजनीतिक भागीदारी में सुधार। इस सन्दर्भ में जी. के. अग्रवाल का मत है कि ''ऐसा संघर्ष साधारणतया तब उत्पन्न होता है जब एक विशेष संस्कृति वाले समूह के बीच किसी दूसरी संस्कृति से सम्बन्धित लोग आकर रहने लगते

हैं। संसार के विभिन्न देशों में धार्मिक विभेदों के कारण जो बड़े-बड़े युद्ध और संघर्ष हुए हैं, वे संस्कृति संघर्ष की दशा को स्पष्ट करते हैं। यूरोप में ही प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक धर्म को मानने वाले लोग यद्यपि साथ-साथ रहते हैं लेकिन गर्भ निरोधक साधनों तथा शिक्षा को लेकर उनके बीच जो विरोध सदैव बना रहता है, वह संस्कृति संघर्ष का एक स्पष्ट उदाहरण है। समाज में जब कभी भी संस्कृति संघर्ष की दशा उत्पन्न होती है तब समाज के सभी सदस्य सामाजिक व्यवस्था की एक संगठित इकाई के रूप में काम नहीं कर पाते। इस दशा में समाज-विरोधी कार्यों में लोगों की रुचि बढ़ने लगती है। बहुत से लोग सामाजिक मूल्यों को उपयोगी न समझकर निराशा महसूस करने लगते हैं। व्यक्तियों के व्यवहारों पर लगा हुआ नियन्त्रण जब ढीला पड़ जाता है तब सांस्कृतिक आदर्शों और लोगों के वास्तविक व्यवहारों के बीच भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। यह सभी दशाएँ सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देने लगती हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक संघर्ष सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुआ है।''[2]

9.7 संस्कृति संचय एवं सामाजिक परिवर्तन

''प्रत्येक समाज में संस्कृति व्यक्तियों के लिए जो सुविधाएँ प्रदान करती है उसी के अनुसार सामाजिक संस्थाओं तथा व्यवहार के ढंगों का विकास होता है। इसका तात्पर्य है कि यदि संस्कृति में परिवर्तन होगा तो सामाजिक संस्थाओं तथा व्यवहार के ढंगों में भी परिवर्तन होने लगेगा। संस्कृति की विशेषता यह है कि इसमें संचय का गुण होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति के भौतिक पक्ष में सदैव आगे की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के लिए, आज से बहुत पहले मनुष्य केवल पत्थर के हथियारों और औजारों से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता था, जबकि आज की संस्कृति में मनुष्य के पास उन्नत किस्म के इतने अधिक पदार्थ और उपकरण हैं कि उनकी कोई निश्चित सूची नहीं बनायी जा सकती। इसका तात्पर्य है कि सभ्यता के आरम्भिक युग से लेकर आज तक मानव की संस्कृति में निरन्तर संचय होता रहा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि एक बार जिस संस्कृति तत्व का निर्माण हो जाता है, वह कभी समाप्त ही नहीं होता। यह भी सम्भव है कि जब एक विशेष पदार्थ की तुलना में अधिक

विकसित वस्तु का निर्माण हो जाय तब पहले बना वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाय लेकिन इस दशा में भी भौतिक संस्कृति पहले की तुलना में अधिक उपयोगी और समृद्ध होती जाती है। विभिन्न सांस्कृतिक पदार्थ मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति का साधन होते हैं। संस्कृति संचय के फलस्वरूप जब इन साधनों में वृद्धि होती है तब मानव की अन्तर्क्रियाओं, व्यवहार के ढंगों तथा संस्थाओं में भी परिवर्तन होना आवश्यक हो जाता है।''[3]

9.8 संस्कृति विलम्बन एवं सामाजिक परिवर्तन

संस्कृति विलम्बन की अवधारणा विलियम एफ. ओगबर्न ने अपनी पुस्तक Social Change में प्रस्तुत की थी। यह अवधारणा उन परिस्थितियों को समझाने के लिए उपयोग की जाती है जहां समाज के भौतिक और तकनीकी विकास के मुकाबले उसकी गैर-भौतिक या सांस्कृतिक मान्यताएं और प्रथाएं धीमी गति से बदलती हैं।

संस्कृति विलम्बन का अर्थ यह है कि जब तकनीकी और भौतिक परिवर्तनों की गति तेज होती है, तो समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाएं उन परिवर्तनों के साथ तालमेल बिठाने में समय लेती हैं। उदाहरण के लिए, नई तकनीकों जैसे इंटरनेट और स्मार्टफोन के तेजी से प्रसार ने हमारे संचार और जानकारी प्राप्त करने के तरीकों में व्यापक परिवर्तन किए हैं, लेकिन इन्हें सही ढंग से समझने और उनके प्रभावों को समाज में समायोजित करने में समय लगता है।

ऑगबर्न ने कहते हैं कि "आधुनिक संस्कृति के विभिन्न भाग समान गति से नहीं बदल रहे हैं, कुछ भागों में दूसरी की अपेक्षा अधिक तेजी से परिवर्तन हो रहा है, और क्योंकि संस्कृति के सभी भाग एक-दूसरे पर निर्भर और एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं इसलिए संस्कृति के एक भाग में होने वाले तीव्र परिवर्तन से दूसरे भागों में भी अभियोजन की आवश्यकता हो जाती है। उदाहरण के लिए, उद्योग और शिक्षा संस्कृति के वे भाग हैं जो एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, इसलिए उद्योग में परिवर्तन होने पर शिक्षण पद्धति में भी परिवर्तन के द्वारा अभियोजन (adjustment) करना आवश्यक हो जाता है। किसी आविष्कार अथवा

खोज के कारण जहाँ हमारी संस्कृति का एक भाग पहले बदलता है वहीं संस्कृति पर निर्भर दूसरे भागों में परिवर्तन में विलम्ब हो जाता है। पिछड़ की यह मात्रा संस्कृति के भौतिक तत्वों की प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है, लेकिन अनेक वर्षों तक इसके बने रहने की सम्भावना की जा सकती है और इतने समय तक यह स्थिति असामंजस्य की स्थिति कहलाती है।"[4]

9.8.1 सांस्कृतिक पिछड़ की स्थिति के कारण तथा परिणाम[5]

अब प्रश्न यह उठता है कि संस्कृति के विभिन्न भागों में यह असन्तुलन क्यों उत्पन्न हो जाता है। क्या कारण है कि संस्कृति का भौतिक पक्ष बहुत तेजी से परिवर्तित हो जाता है, जबकि अभौतिक पक्ष बहुत धीरे-धीरे या बिल्कुल भी परिवर्तित नहीं होता? ऑगबर्न ने इस दशा को स्पष्ट करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कारणों का उल्लेख किया है:

(1) व्यक्तियों की रूढ़िवादिता इसका सर्वप्रथम कारण है। व्यक्ति अपने व्यवहारों, मनोवृत्तियों, वेश-भूषा और जीवन की सामान्य परिस्थितियों को आसानी से छोड़ना नहीं चाहते। अधिकतर यह देखा गया है कि बाहर से आकर बसने वाले व्यक्ति एक नये समूह से जल्दी ही अनुकूलन कर लेते हैं, जबकि उस समूह में पहले से रहने वाले व्यक्तियों में परिवर्तन के प्रति कोई उत्साह नहीं होता।

(2) नवीन वस्तु अथवा नये विचारों के प्रति भय (Fear of the new) इसका दूसरा कारण है। इतिहास बताता है कि भौतिक उन्नति के प्रति भारतीय संस्कृति ने कभी उत्साह नहीं दिखाया। इस प्रकार जब कभी भी नये आविष्कार हुए अथवा नवीन विचारों का प्रसार हुआ, तब उनका बहिष्कार इसलिए किया गया क्योंकि उनके अच्छे या बुरे भविष्य के बारे में कोई भी व्यक्ति कुछ नहीं कह सकता था।

(3) अतीत के प्रति निष्ठा होने से भी अभौतिक संस्कृति अपेक्षाकृत रूप से कम परिवर्तित हो पाती है। हम किसी उपकरण अथवा वस्तु को अक्सर इसलिए सुरक्षित रखते हैं कि वह बहुत पुरानी है। हम पुराने विचारों को इसलिए अच्छा समझते हैं क्योंकि अतीत में व्यक्ति उनको महत्व देते आये हैं। पूर्वनों की परम्पराओं को स्थायी बनाये रखना सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति अपना नैतिक कर्तव्य समझता है।

(4) निहित स्वार्थों (Vested interests) के कारण भी कुछ व्यक्ति संस्कृति के भौतिक अथवा अभौतिक तत्वों में परिवर्तन करना नहीं चाहते। उदाहरण के लिए, जो व्यक्ति पहले ही शिक्षित हैं वे शिक्षा का और अधिक प्रसार नहीं चाहते। पूँजीपति अपने ही उद्योग से सम्बन्धित नयी-नयी मशीनों का आविष्कार नहीं चाहते, कयोंकि ऐसा होने से उनकी मशीनों की उपयोगिता कम रह जायेगी। राजकीय अधिकारी तथा उच्च पदों पर आसीन बुद्धिजीवी हिन्दी के प्रयोग को इसलिए प्रोत्साहन देना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए फिर से मेहनत करनी होगी और हो सकता है कि जन-भाषा में कार्य करने से उनका महत्व भी सामान्य रह जाये। स्वाभाविक है ऐसी स्थिति में संस्कृति का अभौतिक पक्ष प्रौद्योगिक विकास से पिछड़ जायेगा।

(5) नवीन विचारों की परीक्षा में कठिनता होने के कारण भी अभौतिक संस्कृति में अधिक परिवर्तन नहीं हो पाते। परम्परागत विचारों की उपयोगिता से सभी व्यक्ति परिचित होते हैं लेकिन ऐसी कोई कसौटी नहीं है जिससे यह जाना जा सके कि नये विचार भी उपयोगी होंगे ही।

9.9 वैचारिक एवं सामाजिक परिवर्तन

समस्याओं के उत्पन्न होने से सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा मिलता है। वैचारिक परिवर्तन (Ideological Change) - कॉम्ट, वेबर, मार्क्स, दुर्खीम, सारोकिन, और कार्ल मानहीम जैसे विद्वानों का मानना है कि विचार एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक तत्व है जो सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विचार सामाजिक मूल्यों और समय की आवश्यकताओं से जुड़े होते हैं। समय की मांग के अनुसार विचारों में परिवर्तन होते रहते हैं, जो सामाजिक परिवर्तन का एक मुख्य कारण है। उदाहरण के लिए, एक लंबे समय तक यह माना जाता था कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है और उसके आदेशों का पालन करना सभी का कर्तव्य है। लेकिन जब नए राष्ट्रों का उदय हुआ तो लोगों के विचार बदले और राज्य के अधिकार बढ़ने लगे, अंधविश्वास कम हुए, निम्न और मध्यम वर्गों के अधिकार बढ़े, समाज को समानता की दिशा में प्रयास होने लगे, और हर कार्य में तर्क और विवेक को महत्व दिया जाने लगा।

मैक्स वेबर ने यह भी कहा कि किसी समाज की आर्थिक व्यवस्था विचारों या धार्मिक विश्वासों पर आधारित होती है। अगर हम भारत का उदाहरण लें, तो यह स्पष्ट होता है कि स्मृतिकाल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक हमारे विचार पूरी तरह धार्मिक मान्यताओं, जन्म पर आधारित स्तरीकरण और जातिगत विभेदों पर आधारित थे। उन्नीसवीं शताब्दी में सुधारवादी विचारों का उदय हुआ, जिससे सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवा विवाह पर नियंत्रण और धार्मिक अंधविश्वासों की आलोचना होने लगी। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के प्रभाव से प्रगतिशील विचारों का प्रभाव बढ़ा, जिससे स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलने लगे; विवाह और संपत्ति संबंधी नियमों में व्यापक परिवर्तन हुए; पिछड़ी जातियों और दुर्बल वर्गों को समानता के अधिकार प्राप्त हुए; कर्मकांडों की तीव्र आलोचना की जाने लगी और राज्य द्वारा समाज के सभी वर्गों को विकास के समान अवसर मिलने लगे।

वास्तविकता यह है कि सामाजिक परिवर्तन में विचारों का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। विचारों में परिवर्तन समय की आवश्यकताओं के अनुसार होता है, जिससे लोग नए विचारों को जल्दी अपनाते हैं। लेपियर ने कहा है कि "हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही व्यवहार करते हैं।"[6] इस प्रकार, विचारों में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की दशा उत्पन्न करता है।

9.10 सामाजिक संस्थाएँ एवं सामाजिक परिवर्तन

परिवार एवं विवाह संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व हैं। जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। विवाह समाज की एक प्रमुख संस्था है, जो स्त्री-पुरुष के सम्बंधों को नियंत्रित करने के साथ-साथ वैधता प्रदान करती हैं। विवाह के नियम ही इस बात का निर्धारण करते है कि समाज में स्त्री-पुरुष के सम्बंध और उनका स्वरूप कैसा होगा। विवाह परिवार के निर्माण में सहयोग करता है। परिवार बच्चों का समाजीकरण कर उन्हें सामाजिकता प्रदान करता है। यदि इन महत्वपूर्ण संस्थाओं के नियम बदलते हैं तो इनका सीधा प्रभाव सामाजिक सम्बंधों पर होगा तथा विवाह एवं परिवार का स्वरूप, संरचना तथा इनकी भूमिका को भी प्रभावित करेगा।

9.11 सांस्कृतिक परिवर्तन के कारकों का प्रभाव

सांस्कृतिक कारक उन तत्वों को संदर्भित करते हैं जो किसी समाज की संस्कृति, जैसे कि परंपराएं, विश्वास, मूल्य, रीतियां, और कला, को परिभाषित करते हैं। ये कारक समाज के जीवन शैली और सोचने के तरीकों को प्रभावित करते हैं। धर्म और आध्यात्मिकता, समाज के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को स्थापित करते हैं। इनमें बदलाव समाज के विचारों और आचरण को प्रभावित करते हैं। विभिन्न धर्मों में सुधार आंदोलनों ने समाज में महिलाओं और वंचित वर्ग के अधिकारों की स्वीकृति को बढ़ावा दिया है। भारतीय समाज में विवाह की संस्था समय के साथ बदल रही हैं, जिससे महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। शिक्षा और ज्ञान, समाज के विकास और परिवर्तन के प्रमुख साधन हैं। शिक्षा के माध्यम से नए विचार और तकनीकें समाज में प्रवेश करती हैं, जिससे सामाजिक परिवर्तन संभव होता है। शिक्षा के प्रसार ने ग्रामीण इलाकों में कृषि तकनीकों के सुधार और ग्रामीण विकास को प्रोत्साहन दिया है। कला और साहित्य समाज की संस्कृति और इतिहास को प्रतिबिंबित करते हैं।

भाषा और संचार के साधन समाज में विचारों और ज्ञान के प्रसार का माध्यम होते हैं। जब नए संचार साधनों का विकास होता है, जैसे कि इंटरनेट और सोशल मीडिया, तो इससे विचारों का प्रसार तेज हो जाता है और सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन मिलता है। परंपराएं और रीतियां समाज के दीर्घकालिक आचरण और विश्वास को बनाए रखती हैं। समय के साथ इनमें परिवर्तन होता है, जो समाज के विकास और परिवर्तन का एक प्रमुख कारण बनता है।

संस्कृति के विभिन्न तत्व अथवा आयाम सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गहनता से प्रभावित करते हैं। संस्कृति के विभिन्न तत्वों जैसे विश्वास, संस्थाएँ, मूल्य, प्रथाएँ तथा समाजिक सम्बन्ध आदि के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता हैं। संस्कृति के विभिन्न पक्ष जहाँ एक और हमें व्यवहार करना सिखते हैं अथवा समाजीकरण कर हमें समाज से अनुकूलन करने योग्य बनाते हैं वहीं दूसरी और हमारे व्यवहारों तथा सामाजिक क्रियाओं आदि पर नियत्रण भी रखते हैं। जैसे हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए, हमारा रहन

सहन कैसा होना चाहिए इत्यादि। सांस्कृतिक कारकों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब एक समाज अपनी संस्कृति में बदलाव करता है, तो यह उसके सामाजिक ढांचे और संबंधों को भी प्रभावित करता है।

जब समाज के मूल्य और मान्यताएँ बदलती हैं, तो यह समाज के आचरण और व्यवहार को प्रभावित करता है। जैसे- महिलाओं की शिक्षा और कार्यस्थल में उनकी भागीदारी के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव ने समाज में लैंगिक समानता को प्रोत्साहन दिया है। सांस्कृतिक परिवर्तन से सामाजिक संस्थाओं, जैसे कि परिवार, विवाह, और शिक्षा प्रणाली में भी बदलाव उत्पन्न होता है। सांस्कृतिक परिवर्तन से नई सामाजिक पहचान और समुदायों का उदय होता है, जो समाज में विविधता और समावेशन को प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के लिए LGBTQ+ समुदाय की स्वीकृति और अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता ने समाज में उनकी पहचान को मान्यता दिलाई है।

9.12 सारांश

सामाजिक परिवर्तन और संस्कृति के बीच गहरा संबंध है। संस्कृति मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे रहन-सहन, विचार, विश्वास और उपलब्धियों का समग्र रूप है। मैकाइवर, टायलर, मैलिनोव्स्की, बीरस्टीड और रैडफील्ड ने संस्कृति की विविध परिभाषाएँ दी हैं, जो इसे दैनिक व्यवहार, ज्ञान, नैतिकता, प्रथाओं और विचारों का संगठित समूह मानती हैं। संस्कृति के दो प्रमुख पहलू हैं: भौतिक (जैसे औजार, वस्त्र) और अभौतिक (जैसे रीति-रिवाज, मूल्य)। सांस्कृतिक परिवर्तन के सूचकों में विश्वास, मूल्य, नैतिकता, वेश-भूषा, खान-पान और फैशन शामिल हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने भौतिक संस्कृति में तेजी से बदलाव लाए हैं, जबकि अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन धीमे होते हैं। सांस्कृतिक प्रसार, पर-संस्कृति-ग्रहण, और संस्कृति संघर्ष भी महत्वपूर्ण कारक हैं। संस्कृति संचय का गुण समय के साथ संस्कृति में निरंतर वृद्धि को दर्शाता है, जबकि संस्कृति विलंबन सामाजिक संरचनाओं के तालमेल में देरी को इंगित करता है। कुल मिलाकर, संस्कृति समाज के विकास और परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका

निभाती है, जो समाज के मूल्य, मान्यताएँ, संस्थाएँ और सामाजिक संबंधों को गहराई से प्रभावित करती है।

9.13 बोध प्रश्न के उत्तर

1. मैकाइवर एवं पेज (Machiver and Page) के अनुसार "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनन्द में पाये जाने वाले तत्व, रहन-सहन और विचार के ढ़ग से हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति हैं।"

9.14 संदर्भ गंर्थ

1 विद्याभूषण, ड. आ. (2010). *समातशास्त्र के सिद्धान्त*. इलाहाबाद: किताब महल, 22-ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद .

2 जी. के. अग्रवाल. (2000). *सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन* . आगरा: साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.) लि. पेज- 411

3 W. F Ogburn, Social Change (Part IV&V)

4 जी. के. अग्रवाल. (2000). *सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन* . आगरा: साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.) लि. पेज- 412

5 Ogburn and Nimkoff, *AHandbook of Sociology, pp;* 507-12.

6 Lapier, Social Change, p. 294

7 जे० पी० सिंह (2004) समाजसास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

8 जे० पी० सिंह (1999) सामाजिक परिवर्तनः स्वरूप एवं सिद्धांत, प्रेंटिस-हाल आफ इण्डिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

9 एस० एल० दोषी एवं पी० सी० जैन (2009) समाजसास्त्र: नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

10 नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) समाजसास्त्र विवेचन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

11 विद्याभूषण एवं डी० आर० सचदेव (2010) समाजसास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, नई दिल्ली।

12 हरिकृष्ण रावत (2002): समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

13 K.L. Sharma (2007): India Social Structure and Change, Rawat Publications, New Delhi.• 14 T.B. Bottomore (1970): Sociology: A Guide to Problem and Litrature, S. Chand and Company, New Delhi.

15 M.N. Srinivas (2009): Social Change in Modern India, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

9.15 अभ्यास प्रश्न:

1. सांस्कृतिक कारक किस प्रकार से सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं? स्पष्ट करें।
2. सामाजिक संस्थाएँ सामाजिक परिवर्तन में किस प्रकार योगदान करती हैं? उदाहरण सहित समझाएँ।
3. सांस्कृतिक प्रसार एवं पर-संस्कृतिग्रहण से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाएँ।
4. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सामाजिक परिवर्तन में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका पर चर्चा करें।

इकाई 10: सामाजिक परिवर्तन के रेखीय एवं चक्रीय सिद्धान्त

Linear and Cyclical Theories of Social Change

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 समाजिक परिर्वतन के रेखीय सिद्धांत

10.3 प्रमुख रेखीय सिद्धान्तकार एवं उनके विचार

10.4 समाजिक परिर्वतन के चक्रीय सिद्धांत

10.5 प्रमुख चक्रीय सिद्धान्तकार एवं उनके विचार

10.3 प्रमुख रेखीय सिद्धान्तकार एवं उनके विचार

10.4 समाजिक परिर्वतन के चक्रीय सिद्धांत

10.5 प्रमुख चक्रीय सिद्धान्तकार एवं उनके विचार

10.6 रेखीय एवं चक्रीय सिद्धांत में अन्तर

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से समाज की संरचना, संस्कृति, और संस्थाएँ समय के साथ बदलती हैं। इस परिवर्तन को समझने के लिए समाजशास्त्रियों ने विभिन्न सिद्धांत विकसित किए हैं। इनमें से दो प्रमुख सिद्धांत हैं: रेखीय और चक्रीय सिद्धांत। रेखीय और चक्रीय दोनों सिद्धांत सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। रेखीय सिद्धांत समाज के निरंतर विकास की अवधारणा पर जोर देता है, जबकि चक्रीय सिद्धांत समाजों के उदय और पतन के चक्र को दर्शाता है। दोनों सिद्धांतों की अपनी-अपनी विशेषताएँ और सीमाएँ हैं, और समाजशास्त्रियों ने इन सिद्धांतों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की जटिलता को समझने का प्रयास किया है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को पूर्णत: समझने के लिए इन दोनों सिद्धांतों को समग्र दृष्टिकोण के साथ अध्ययन की आवश्यकता है। अत: इस इकाई में, हम इन दोनों सिद्धांतों का विश्लेषण करेंगे और इनके प्रमुख विचारकों और विचारों की चर्चा करेंगे।

10.1 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1 समाजिक परिर्वतन के रेखीय सिद्धांत और चक्रीय सिद्धांत को जान पायेंगे।

2 प्रमुख रेखीय एवं चक्रीय सिद्धान्तकार के विचारों को जान पायेंगे।

10.2 समाजिक परिर्वतन के रेखीय सिद्धांत

रेखीय सिद्धांत यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन एक सीधी रेखा में होता है, जहाँ समाज एक विशेष दिशा में निरंतर प्रगति करता है। यह परिवर्तन एक लक्षित दिशा में होता है, जिससे समाज उत्तरोत्तर उन्नति की ओर बढ़ता है। सामाजिक परिवर्तन के रेखीय सिद्धान्त पर उद्विकासवादियों का प्रभाव था। उनका मानना था कि परिवर्तन बल्कि यह एक सीधी रेखा में नीचे से ऊपर की ओर विभिन्न चरणों में होता है। प्रमुख रेखीय सिद्धान्तकारों में कॉम्टे, स्पेंसर, हॉबहाउस, मार्क्स और वेबलिन शामिल हैं।

कॉम्टे ने समाज का विकास तीन स्तरों (वैज्ञानिक से धार्मिक) में किया है। स्पेंसर और मॉर्गन ने यह प्रस्तावित किया कि प्रत्येक विकास या परिवर्तन की गति कुछ निश्चित स्तरों से होकर गुजरती है और प्रत्येक स्तर अपने पूर्ववर्ती स्तर (पहले स्तर) की तुलना में अधिक पूर्णता को स्पष्ट करता है। स्पेंसर ने समाज के उद्विकासीय रूप को चार स्तरों (शिकारी से औद्योगिक) में बाँटा है, जबकि मार्क्स ने पाँच (आदिम साम्यवादी से आधुनिक साम्यवादी) में बाँटा है। मार्क्स और वेबलिन के सिद्धान्तों को 'प्राविधिक सिद्धान्त' या 'निर्धारणवादी सिद्धान्त' भी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने उत्पादन की विधियों और प्रौद्योगिकी में होने वाले परिवर्तन के आधार पर सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्तरों को स्पष्ट किया है।

इस प्रकार, सामाजिक परिवर्तन के रेखीय सिद्धान्तकार यह मानते हैं कि परिवर्तन चक्रीय गति में न होकर सीधी रेखा में होता है और प्रत्येक स्तर पर समाज एक उच्चतर अवस्था की ओर बढ़ता है।

10.3 प्रमुख रेखीय सिद्धान्तकार एवं उनके विचार

1 हरबर्ट स्पेन्सर का सिद्धान्त

हरबर्ट स्पेंसर का रेखीय सिद्धान्त सामाजिक विकास और परिवर्तन को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। स्पेंसर ने समाज को जैविक जीवों के रूप में देखा और यह तर्क दिया कि समाजों का विकास उसी तरह होता है जैसे जीवों का होता है। उनके अनुसार, समाज सरल से जटिल रूपों में विकसित होते हैं, और इस प्रक्रिया में विभिन्न चरणों से गुजरते हैं।

स्पेंसर के अनुसार, सामाजिक विकास के चार प्रमुख स्तर हैं:

I. **शिकारी समाज (Hunting and Gathering Society)**: यह सबसे प्रारंभिक और सरल समाज है, जिसमें लोग भोजन और जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए शिकार और संग्रहण पर निर्भर रहते हैं।

II. **कृषि समाज (Agrarian Society)**: इस स्तर पर, समाज कृषि पर आधारित होता है। कृषि के विकास के साथ स्थायी निवास, संपत्ति और अधिक जटिल सामाजिक संरचनाओं का उदय होता है।

III. **औद्योगिक समाज (Industrial Society)**: इस चरण में, औद्योगिकीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण समाज और भी जटिल हो जाता है। इसमें विशेषीकरण, श्रम विभाजन, और संगठनों की जटिलता बढ़ती है।

IV. **उत्तर-औद्योगिक समाज (Post-Industrial Society)**: स्पेंसर ने इस स्तर को स्पष्ट रूप से नहीं परिभाषित किया, लेकिन यह चरण औद्योगिक समाज से भी आगे का है, जिसमें सेवा क्षेत्र और सूचना प्रौद्योगिकी प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

स्पेंसर का मानना था कि सामाजिक विकास की यह प्रक्रिया निरंतर और अपरिहार्य है। उन्होंने समाज के विकास को एक रेखीय प्रक्रिया के रूप में देखा, जहां प्रत्येक स्तर अपने पूर्ववर्ती स्तर से अधिक जटिल और परिष्कृत होता है।स्पेंसर के रेखीय सिद्धान्त की आलोचना भी की गई है, क्योंकि यह सभी समाजों पर समान रूप से लागू नहीं हो सकता। विभिन्न समाजों में विकास की प्रक्रिया अलग-अलग हो सकती है और सभी समाज इस रेखीय क्रम का पालन नहीं करते। इसके बावजूद, स्पेंसर का रेखीय सिद्धान्त सामाजिक विकास को समझने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है और समाजशास्त्र में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण के रूप में मान्यता प्राप्त करता है।

2 मॉर्गन का सिद्धान्त

मार्गन का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत (Morgan's Theory of Social Change) को अमेरिकी मानवविज्ञानी लुईस हेनरी मॉर्गन (Lewis Henry Morgan) द्वारा प्रस्तुत किया गया था। यह सिद्धांत समाजों के विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने के लिए महत्वपूर्ण है। मॉर्गन ने समाजों के विकास को तीन मुख्य चरणों में विभाजित किया है:

1. **सभ्यता की अवस्था (Savagery):** यह प्रारंभिक अवस्था है जिसमें मानव समाज प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहता है। इस अवस्था में लोग शिकार, मछली पकड़ने और जंगली फलों का संग्रहण करते हैं।
2. **बर्बरता की अवस्था (Barbarism):** इस अवस्था में समाज कृषि और पशुपालन की ओर बढ़ता है। लोग स्थायी निवास बनाने लगते हैं, और भोजन उत्पादन में सुधार होता है। इस अवस्था में विभिन्न प्रकार की तकनीकी प्रगति होती है, जैसे कि मिट्टी के बर्तनों और धातु के औजारों का उपयोग।
3. **सभ्यता की अवस्था (Civilization):** इस अवस्था में समाज में लेखन और साक्षरता का विकास होता है। यहाँ पर सामाजिक संगठन, सरकार और कानून की जटिल संरचनाएँ विकसित होती हैं। इस अवस्था में उच्चतम स्तर की तकनीकी और सांस्कृतिक प्रगति होती है।

मॉर्गन का यह सिद्धांत समाजों के क्रमिक विकास और प्रगति की व्याख्या करता है। उनका मानना था कि समाज एक सीधी रेखा में इन तीन अवस्थाओं से गुजरता है। हालांकि, आजकल इस सिद्धांत की आलोचना भी की जाती है, क्योंकि यह अत्यधिक सरल और रेखीय है और विभिन्न समाजों की विविधताओं और जटिलताओं को पूरी तरह से प्रतिबिंबित नहीं करता। सामाजिक परिवर्तन का यह सिद्धांत समाजों के विकास की एक सामान्य दृष्टि प्रस्तुत करता है और यह बताता है कि मानव समाज समय के साथ कैसे बदलता और विकसित होता है।

3 ऑगस्ट कॉम्टे का सिद्धान्त

ऑगस्ट कॉम्टे ने समाज के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया: धार्मिक, तात्विक, और वैज्ञानिक। इनके अनुसार मानव का बौद्धिक विकास सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण है। इन्होंने सामाजिक विकास के तीन चरण बताए जो सामाजिक विकास की एक रेखीय दृष्टि प्रस्तुत करता है।

(i) धार्मिक स्तर: इस अवस्था में समाज प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या धार्मिक और अलौकिक कारणों से करता है। यह मानव व समाज की प्राथमिक अवस्था थी।

(ii) तात्विक स्तर: इस अवस्था में समाज तर्कसंगत और दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाता है। इसमें घटनाओं को उनके गुणों के आधार पर समझाया गया, अलौकिक शक्तियों पर विश्वास कम हो गया और सभी घटनाओं की जिम्मेदारी प्राणियों में विद्यमान अमूर्त शक्तियों को मानी गई।

(iii) वैज्ञानिक स्तर: इस अवस्था में समाज वैज्ञानिक पद्धतियों और कारणों से प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या करता है। यह स्तर समाज की सबसे अन्तिम अवस्था है।

काम्टे कहते हैं कि बौद्धिक विकास तीन चरणों में होता है। मनुष्य के बौद्धिक विकास को हर समाज और हर युग में अध्ययन करने से पता चलता है कि ज्ञान की प्रत्येक शाखा तीन अलग-अलग दशाओं से गुजरती है। इनमें धार्मिक स्तर सबसे पहले आता है, उसके बाद तात्विक स्तर आता है, और सबसे अंतिम अवस्था वैज्ञानिक स्तर है।

समालोचना-

समाज में होने वाले परिवर्तनों की योजनाबद्ध एवं क्रमबद्ध व्याख्या के लिए कॉम्टे का प्रयास सराहनीय है, लेकिन उनके सिद्धान्त को पूर्णतः सही नहीं माना जा सकता। उन्होंने चिन्तन और सामाजिक विकास के जिन तीन स्तरों का उल्लेख किया, वे सभी समाजों पर एक ही प्रकार से लागू नहीं होते। विभिन्न समाजों में ये स्तर पहले, बाद में या साथ-साथ भी हो सकते हैं। कॉम्टे के समरेखीय विकास के विचार से स्पेंसर, दुर्खीम और अन्य उद्विकासवादी प्रभावित हुए और उन्होंने समाज, संस्कृति और इसके विभिन्न पक्षों का उद्विकासीय क्रम प्रस्तुत किया। हालांकि, कॉम्टे के सिद्धान्त की आलोचना भी हुई, क्योंकि यह सभी कालों और समाजों के लिए सत्य नहीं है। इसके बावजूद, उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के स्पष्टीकरण के लिए एक नई दिशा प्रदान की और सामाजिक विकासवाद की धारणा को प्रभावित किया। कुल मिलाकर,

कॉम्टे ने सामाजिक परिवर्तन को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, भले ही उनका सिद्धांत सभी कालों और समाजों के लिए पूरी तरह से लागू न हो।

4 कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त

कार्ल मार्क्स के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) के सिद्धांत पर आधारित होता है। उन्होंने इसे उत्पादन के साधनों के नियंत्रण और वर्ग संघर्ष के माध्यम से समझाया। समाज का विकास सामंतवाद से पूंजीवाद और अंततः समाजवाद की ओर होता है।

1. **सामंतवाद**: जमींदारों और किसानों के बीच वर्ग संघर्ष।
2. **पूंजीवाद**: पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच वर्ग संघर्ष।
3. **समाजवाद**: वर्ग संघर्ष की समाप्ति और वर्गविहीन समाज की स्थापना।

आलोचना

रेखीय सिद्धांत की आलोचना यह है कि यह सामाजिक परिवर्तन को बहुत सरल तरीके से प्रस्तुत करता है और यह मानता है कि समाज हमेशा उन्नति की दिशा में ही बढ़ता है। यह सिद्धांत सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न आयामों और उलटफेरों की जटिलता को नजरअंदाज करता है।

5 थॉर्सटीन वेबलिन का सिद्धान्त

वेबलिन का मानना है कि सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रौद्योगिक दशाएँ उत्तरदायी होती हैं। उनके अनुसार, प्रौद्योगिकी सीधे तौर पर सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करती है, और इसी कारण उनके सिद्धांत को 'प्रौद्योगिक निर्णयवाद' (Technological Determinism) कहा जाता है। वेबलिन ने मानवीय विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया है:

1. स्थिर विशेषताएँ: जो मानव की मूल प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं से संबंधित होती हैं और इनमें बहुत कम परिवर्तन होता है।
2. परिवर्तनशील विशेषताएँ: जैसे आदतें, विचार और मनोवृत्तियाँ। सामाजिक परिवर्तन का संबंध मानव की इन दूसरी विशेषताओं, विशेष रूप से विचार करने की आदतों से होता है।

मनुष्य अपनी आदतों से नियंत्रित होता है और उनका दास बन जाता है। इन आदतों का प्रकार, मानव के भौतिक पर्यावरण, विशेषकर प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है। जब भौतिक पर्यावरण यानी प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आता है, तो मानव की आदतें भी बदल जाती हैं। जिस प्रकार के कार्य और प्रविधि द्वारा मनुष्य जीवनयापन करता है, वैसी ही उसकी आदतें और मनोवृत्तियाँ बनती हैं। जीवनयापन के लिए अपनाई गई प्रविधि के अनुसार, वह अपनी आदतों को ढालता है। ये आदतें व्यक्ति को एक निश्चित प्रकार का जीवन व्यतीत करने को बाध्य करती हैं और उसके विचारों को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, सैनिक, कृषक, डॉक्टर, इंजीनियर आदि जिस प्रकार का कार्य करते हैं, उनके विचार और आदतें भी वैसी ही हो जाती हैं। भौतिक पर्यावरण मानव के कार्य को और कार्य मानव के विचारों और आदतों को निर्धारित करता है। उदाहरण के तौर पर, कृषि कार्य के आधार पर ही मानव जीवनयापन के लिए एक विशेष प्रौद्योगिकी का उपयोग करता था, और उसी के अनुसार उसका भौतिक पर्यावरण बना हुआ था। कृषि कार्य के आधार पर ही उसकी आदतें और मनोवृत्तियाँ बनती थीं। किन्तु जब मशीनों का आविष्कार हुआ, तो मानव का भौतिक पर्यावरण बदला, प्रौद्योगिकी बदली, काम की प्रकृति बदली, और इसके साथ ही उसकी आदतों और मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन आया। आदतें धीरे-धीरे स्थापित और सुदृढ़ होकर संस्थाओं का रूप ले लेती हैं, और यही संस्थाएँ सामाजिक ढाँचे का निर्माण करती हैं। इसलिए जब आदतों में परिवर्तन होता है, तो सामाजिक संस्थाओं और ढाँचे में भी परिवर्तन आता है, जिसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। सामाजिक संरचना में परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है। इस प्रकार, वेबलिन सामाजिक परिवर्तन को नवीन प्रविधियों और प्रौद्योगिक कारकों से उत्पन्न मानते हैं, इसलिए उन्हें प्रौद्योगिक निश्चयवादी कहा जाता है।

आलोचना

(i) वेब्लिन के सिद्धांत में भी लगभग वही कमियाँ हैं जो मार्क्स के सिद्धांत में हैं क्योंकि उन्होंने भी मार्क्स की तरह प्रौद्योगिकी को ही सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारक माना है।

(ii) वेब्लिन ने मानव को अपनी आदतों द्वारा नियंत्रित प्राणी माना है, लेकिन यह सही नहीं है। मानव आदत से अधिक अपने विवेक से नियंत्रित होता है।

(iii) यह कहना उचित नहीं है कि केवल प्रौद्योगिकी परिवर्तन से ही सामाजिक परिवर्तन आता है, क्योंकि कभी-कभी भौतिक पर्यावरण में कोई बदलाव नहीं होता फिर भी नैतिक, धार्मिक और अन्य कारकों के कारण समाज में परिवर्तन आ जाता है।

(iv) वेब्लिन का सिद्धांत एक पक्षीय है। सामाजिक परिवर्तन किसी एक ही कारक का परिणाम नहीं होता बल्कि यह कई कारकों का परिणाम है। यह एक जटिल प्रक्रिया है जिसे वेब्लिन ने अत्यधिक सरल रूप में प्रस्तुत किया है।

स्वप्रगति परीक्षण

1 सामाजिक परिवर्तन को कार्ल मार्क्स किस अधार पर बताया है?

2 ऑगस्ट कॉम्टे ने समाज के विकास को कितने चरणों में विभाजित किया है?

(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) उपरोक्त सभी

10.4 समाजिक परिर्वतन के चक्रीय सिद्धांत

चक्रीय सिद्धांत यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन एक चक्र के रूप में होता है। सामाजिक परिवर्तन के रेखीय सिद्धान्त के विपरीत चक्रीय सद्धान्त इस मान्यता पर आधारित हैं कि सामाजिक परिवर्तन की

प्रवृत्ति विभिन्न चरणों से गुजरती है और अंततः अपनी प्रारंभिक अवस्था में लौट आता है। इस सिद्धांत के अनुसार, समाज का विकास और पतन एक चक्रीय प्रक्रिया है।

10.5 प्रमुख चक्रीय सिद्धान्तकार एवं उनके विचार

1 ऑसवाल्ड स्पेंगलर का सिद्धान्त

ओसवाल्ड स्पेंगलर ने कहा कि सभ्यता-संस्कृति भी उत्थान-निर्माण-विकास-पतन के चक्र से गुजरती हैं, जैसे मानव जीवन। स्पेंगलर ने विश्व की आठ सभ्यताओं का अध्ययन किया और पाया कि पश्चिमी सभ्यता अब पतन की ओर अग्रसर है। स्पेंगलर ने अपनी पुस्तक "द डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट" में कहा कि युद्ध और शहरों का बनाना सभ्यताओं का पतन है। ऑसवाल्ड स्पेंगलर ने समाजों को जीवित प्राणियों के रूप में देखा, जो जन्म, विकास, और पतन के चक्र से गुजरते हैं। उनके अनुसार, पश्चिमी सभ्यता भी इस चक्र में है और यह अंततः पतन की ओर अग्रसर है। इनके अनुसार-

1. **जन्म**: समाज का उदय।
2. **विकास**: समाज का उत्कर्ष।
3. **वृद्धावस्था**: समाज का पतन।

2 अर्नोल्ड टोयनबी का सिद्धान्त

अर्नोल्ड जे. टॉयनबी ने अपनी पुस्तक "ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री" में सभ्यताओं के उदय और पतन के चक्रीय सिद्धांत को प्रस्तुत किया। इस पुस्तक में टॉयनबी ने विश्व की 21 सभ्यताओं का अध्ययन करके सामाजिक परिवर्तन को समझाया है। सभ्यता का जन्म प्राकृतिक या आंतरिक चुनौतियों से होता है। जो इन चुनौतियों का सामना कर अनुकूलन कर लेते हैं वे सभ्यताएं जीवित रहती हैं, शेष नष्ट हो जाती हैं। उन्होंने तर्क दिया कि समाजों का विकास चुनौती एवं प्रत्युत्तर के सिद्धांत पर आधारित होता है-

1. **चुनौती**: समाज के सामने चुनौतियाँ आती हैं।

2. **प्रतिक्रिया**: समाज उन चुनौतियों का समाधान करता है।
3. **वृद्धावस्था और पतन**: समाज जब चुनौतियों का सामना करने में विफल हो जाता है, तो उसका पतन शुरू हो जाता है।

आलोचना

चक्रीय सिद्धांत की आलोचना यह है कि यह सामाजिक परिवर्तन को नियतिवादी दृष्टिकोण से देखता है, जो समाजों के विकास और पतन को अपरिहार्य मानता है। यह सिद्धांत समाजों के बीच अंतःक्रियाओं और बाहरी प्रभावों की जटिलता को नजरअंदाज करता है।

3 पेरेटो का सिद्धान्त

इटली के प्रसिद्ध समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो ने अपनी पुस्तक 'माइंड एंड सोसाइटी' में अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धांत दिया है। आपके अनुसार दो वर्गों, अभिजात और सामान्य, समाज में स्थिर नहीं रहते; वे समय के साथ बदलते रहते हैं। समाज में अभिजात वर्ग का एक चक्रीय प्रकृति में परिसंचरण होता है। पैरेटो ने इस सिद्धांत के लिए मैकियावैली के शेर-लोमड़ी अवधारणा को आधार माना है। यह सिद्धांत बताता है कि -

1. समाज में शक्ति (सत्ता) और प्रभाव रखने वाले व्यक्ति बदलते रहते हैं। नए अभिजात वर्ग पुराने अभिजात वर्ग की जगह लेता है।
2. पेरेटो ने अभिजात वर्ग को शेर और लोमड़ी दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया। शेर परंपरागत बलप्रयोग, से सत्ता में रहते हैं, जबकि लोमड़ी चतुराई और चालाकी से सत्ता में आते हैं।
3. पेरेटो कहता है कि समाज हमेशा चक्रीय होता है। जब शेरों का समूह सत्ता में आता है, लोमड़ी धीरे-धीरे अपना प्रभाव खो देते हैं। इसी तरह, शेरों का समूह समय के साथ अपनी शक्ति खो देता है, और लोमड़ी फिर सत्ता में आती हैं।

पेरेटो का चक्रिय सिद्धांत समाज के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो यह दर्शाता है कि सत्ता और प्रभाव का नियंत्रण हमेशा गतिशील होता है और समाज में स्थिरता एक भ्रम मात्र है।

4 सोरोकिन का सिद्धान्त

सोरोकिन, एक रूसी-अमेरिकी समाजशास्त्री थे। आपने सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन करते हुए चक्रीय सिद्धांत प्रस्तुत किया। जिसे सोरोकिन का सांस्कृतिक गत्यात्मक सिद्धांत (पैण्डुलम सिद्धांत या दो ध्रुवों अथवा सीमाओं का सिद्धांत) कहते है। उनके सिद्धांत का केन्द्र बिन्दु यह है कि समाज और संस्कृति चक्रीय तरीके से बदलते रहते हैं। इस सिद्धान्त में सोरोकिन ने सामाजिक बदलाव के तीन चरणों का उल्लेख किया है-

1. **चेतनात्मक** –

   (i) यह चरण मुख्यतः इंद्रियों और भौतिकता पर आधारित होता है।

   (ii) इसमें समाज भौतिक सुखों, वैज्ञानिक प्रगति और व्यावहारिक जीवन पर अधिक जोर देता है।

   (iii) कला, साहित्य और जीवन के अन्य पहलुओं में भौतिकता और यथार्थवाद का प्रभुत्व होता है।

2. **भावनात्मक**-

   (i) यह चरण आत्मिकता और आध्यात्मिकता पर आधारित होता है।

   (ii) इसमें समाज में धार्मिकता, नैतिकता और आत्मिक मूल्यों का प्रभुत्व होता है।

   (iii) कला और साहित्य में आत्मिकता, आध्यात्मिकता और आदर्शवाद का प्रभाव देखा जाता है।

3. **आदर्शात्मक-**

(i) यह चरण संवेदी और आदर्शवादी संस्कृति के बीच का संतुलन होता है।

(ii) इसमें भौतिक और आत्मिक, दोनों प्रकार के मूल्यों का समावेश होता है।

(iii) समाज में वैज्ञानिक प्रगति और आध्यात्मिकता, दोनों का संतुलित विकास होता है।

सोरोकिन का चक्रीय सिद्धांत यह दर्शाता है कि समाज और संस्कृति हमेशा गतिशील होते हैं और वे एक चक्रीय प्रक्रिया के माध्यम से परिवर्तनशील रहते हैं। उनके अनुसार, समाज संवेदी, आदर्शवादी और आदर्श संवेदी चरणों के बीच घूमता रहता है। जब समाज किसी एक चरण में अधिक समय बिताता है, तो असंतुलन उत्पन्न होता है और यह असंतुलन एक नए चरण में बदलाव की आवश्यकता को जन्म देता है।

इस सिद्धांत से यह भी समझा जा सकता है कि सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव के साथ समाज में सामाजिक गतिशीलता भी होती है, जिससे विभिन्न वर्गों और समूहों के बीच सत्ता और प्रभाव बदलते रहते हैं। संस्कृति का उत्थान और पतन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो समाज के विभिन्न चरणों और उनके बीच के संबंधों को समझने का अवसर प्रदान करती है। सोरोकिन का चक्रीय सिद्धांत हमें समाज के विकास और प्रगति के बारे में गहराई से सोचने का अवसर देता है, यह बताते हुए कि समाज और संस्कृति की स्थिरता मात्र एक भ्रम है और परिवर्तन अनिवार्य है।

10.6 रेखीय एवं चक्रीय सिद्धांत में अन्तर

चक्रीय सिद्धान्त और रेखीय सिद्धान्त सामाजिक परिवर्तन के दो प्रमुख दृष्टिकोण हैं, जिनमें दोनों की अपनी विशेषताएँ हैं। विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय और रेखीय सिद्धान्तों को तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया है। इन सिद्धान्तों की प्रकृति एक-दूसरे से बिल्कुल अलग है, और उनकी प्रकृति को सामान्यीकरण के दृष्टिकोण से अधिक आसानी से समझा जा सकता है।

1. **परिवर्तन का स्वरूप**: चक्रीय सिद्धान्त मानता है कि परिवर्तन एक चक्र में होता है, जहाँ हम पुनः उसी स्थिति में लौट आते हैं, जहाँ से हमने प्रारम्भ किया था। इसके विपरीत, रेखीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन एक सीधी रेखा में होता है और हम एक बार जिस चरण को पार कर लेते हैं, वहाँ फिर कभी नहीं लौटते।
2. **परिवर्तन की दिशा**: चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन की दिशा उच्चता से निम्नता और निम्नता से उच्चता दोनों हो सकती है। रेखीय सिद्धान्त का मानना है कि परिवर्तन हमेशा निम्नतम से उच्चतम की ओर और अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ता है।
3. **परिवर्तन की गति**: चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन का चक्र तेज या मंद दोनों हो सकता है, जबकि रेखीय सिद्धान्त परिवर्तन की धीमी गति में विश्वास करता है, जिसमें एक निश्चित बिंदु के बाद गति तेज हो जाती है।
4. **विकासवाद का प्रभाव**: रेखीय सिद्धान्त पर विकासवादियों का प्रभाव अधिक होता है, जबकि चक्रीय सिद्धान्त पर यह प्रभाव कम होता है।
5. **सैद्धान्तिक और अनुभवसिद्ध दृष्टिकोण**: चक्रीय सिद्धान्त ऐतिहासिक और अनुभवसिद्ध प्रमाणों पर आधारित है, जबकि रेखीय सिद्धान्त सैद्धान्तिक आधार पर अधिक जोर देता है।
6. **मानवीय प्रयत्न और प्राकृतिक प्रभाव**: चक्रीय सिद्धान्त मानता है कि परिवर्तन मानवीय प्रयत्नों और प्राकृतिक प्रभावों का परिणाम है। रेखीय सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक परिवर्तन मानवीय इच्छा से स्वतंत्र होते हैं और स्वतः उत्पन्न होते हैं।
7. **कारण और प्रभाव**: चक्रीय सिद्धान्त परिवर्तन को अनेक कारकों का प्रतिफल मानता है और इसे प्रकृति का स्वाभाविक नियम मानता है। रेखीय सिद्धान्त किसी एक प्रमुख कारण पर बल देता है और निर्धारणवादियों के निकट होता है।
8. **परिवर्तन की प्रक्रिया और प्रकृति**: चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न सामाजिक संगठनों और संरचनाओं में परिवर्तन की प्रक्रिया और प्रकृति में अंतर होता है। रेखीय सिद्धान्त का मानना

है कि परिवर्तन के चरण और क्रम सभी समाजों में समान रहते हैं, जैसे शिकारी अवस्था, पशुचारण अवस्था, कृषि अवस्था और औद्योगिक अवस्था सभी समाजों में आती हैं।

अत: चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार, समाज में परिवर्तन उतार-चढ़ाव से भरा होता है और यह स्वाभाविक रूप से होता है। जबकि रेखीय सिद्धान्त के अनुसार, समाज में परिवर्तन एक निश्चित दिशा में होता है और यह मानवीय प्रयत्नों का परिणाम होता है। चक्रीय सिद्धान्त ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित होता है, जबकि रेखीय सिद्धान्त सैद्धान्तिक आधार पर जोर देता है।

10.6 सारांश

सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए समाजशास्त्रियों ने चक्रीय और रेखीय सिद्धांत जैसे विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। **रेखीय सिद्धांत** समाज के निरंतर विकास की अवधारणा पर जोर देते हैं, जहां परिवर्तन एक सीधी रेखा में होता है और समाज उत्तरोत्तर उन्नति की ओर बढ़ता है। इस दृष्टिकोण में कॉम्टे, स्पेंसर और मार्क्स जैसे प्रमुख विचारक शामिल हैं, जिन्होंने समाज को विभिन्न चरणों में विभाजित कर समाज के विकास की व्याख्या की।

वहीं **चक्रीय सिद्धांत** सामाजिक परिवर्तन को एक चक्र के रूप में देखते हैं, जहां समाज उत्थान और पतन के चक्र से गुजरते हैं। इसमें स्पेंगलर, टोयनबी, और सोरोकिन जैसे प्रमुख विचारक शामिल हैं, जिन्होंने समाजों के उदय और पतन को चक्रीय प्रक्रिया के रूप में समझाया।

दोनों सिद्धांतों के अपने विशेष दृष्टिकोण और सीमाएँ हैं। **रेखीय सिद्धांत** विकास को एक निश्चित दिशा में निरंतर मानते हैं, जबकि **चक्रीय सिद्धांत** इसे उतार-चढ़ाव के चक्र के रूप में देखते हैं। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया की समग्र समझ के लिए दोनों सिद्धांतों का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि ये समाज के विभिन्न पहलुओं और उनके बदलावों को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रकट करते हैं।

10.7 शब्दावली

रेखीय सिद्धांत- रेखीय सिद्धांत यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन एक सीधी रेखा में होता है।

चक्रीय सिद्धांत- चक्रीय सिद्धांत इसे उतार-चढ़ाव के चक्र के रूप में देखते हैं।

10.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1- सामाजिक परिवर्तन को कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) के सिद्धांत पर आधारित होता है। उन्होंने इसे उत्पादन के साधनों के नियंत्रण और वर्ग संघर्ष के माध्यम से समझाया।

2- (ख) तीन

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

1 जी. के. अग्रवाल. (2000). सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन . आगरा: साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.) लि.

2 रामनाथ शर्मा, र. क. (2007). भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समस्यायें. दिल्ली : एटलांटिक पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड.

3 विद्याभूषण, ड. आ. (2010). समातशास्त्र के सिद्धान्त. इलाहाबाद: किताब महल, 22-ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद .

10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 सामाजिक परिर्वतन के चक्रिय सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

2 सामाजिक परिर्वतन के रेखीय सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

इकाई11: सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय एवं जनांकिकीय सिद्वान्त

(Biological and Demographical theories of social change)

इकाई की रुपरेखा

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 सामाजिक परिवर्तन के सिद्वान्त
11.3 सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय सिद्वान्त
11.4 अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रक्रिया
11.5 सामाजिक परिवर्तन के जनांकिकीय सिद्वान्त
11.6 थॉमस रॉबर्ट माल्थस सिद्धांत
11.7 जनसंख्या के माल्थुसियन सिद्धांत की आलोचना
11.8 जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत
11.9 मार्क्स का जनसंख्या सिद्धांत
11.10 सार संक्षेप
11.11 अभ्यास प्रश्न
11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.1 प्रस्तावना(Introduction)

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समाज प्रकृति का अंग है, अतः समाज भी परिवर्तनशील है। संसार के सभी समाज में परिवर्तन होता है। जहां परिवर्तन की गति की दर में समानता नहीं पाई जाती है, अर्थात् परिवर्तन की गति की दर कही मन्द तो कहीं तीव्र हो सकती है। समाज चाहें परम्परागत हो या आधनिक, आदिम हो या सभ्य परिवर्तन का क्रम निरन्तर बना रहता है। समाज जैसे–जैसे सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता जाता है, सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन की गति भी तीव्र होती जाती है। इस इकाई में हमेंसामाजिक परिवर्तन के जैविकीय एवं जनांकिकीय सिद्वान्त के बारें में जानकारी प्राप्त होगी। सामाजिक परिवर्तन एक सतत प्रक्रिया है जो सबके जीवन में घटित होती रहती है। इसका कारण यह है

कि जिस समाज में हम रहते है वह लगातार बदलता रहता है। परिवर्तन की जटिलताओं को समझने में और उनकी व्याख्या करने में समाजशास्त्र हमारी मदद करता है।

11.2 उद्देश्य(Objective)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह सम्भव होगा कि–

1. में हम सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय सिद्वान्त को समझ सकेंगे।
2. सामाजिक परिवर्तन के जनांनकिय सिद्वान्त को बताना।
3. सामाजिक परिवर्तन के जनांकिकीय सिद्वान्त को वर्णन करना।
4. थॉमस रॉबर्ट माल्थस सिद्धांत को बताना।
5. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत का वर्णन करना।
6. मार्क्स का जनसंख्या सिद्धांत को समझना।

11.3 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त (Theory of Social change)

सामजिक परिवर्तन की व्याख्या समाजशास्त्रियों ने कतिपय सिद्वान्तों के संदर्भ में की है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को हम किस उपागम से देखते हैं यह उपागम ही सामाजिक परिवर्तन का सिद्वान्त है। उदाहरण के लिए इतिहासकार टोयनबी या समाजशास्त्री पी. सोरोकीन जब सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करते है, तो उन्हें लगता है कि परिवर्तन तो एक चक्र की तरह है ठीक ऐसे ही जैसे बाल्यावस्था आती है, युवावस्था आती है और अन्त में वृद्वावस्था के बाद शरीर समाप्त हो जाता है।

11.4 सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय सिद्वान्त (Biological theories of social change)

जैविक सिद्धांत के अंतर्गत सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं को जैविकीय आधार पर समझने का प्रयास किया जाता है। मनुष्य अपनी शारीरिक और मानसिक विशेषताओं के आधार पर ही अपने पर्यावरण से अनुकूलन करता है, अपने अस्तित्व को बनाए रखना है यह विशेषताएं हमें अपने माता–पिता से वंशानुक्रम और में प्राप्त होती है। जैविकीय तथ्य ही जनसंख्या के प्रकार को निर्धारित करते हैं, हमारा स्वास्थ्य, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता, योग्यत,ा विवाह की आयु, पर प्रजननता, हमारा कद एवं शारीरिक गठन आदि वंशानुक्रमण एवं जैविकीय तत्वों से ही प्रभावित होते हैं। किसी समाज की जन्मदर, मृत्युदर, औसत आयु आदि को भी जैविकीय

कारक प्रभावित करते हैं। ये तथ्य किसी न किसी रूप से सामाजिक परिवर्तन से संबंधित है।

सामाजिक परिवर्तन से संबंधित तीन जैविकीय सिद्धांत प्रमुख है–

1. वंशानुक्रमण का सिद्धांत
2. प्राकृतिक प्रवरण का सिद्धांत
3. सावयवी उद्वविकास का सिद्धांत

1. <u>वंशानुक्रमण का सिद्धांत</u> (Theory of Heredity)– वंशैानुक्रमण एक प्राणीशास्त्री तथ्य है जिसका अध्ययन 'जनन विद्या' (Genrtics) के द्वारा किया जाता है। जनन विद्या के आधार पर ही हम व्यक्ति के विभिन्न शारीरिक गुणेां का अध्ययन करते हैं। कोई व्यक्ति काला, गोरा, स्वास्थ्य ,कमजोर, छोटा या लंबा क्यों है, इसका संबंध वंशानुक्रमण से जोड़ा जाता है और कहा जाता है कि जैसे माता–पिता होंगे, उनकी संताने भी वैसी होगी। बच्चों में उनके माता–पिता और परिवार जनों के लक्षणों की खोज की जाती है और समानता –असमानता प्रकट की जाती है। कई बार जब संतानों में माता–पिता से भिन्न लक्षण होते हैं जैसे माता–पिता काले हो और संतान गोरी हो तो यह भ्रांति भी पैदा होती है की संतान के माता–पिता कोई और है, किन्तु ऐसे विचार सदैव सही नहीं होते क्योंकि संतान में माता–पिता से भिन्न गुणेां के पाए जाने के अनेक कारण हो सकते हैं। वंशानुक्रमण को परिभाषित करते हुए जिस्बर्ट लिखते हैं, ''प्राकृतिक रूप से विभिन्न पीढ़ियों का प्रत्येक कार्य, माता–पिता से अपने बच्चों में जैविक और मानसिक विशेषताओं के रूप में संचारित होना ही वंशानुक्रमण है।'' इस परिभाषा में वंशानुक्रमण में माता–पिता से बच्चों में शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के हस्तांतरण को सम्मिलित किया गया है।

उपयुक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वंशानुक्रमण एक ऐसी जैविक की प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत संतानों को अपने माता–पिता के वाहकाणूओं द्वारा शारीरिक एवं मानसिक लक्षण प्राप्त होते हैं किंतु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए की वंशानुक्रमण द्वारा संतानों को माता–पिता के सभी लक्षण निश्चित रूप से प्राप्त होंगे ही। कभी–कभी सहयोग बस में अंतर भी हो सकता है।

गुणसूत्र हमें जन्म के समय मिले वह हमारे प्रत्येक अंग में व्याप्त हैं और वह हमारे शुक्र कोष्ठ एवं अंड कोष्ठ में भी है जो हमारी संतानों को भी मिलते हैं। इसी प्रकार हमारी संताने भी इन्हें अपनी संतानों को देती है और यह क्रम चलता रहता है। प्रत्येक जीव की यह विशेषता है कि वह अपने से ही मिलता–जुलता शिशु (जीव) पैदा करने की क्षमता रखता है। यही कारण है कि कुत्तों से कुत्ता, बिल्लियों से बिल्ली, मनुष्य से मनुष्य तथा मटर से मटर ही पैदा होते हैं। इसी आधार पर कहा जाता है समान–समान को जन्म देता है किंतु कई बार हम देखते हैं कि शिशु में माता–पिता से समानता होते हुए भी कुछ असमानताएं होती है। इससे स्पष्ट है कि संतानों में कुछ गुण माता–पिता से आते हैं तो कुछ गुण नए उत्पन्न होते हैं। माता–पिता से संतानों में गुण किस प्रकार से हस्तांतरित होते हैं तथा इनमें अपने माता–पिता से भिन्नताएं क्यों और कैसे पैदा हो जाती है, इन सभी प्रश्नों के उत्तर के लिए वैज्ञानिकों ने कई सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं इनमें से मेण्डल, लेमार्क, डार्विन के प्रमुख सिद्धांत है। वंशानुक्रमण से संबंधित मंडल के सिद्धांत का हम यहां उल्लेख करेंगे।

मंडल का सिद्धांत – मंडल के सिद्धांत से स्पष्ट ज्ञात होता है कि एक ही माता–पिता की संतान में शारीरिक और मानसिक भिन्नताएं होना संभव है। ऐसा प्रबल और गोंण वाहकाणुओं के कारण होता है। कभी–कभी जलवायु संबंधी परिवर्तनों के कारण भी वाहकाणुओं के संयोग में परिवर्तन होता है ऐसे परिवर्तन को उत्परिवर्तन की प्रक्रिया का नाम दिया है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भी काफी लोगों के व्यवहार, तौर तरीके, प्रेरणाओं, इच्छाओं एवं आकांक्षाओं में परिवर्तन हो जाते हैं। कालांतर में इसे सामाजिक संरचना में बदलाव आता है और सामाजिक परिवर्तन होते हैं। स्पष्ट है कि जैविकीय विशेषताएं सामाजिक परिवर्तन लाने में काफी योगदान देती है।

वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या में वंशानुक्रमण के सिद्धांत को गलत या अवैज्ञानिक समझा गया है। आज अनेक आदिवासी लोग ऐसे हैं जिनकी जैविकीय विशेषताओं में कोई अंतर नहीं आया है, परंतु चारों ओर की परिस्थितियों के बदले जाने से उनके सामाजिक संगठन और जीवन में काफी परिवर्तन आए हैं।

2. प्राकृतिक प्रवरण'(Natural Selection)का सिद्धांत

श्री डार्विन ने मूलरूप में 'प्राकृतिक प्रवरण'(Natural Selection)का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसे समाजशास्त्रीय रूप देने का श्रेय हरबर्ट स्पेंसर को जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक जीवित प्राणी पूर्ण रूप से प्रकृति पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में, जीवित रहने के संबंध में मनुष्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं है। इसलिए प्रकृति अपने ढंग से मृत्युदर को प्रभावित करती है। यह कैसे संभव होता है, इसी प्रश्न का उत्तर प्राकृतिक प्रवरणके सिद्धांत में मिलता है। जैसे–जैसे नए–नए वंश या पीढ़ियां उत्पन्न होती रहती है, वैसे–वैसे वंशानुसंक्रमण के तत्वों में परिवर्तन होता रहता है क्योंकि वंशानुसंक्रमण की स्थिर धारणा नहीं है। हम यह जानते हैं कि पर्यावरण का प्रभाव वंशानुसंक्रमण की प्रकृति पर भी पड़ सकता है और पड़ता भी है । वैसे भी अनेक जैवकीय तथा पर्यावरण संबंधी कारकों के कारण शारीरिक विशेषताओं को निर्धारित करने वाले वाहकाणु(Genes) एकदम परिवर्तित हो जाते हैं। अर्थात् जो वाहकाणु एक संतान में प्रबल है, वह सदैव ही प्रबल बना रहेगा, ऐसी बात नहीं है। वह दूसरी संतान में प्रबल न होकर गौण भी हो सकता है। उसी प्रकार गौण वाहकाणु दूसरी संतान में प्रबल हो सके हो सकते हैं।वाहकाणुके इस प्रकार के परिवर्तन को उत्परिवर्तन की प्रक्रिया (The Process of Mulation) कहते हैं जिसके फलस्वरुप प्राणी की शारीरिक व मानसिक विशेषताओं में परिवर्तन हो जाते हैं क्योंकि यह विशेषताएं वाहकाणुके द्वारा ही निर्धारित होती है।

स्पष्ट है कि **उत्परिवर्तन की प्रक्रिया**(The Process of Mulation) के द्वारा प्राणी की जैविकीय विशेषताओं में परिवर्तन हो सकता है। लेकिन प्रत्येक परिवर्तन पर्यावरण से अनुकूलन करने की क्षमता प्राणी को प्रदान नहीं करता है क्योंकि कुछ इस प्रकार के जैविकीय परिवर्तन भी हो सकते हैं जिससे कि प्राणी में कुछ आधारभूत दोष उत्पन्न हो जाएं। इस प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाने से प्राणी अपने को प्रकृति के साथ अनुकूलन करने में सफल नहीं कर पाता। ऐसे दोषयुक्त और दुर्बल प्राणियों पर प्रकृति अपने प्राकृतिक प्रवरण के नियम को लागू करती है और जो भी प्राणी दोषयुक्त या दुर्बल है अर्थात् जो भी प्रकृति से सफलतापूर्वक अनुकूलन नहीं कर पाता है उसे प्रकृति नष्ट करने के लिए चुन लेती है। दूसरे शब्दों में प्रकृति द्वारा ऐसे दोषयुक्तप्राणियों का निरसन(Elimination) हो जाता है। इसके विपरीत, जो प्राणी प्रकृति से अनुकूलन करने में सफल होता है उसे प्रकृति जीवित रहने के लिए

चुन लेती है और प्रकृति के द्वारा उसका विलयन (Absorption) दूसरे जीवित प्राणियों के समूह में हो जाता है अर्थात् दूसरे जीवित प्राणियों के साथ–साथ बच्चें जीवित रहते हैं।

इस प्रकार या स्पष्ट होता है कि प्राकृतिक प्रवरण के दो प्रमुख स्वरूप होते हैं– (1)निरसर(Elimination) और (2) विलयन(Absorption)। जो प्राणी प्रकृति के साथ सफलतापूर्वक अनुकूलन नहीं कर पाते उनके निरसरहो जाता है जबकि जो प्राणी प्रकृति के साथ अनुकूलन करने में सफल होते हैं उनका दूसरे जीवित पर्यावरण के साथ विलयन हो जाता है।

स्पष्ट है कि प्राकृतिक प्रवरण केवल मृत्युदर द्वारा ही कार्य करता है अर्थात् प्राकृतिक प्रवरण की प्रक्रिया में केवल मृत्युदर ही प्रभावित होती है, जन्मदर किसी भी रूप में प्रभावित नहीं होती। इसका कारण भी स्पष्ट है और वह यह कि अनुकूलन की प्रक्रिया प्रमुख रूप से जन्म के बाद ही शुरू होती है। इसलिए बच्चा पैदा होगा अथवा नहीं, इससे प्रकृति का कोई संबंध नहीं होता। प्राकृतिक प्रवरण की प्रक्रिया तो जन्म के बाद ही आरंभ होती है। जन्म के बाद यदि कुछ जैविकीय दोषों के कारण प्राणी प्रकृति से अनुकूलन करने में असफल है तो प्रकृति उसे मार डालने के लिए चुन लेती है। यही प्रकृति का चुनाव या प्रवरण है।

3. सावयवी उद्विकास का सिद्धान्त (Theory ofBiological Evolution)

डद्विकासवादी दृष्टिकोण परिवर्तन की प्रक्रिया और प्रतिमानों के विश्लेषण के लिए एक महत्वपूर्ण अवधारणात्मक यंत्र है। वर्तमान में आधुनिकीकरण के ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन में यह दृष्टिकोण एक वरदान साबित हुआ है। आइजनस्टैड समाज में परिवर्तन की व्यवस्थित व्याख्या के लिए, समाज के एक प्रकार के स्वरूप के दूसरे प्रकार के स्वरूप में परिवर्तन को जानने के लिए तथा परिवर्तन के सभी समाजों में सामान्य चरणों को ज्ञात करने के लिए उद्विकासीय दृष्टिकोण का प्रयोग अति आवश्यक मानते हैं। जब कोई समाज सरल अवस्था से जटिल अवस्था की ओर परिवर्तित होता है तो उद्विकासीय दृष्टिकोण उसमें आने वाली परिवर्तन की प्रक्रियाओं जैसे विभेदीकरण, विशेषीकरण एवं एकीकरण को स्पष्ट करने में भी सहायक है। उद्विकासीय दृष्टिकोण ने मानव और समाज का एक निश्चित प्रारूप भी प्रदान किया है। जिसके पीछे सावयवी उद्विकास और संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक की दार्शनिक अवधारणाएं छिपी है, प्राथमिक रूप

से यह एक ऐसा उपागम है जिसके आधार पर हम विभिन्न समाजों में घटित होने वाले सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन कर सकते हैं।

समाजशास्त्र में उद्विकास की अवधारणा प्राणीशास्त्र से ग्रहण की गई है। डार्विन ने जीवों की उत्पत्ति के बारे में अपना उद्विकासीय सिद्धांत प्रतिपादित किया और कहा कि जीवों का उद्विकास सरलता से जटिलता तथा समानता से भिन्नता की ओर हुआ है। स्पेंसर वह मार्गन जैसे समाज वैज्ञानिकों ने उद्विकासीय विचार को समाज व संस्कृति पर भी लागू किया और कहा कि इसका भी जीवों की भांति उद्विकास हुआ है।

वैज्ञानिक अर्थ में उद्विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक सीधी सादी सरल वस्तु या सावयव क्रमिक परिवर्तन के कारण जटिल रूप धारण कर लेता है। उदाहरण के लिए, एक बीज का अंकुरित होकर वृक्ष का रूप धारण कर लेना या एक कोष्ठ का मानव शिशु के रूप में परिवर्तित हो जाना उद्विकास है। इस प्रकार जब किसी वस्तु के गुण, ढ़ाचें व कार्य में एक निश्चित दिशा की ओर निरंतर परिवर्तन हो तो उसे हम उद्विकास कहेंगें।

उद्विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इस स्पेंसर लिखते हैं ''उद्विकास कुछ तत्वों का एकीकरण तथा उससे संबंधित वह गति है जिसके दौरान कोई तत्व एक अनिश्चित तथा असम्बद्ध समानता से निश्चित और सम्बद्ध भिन्नता में बदल जाता है।'' इस प्रकार उद्विकास में किसी वस्तु में समता से विषमता की ओर होता है, इससे वस्तु की जटिलता में वृद्धि होती है।

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट उद्विकास किसी एक विशेष दिशा में होने वाला परिवर्तन है तो वस्तु की आंतरिक शक्तियों के परिणाम स्वरुप पैदा होता है तथा इससे वस्तु की जटिलता में वृद्धि होती है।

जैविकीय उद्विकास का सिद्धांत – स्पेन्सर ने जीव जगत पर अपने उद्विकासीय सिद्धांत को लागू किया और यह बताया कि सभी जीवों को अपने वर्तमान स्वरूप को ग्रहण करने में असंख्य वर्ष लगे हैं। स्पेन्सर का मध्य की आरंभ है वन पर वनस्पति और प्राणियों के बीच कोई अंतर नहीं था, किंतु विकास के फलस्वरुप जीव जगत और वनस्पति जगत एक दूसरे से अलग–अलग हो गए। विकास के प्रारंभ में जो जीव था उसके अंदर जीवन के अलावा न तो कोई रूप था और न ही कोई आकार। धीरे–धीरे उसमें रूप उत्पन्न हुआ और उसी के विकसित रूप में आज हम विभिन्न प्रकार के जीव और वनस्पतियों को देख रहे हैं।

प्राणीशास्त्रीय स्पेन्सर के संदर्भ में इस स्पेन्सर ने 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' का सिद्धांत दिया। इस सिद्धांत के अनुसार, प्रकृति में सभी जीव अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत हैं। एक जीव को अन्य जीवों से एवं प्रकृ ति से भी अपनी रक्षा करनी होती है। इसके लिए जीवो को अपने भौतिक पर्यावरण से अनुकूलन करना पड़ता है। जो जीव पर्यावरण के साथ अपना अनुकूलन नहीं कर पाता उसका अस्तित्व मिट जाता है। प्रकृति भी ऐसे ही जीवों का जीवित रहने के लिए चयन करती है जो पर्यावरण से सफलतापूर्वक अनुकूलन कर लेते हैं और अनुकूलन नहीं करने वाले को समाप्त कर देती है। इस प्रकार से स्पेन्सर ने 'प्राकृतिक प्रवरण का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इस प्रकार से जीवित रहने के लिए प्रत्येक जीव अपने को पर्यावरण के अनुकूल बनाता रहता है और जो योग होता है वही बचा रहता है।

स्पेन्सर ने भौतिक उद्विकास और विशेष रूप से जैविकीय उद्विकास के सिद्धांत को समाज पर भी लागू किया और सामाजिक उद्विकास का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी **(**Principles of Sociology) में सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत को व्यापक अभिव्यक्ति प्रदान की। इनका मत है कि समाज का भी जैविक विकास की भांति सरलता से जटिलता की ओर, अनिश्चितता से निश्चितता की ओर तथा समानता से भिन्नता की ओर विकास हुआ है।

11.5 अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रक्रिया (Process of Struggle for Existence)–

जीवित रहने के लिए प्रत्येक प्राणी को सदैव ही संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष की प्रक्रिया के तीन महत्वपूर्ण स्वरूप हो सकते हैं– (1) प्राणी का प्रकृति के साथ संघर्ष,(2) मनुष्य तथा अन्य जीवित प्राणियों के बीच संघर्ष, और (3) एक ही प्रकार के जीवित प्राणियों के बीच आपस में संघर्ष। कुछ उदाहरणों के द्वारा इन तीनों प्रकार के संघर्षों को अति सरल रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

सबसे पहले जीवित प्राणी का प्रकृति के साथ संघर्ष लिया जा सकता है। यदि किसी जीवित प्राणी में कोई जैविकीय दोष है तो वह प्रकृति के साथ सरलतापूर्वक अनुकूलन नहीं कर पाएगा। इसलिए प्राकृतिक नियम से ही उसकी मृत्यु होगी। उदाहरण के लिए, यदि एक पक्षी के पंख कमजोर या छोटे हैं तो वह सरलता से

उड़ नहीं सकेगा और उस हालत में उसके लिए जीवित रहना संभव होगा। एक व्यक्ति अपनी किसी शारीरिक दुर्बलता के कारण यदि सर्दी से अपना अनुकूलन करने में असमर्थ है तो यह मानी हुई बात है कि उसे सर्दी लग जाएगी जिससे कि उसे निमोनिया हो सकता है और उसकी मृत्यु हो सकती है। उसी प्रकार गर्म जलवायु में एक सांप जीवित नहीं रह सकता क्योंकि गर्मी से अनुकूलन करने में वह असमर्थ है। स्मरण है कि गर्मी के मौसम में न तो ही सबको लगती है और ना ही सर्दी में सबको निमोनिया ही होता है। यह तो शारीरिक दोषों पर ही निर्भर है। उसी प्रकार देखा गया है कि बहुत गर्मी या बहुत सर्दी पड़ने पर छोटे बच्चे और वृद्ध अधिक मरते हैं। यद्यपि यह स्मरणीय है कि सब बच्चे या वृद्ध नहीं मरते अर्थात् कुछ मरते हैं तो कुछ जिंदा भी रहते हैं। प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धांत के अनुसार मरते वहीं हैं जोकि जैविकीय दोषों के कारण प्रकृति के साथ अनुकूलन करने में असफल रहते हैं और जीवित वहीं रहते हैं जोकि सफलतापूर्वक अनुकूलन कर लेते हैं यही इस संबंध में प्राकृतिक प्रवरण का सिद्धांत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवित प्राणी का सदैव प्रकृति के साथ संघर्ष होता रहता है।

उसी प्रकार मनुष्य तथा अन्य जीवित प्राणियों के बीच जीवित रहने के लिए संघर्ष होता रहता है। उदाहरण के लिए, यदि जंगल में रहने वाली जनजाति का कोई सदस्य आंखों से कम देखता है तो निश्चित ही उसे किसी दिन किसी जंगली जानवर के पेट में जाना पड़ेगा। यह तो बहुत दूर की बात है यदि हम अपने जीवन को ही ले तो स्पष्ट होगा कि रोग के बीजाणुओं से अपनी रक्षा करने के लिए हम डिटॉल, सेवलॉन,नीको साबुन आदि कितनीही चीजों का प्रयोग करते रहते हैं। इन सबका प्रमुख उद्देश्य यह है कि कहीं ये बिजाणु हम पर विजय न पा जाएं जिससे कि हमारी मृत्यु हो जाए। उसी प्रकार मच्छरों से अपनी रक्षा करने के लिए हम क्या नहीं करते हैं। इससे जनता की रक्षा करने के लिए सरकार एक पृथक विभाग भी खुला हुआ है जिस पर कि करोड़ों रुपया व्यय हो रहा है। मच्छर के साथ मनुष्य के इस संघर्ष में कभी–कभी मच्छर सफल होता है अर्थात् व्यक्ति का खून चूसकर मच्छर जीवित रहता है। उसके काटने से व्यक्ति को मलेरिया होता है और हो सकता है कि इसके फलस्वरूप व्यक्ति की मृत्यु हो जाए। यही मनुष्य और अन्य जीवित प्राणियों के बीच अस्तित्व के लिए संघर्ष की व्याख्या है।

उसी प्रकार एक ही प्रकार के जीवित प्राणियों के बीच आपस में संघर्ष होता रहता है। उदाहरण के लिए, मनुष्यऔर मनुष्य में, पशु और पशु में, पक्षी और पक्षी में जीवित रहने के लिए संघर्ष चलता रहता है। मानव समाज में चलने वाली प्रतियोगिता इसी संघर्ष का अति उत्तम उदाहरण है।

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर ही उक्त सिद्धांत के समर्थक यह निष्कर्ष निकालते हैं कि **'केवल सबसे योग्य प्राणी ही जीवित रह सकते हैं**, इसका तात्पर्य यह है कि केवल वही व्यक्ति जीवित रहते हैं या रहेंगे जो की जैविकीय दृष्टिकोण से पूर्ण रूप से योग्य है क्योंकि ऐसे व्यक्ति ही जीवित रहने के संघर्ष में विजय हो सकते हैं: दूसरे शब्दों में ऐसे व्यक्ति प्राकृतिक प्रवरण के प्रभाव से अपनी रक्षा में सफल हो सकते हैं।

आलोचना(Criticism) – आज अधिकतर समाजशास्त्री प्राकृतिक प्रवरण या अस्तित्व के लिए संघर्ष के सिद्धांत से सहमत नहीं है। वे इसकी कड़ी आलोचना करते हैं–

(1) यह कहना गलत है किप्रत्येक जीवित प्राणी अपने अस्तित्व के लिए एक–दूसरे से संघर्ष करता रहता है। कोई भी समाज चाहे वह पशु–समाज हो या मानव–समाज केवल संघर्ष के आधार पर ही नहीं टिक सकता। समाज में, जैसा कि हम जानते हैं सहयोग और संघर्ष दोनों ही पाए जाते हैं। इन दोनों में भी पारस्परिक सहयोग प्रमुख है अर्थात् सहयोग ही वह नीव है जिस पर सामाजिक जीवन टिका होता है।

(2) पौधों तथा पशुओं का अध्ययन करके भी यह मालूम हुआ है कि उनमें एक–दूसरे को मारने की इच्छा नहीं पाई जाती। वास्तव में वह एक–दूसरे के सहयोग के आधार पर ही पनपते हैं।

(3) डॉ. बम्पस के अनुसंधान के अनुसार केवल सबसे योग्य प्राणी ही जीवित रहते हैं, यह कहना गलत है। वास्तव में यह भी देखा जाता है की सबसे अधिक योग्य और अयोग्य प्राणियों का ही निर्माण होता है अर्थात् इस प्रकार के प्राणियों को भी प्रकृति मार डालने के लिए चुन लेती है और इस प्रकार बीच के दर्जे के प्राणी ही जीवित रहने में सफल होते हैं।

11.6 सामाजिक परिवर्तन के जनांकिकीय सिद्वान्त(Demographical theories of social change)

जनसंख्या, सिद्धांत और संसाधन के मध्य संबंधों की व्याख्या करता है। इसके अंतर्गत किसी क्षेत्र विशेष की जनसंख्या बढ़ने पर उस क्षेत्र के संसाधनों पर पड़ने वाले प्रभावों के कारण उस क्षेत्र विशेष के सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि प्रभावों को देखने को मिलता है। जैसे– आपदाएं, गरीबी, बेरोजगारी एवं महामारियां, युद्ध आदि। विभिन्न विद्वानों द्वारा जनसंख्या एवं संसाधन के मध्य संबंधों पर प्राचीन समय से भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार दिए गए हैं। इतिहास में प्लाटों के युग से

ही जनसंख्या संसाधन संबंध पर विचार प्रारंभ हो गया था। प्लेटो एक नियंत्रणवादी विचारक थे और जनसंख्या की सुनिश्चित सीमा के संबंध में स्वयं के विचार प्रस्तुत किए। चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस के अनुसार जनसंख्या और पर्यावरण के बीच संतुलन आवश्यक है। वह अनियंत्रित गति से जनसंख्या वृद्धि के पक्ष में नहीं थे। जनसंख्या एवं संसाधन के मध्य संबंधों पर व्यवस्थित विचार थॉमस रॉबर्ट माल्थस ने दिया उसके पश्चात अन्य कई विद्वानों ने जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के उपायों को खोजने का प्रयास किया। जनसंख्या सिद्धांतों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. प्राकृतिक आधार पर आधारित सिद्धांत।
2. सामाजिक आधार पर आधारित सिद्धांत।

1. **प्राकृतिक आधार पर आधारित सिद्धांत (Theory Based on Nature)**–इस सिद्धांत के अनुसार अनियंत्रित रूप से बढ़ाने वाली जनसंख्या को प्रकृति स्वयं प्राकृतिक आपदाओं के माध्यम से नियंत्रित करती है और जनसंख्या व संसाधन के बीच संतुलन स्थापित करती है। यह सिद्धांत सर्वप्रथम माल्थस द्वारा प्रतिपादित किया गया। इसके अतिरिक्त थॉमस सैंडलर, थॉमस डब्बले एवं हरबर्ट स्पेंसर ने भी प्राकृतिक आधार पर जनसंख्या सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।
2. **सामाजिक आधार पर आधारित सिद्धांत (Theory Based on Social)**– सामाजिक नियमों के आधार पर हेनरी जॉर्ज, आर्सेन ड्यूमेन्ट, डेविड रिकार्डो एवं कार्ल मार्क्स ने सामाजिक नियमों के आधार पर जनसंख्या सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। सामाजिक आधार पर आधारित सिद्धांत व्यक्त करता है, नियंत्रित रूप से बढ़ाने वाली जनसंख्या को सामाजिक सुधारों (जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार इत्यादि) के फलस्वरूप इस प्रकार से परिवर्तित की जा सकती है, जिससे जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता ही नहीं होगी।

11.7 थॉमस रॉबर्ट माल्थस सिद्धांत (Theory of Thomas Robert Malthus)–

जनांकिकीय के सबसे प्रसिद्ध सिद्धांतों में रॉबर्ट माल्थस का जनसंख्या वृद्धि सिद्धांत महत्वपूर्ण है। जिसकी सामाजिक परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका है। माल्थस का जनसंख्या वृद्धि का सिद्धांत, जिसे उनके जनसंख्या

विषयक निबंध एस्से ऑन पापुलेशन Essay on Population में स्पष्ट किया गया है जो एक प्रकार से निराशावादी सिद्धांत था। उनके अनुसार, मानव समाज में खाद्य–पदार्थों के उत्पादन की तुलना में जनसंख्या वृद्धि तीव्रगति से होती है। जनसंख्या में वृद्धि ज्यामितिक क्रम 2,4,8,16,32,64 आदि में होती है। इसकी अपेक्षा खाद्य–सामग्री में वृद्धि अंकगणितीय 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 आदि क्रम में होती है। फलस्वरुप कुछ समय पश्चात् ऐसा समय आता है जब जनसंख्या के लिए खाद्य–पदार्थों की कमी हो जाती है।

जनसंख्या वृद्धि के माल्थस के सिद्धांत को उनके जनसंख्या पर निबंधमें परिभाषित किया गया था जिसमें निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था उन्होंने दावा किया कि मानव आबादी, मानव निर्वाह संसाधनों (जैसे–भोजन, कपड़े और अन्य कृषिआधारित उत्पादों) की बढ़ती दर की तुलना में प्रायः तेजी से बढ़ने की प्रवृत्ति रखती है। इसका अर्थ यह है कि मानवता को सदैव गरीबी में रहना होगा क्योंकि कृषि आधारित उत्पादों की वृद्धि सदैव जनसंख्या वृद्धि से कम होती है। जब जनसंख्या बढ़ती है या घटती है तो समाज में अनेक परिवर्तन घटित होते हैं।

माल्थस के अनुसार, व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से जीवित रहने के लिए केवल दो साधनों की आवश्यकता होती है, अर्थात भोजन एवं लिंग। दूसरा साधन जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण है। उन्होंने कहा कि दूसरी आवश्यकता को पूरा करने का उत्साह व्यक्ति को कम आयु में विवाह करने के लिए प्रेरित करता है और इसके परिणामस्वरुप जन्मों की संख्या में इतनी वृद्धि होती है कि यदि आवश्यक जाचों को लागू नहीं किया गया तो जनसंख्या प्रत्येक 25 वर्ष में दोगुनी हो जाएगी।

जनसंख्या के माल्थुसियन सिद्धांत की मान्यताएं(Assumptions of Malthusian Theory of Population)–

जनसंख्या का माल्थुसियन सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1) जनसंख्या एक ज्यामितीय प्रगति में बढ़ती है (Population Grow in a Geometric Progression)– व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से जीवित रहने के लिए केवल दो साधनों की आवश्यकता होती है, अर्थात् भजन और सेक्स। दूसरा साधन जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण है। उन्होंने कहा है की दूसरी आवश्यकता को पूरा करने का जुनून व्यक्ति को कम आयु में विवाह करने के लिए प्रेरित करता है और इसके परिणामस्वरुप जन्म की संख्या में वृद्धि इतनी वृद्धि होगी कि यदि आवश्यक

जांचों को लागू नहीं किया गया तो जनसंख्या प्रत्येक 25 साल में दोगुनी हो जाएगी। जनसंख्या एक ज्यामितियप्रगति (जैसे, 2, 4, 8, 16, 32) में बढ़ती है।

2) अंकगणितीय प्रगति में खाद्य आपूर्ति में वृद्धि (food Supply Increases in Arithmetic Progression) – माल्थस का मत था कि जनसंख्या के जीवित रहने के केवल सीमित साधन है एवं खाद्य उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप नहीं हो सकती है। उन्होंने वकालत कि खाद्य आपूर्ति अंकगणितीय प्रगति (जैसे 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8) में बढ़ जाती है।

3) जनसंख्या खाद्य आपूर्ति से आगे निकल जाती है (Population tends to Outrun Food Supply) – माल्थस ने पहचाना कि जनसंख्या में वृद्धि हमेशा खाद्य आपूर्ति में वृद्धि से अधिक होती है क्योंकि जनसंख्या ज्यामितीय प्रकृति में बढ़ती है और खाद्य आपूर्ति अंकगणितीय प्रगति में बढ़ती है।

4) अधिक जनसंख्या को निवारण और सकारात्मक जांचों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है **(Over- population can be controlled by Preventive and Positive Checks)**– जैसा कि माल्थस द्वारा पहचाना गया कि जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए दो प्रकार की जांचों का उपयोग किया जाता है– सकारात्मक जांच और निवारण जांच। ये दोनों जांच एक दूसरे के विरोधाभासी है और माल्थस ने पहले वाले जांचों को बाद के जांचों की तुलना में अधिक प्रभावी माना है।

जैसा कि माल्थस द्वारा पहचाना गया है की जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए दो प्रकार की जांचों का उपयोग किया जाता है–

1. **सकारात्मक जांच (Positive Checks)** –इनमें अनिवार्य रूप से तीन पर तीन प्रमुख कारक शामिल है– युद्ध, अकाल एवं बीमारी। माल्थस ने समर्थन किया कि प्रकृति द्वारा जनसंख्या वृद्धि के लिए 'सकारात्मक जांच' आवश्यक है। उनके अनुसार, प्रकृति हीअकाल एवं बीमारियों के रूप में खाद्य आपूर्ति तथा जनसंख्या वृद्धि के मध्य संतुलन बनाए रखती है। यह मृत्यु दर को प्रभावित करके जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए होते हैं।
2. **निवारक या नकारात्मक जांच (Preventive or Negative Checks)**– इनमें अनिवार्य रुप से देर से विवाह, नैतिक संयम, शुद्वता, जन्म नियन्त्रण तथा ब्रह्मयर्च शामिल हैं। हालांकि, मनुष्य इन जांचों द्वारा स्वेच्छा से अपनी जनसंख्या की वृद्धि को कम करने की सीमित क्षमता के साथ उपलब्ध होते हैं ये प्रजनन दर को प्रभावित करके जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रिन करने के

लिए होते है। ये दोनों जांच एक–दूसरे के विरोधाभासी होते है तथा माल्थस ने बाद के जांचों की तुलना में पूर्व जांच को अधिक प्रभावी माना।

11.8 जनसंख्या के माल्थुसियन सिद्धांत की आलोचना (Criticisms of the Malthusian Theory of Population)

माल्थुसियन सिद्धांत की कुछ आलोचना इस प्रकार है–

1. **सिद्धांत का गणितीय रूप गलत है–** माल्थस के सिद्धांत द्वारा दी गई गणितीय अभिव्यक्ति यह है कि पिछले 25 वर्षों में अंकगणितीय प्रगति में भोजन की आपूर्ति बढ़ती है तथा ज्यामितिय प्रगति में जनसंख्या में वृद्धि होती है, यह अभी तक सिद्ध नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त, भोजन की आपूर्ति अंकगणितीय प्रगति पर बढ़ती है जबकि जनसंख्या वृद्धि 25 वर्षों में जनसंख्या को दोगुना करने के लिए यह एक ज्यामितीय प्रगति में नहीं है। हालांकि, यह आलोचना इस तर्क से परे है क्योंकि माल्थस ने अपने निबंध के पहले संस्करण में अपने सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए अपने गणितीय सूत्रीकरण का उपयोग किया तथा अपने दूसरे संस्करण में इसे हटा दिया।

2. **नए क्षेत्र के खुलने का अनुमान लगाने में विफल –** माल्थस की दृष्टि संकुचित थी और वह विशेष रूप से इंग्लैंड की मूल परिस्थितियों से प्रभावित थे। उन्होंने ऑस्ट्रेलिया, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा अर्जेंटीना की नए क्षेत्रोंके खुलने की आशा नहीं की थी, जिसमें अछूती भूमि की व्यापक खेती ने भोजन के विस्तारित निर्माण को जन्म दिया। परिणामस्वरुप, यूरोप महाद्वीप में इंग्लैंड जैसे देशों को उचित मूल्य के भोजन की भरपूर आपूर्ति के साथ सुसज्जित किया गया था। इसे परिवहन के साधनोंमें तेजी से वृद्धि के साथ व्यावहारिक बना दिया गया है, एक ऐसा पहलू जिसे माल्थस ने लगभग अनदेखा कर दिया था। आज, किसी भी देश को अपनी बढ़ती जनसंख्या के लिए पर्याप्त आपूर्ति नहीं होने पर भी दुख एवं भुखमरी के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

3. **समय की अवधि के लिए एक स्थिर आर्थिक नियम लागू करना** – माल्थवादियों की मान्यता है कि अंकगणितीय प्रगति में भोजन की आपूर्ति में वृद्धि होगी, मुख्य रूप से एक समय में यह पूरी तरह से स्थिर वित्तीय

विनियमन पर आधारित है, जो कम प्रतिफल का नियम है। माल्थस एक समय सीमा में वैज्ञानिक ज्ञान व कृषि नवाचारों में असाधारण उछाल की आशा नहीं कर सकता है, जो घटते प्रतिफल के नियम पर टिका हुआ है इसलिए अंकगणितीय प्रगति की तुलना में भोजन की आपूर्ति और भी तेज हो गई है माल्थस न केवल उन्नत देशों में बल्कि भारत जैसे विकासशील देशों में भी 'हरित क्रांति' के साथ झूठा सिद्ध हुआ है।

4. **जनसंख्या में जनशक्ति पहलू की उपेक्षा करना–** माल्थस के विचार की मुख्य कमजोरीयों में से यहथी कि उन्होंने जनसंख्या वृद्धि के मानवीय पहलू के अनदेखी की। वह निराशावादी थे तथा जनसंख्या वृद्धि से डरते थे।**कैनन के अनुसार** उन्होंने इस तथ्य की अनदेखी की,''एक बच्चा न केवल मुंह एवं पेट के साथ, बल्कि हाथों की जोड़ी से भी संसार में आता है।'' इसका अर्थ यह है की जनसंख्या वृद्धि को जनशक्ति बढ़ाने की एक विधि का उपयोग किया जा सकता है जिसमें न केवल कृषि बल्कि औद्योगिक उत्पादन का विस्तार करने की प्रवृत्ति है, जो आय एवं धन की उचित वितरण के माध्यम से देश को समृद्ध बनाती है। जैसा कि सेलिगमैन ने ठीक ही कहा है,''जनसंख्या की समस्या न केवल जनसंख्या के आकार की है, बल्कि उत्पादन बढ़ाने के लिए कुशल उत्पादन की समस्या भी है।''

5. **जनसंख्या में वृद्धि से मृत्यु दर में गिरावट का परिणाम–** माल्थस का सिद्धांत पक्षपातपूर्ण है। इसके अनुसार जनसंख्या में वृद्धि जन्म दर में वृद्धि के कारण हुई है, जबकि वैश्विक जनसंख्या में मृत्यु दर में कमी के कारण उल्लेखनीय रूप से अधिक वृद्धि हुई है माल्थस ने चिकित्सा विज्ञान में उसे उल्लेखनीय प्रकृति का अनुमान नहीं लगाया था जो घातक बीमारियों को नियंत्रित करेगी तथा मानव जीवन को लंबा खींच देगी। यह भारत जैसे अविकसित देशों में विशेष रूप से सत्य है जहां माल्थस के सिद्धांत को कार्य करना चाहिए।

6. **निवारक जांच नैतिक संयम से संबंधित नहीं है –** माल्थस अनिवार्य रूप से एक धार्मिक व्यक्ति थे जिन्होंने जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए ब्रह्मचर्य, देर से विवाह तथा नैतिक संयम पर जोर दिया। परंतु यह सोच भी नहीं सकते थे कि लोग गर्भनिरोधक गोलियों तथा परिवार नियोजन के अन्य गर्भनिरोधकों का आविष्कार करेंगे। यह शायद इसलिए है क्योंकि वह यौन इच्छा तथा बच्चे पैदा करने की इच्छा के मध्य का अंतर नहीं जानते है।

लोगों की यौन इच्छाएं होती है परंतु वह अब बच्चे पैदा नहीं करना चाहते हैं। इसलिए केवल नैतिक संयम जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने में सहायता नहीं कर सकता जैसा कि माल्थस ने सिफारिश की थी, कि परिवार नियोजन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना की एक निवारक जांच।

7. **अधिक जनसंख्या के कारण सकारात्मक जांचे नहीं–** माल्थस की धार्मिक एवं निराशावादी शिक्षा ने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि अधिक जनसंख्या ग्रह पर एक भारी भार है जिसे भगवान ने अनिवार्य रूप से दुःख, अकाल, युद्ध, रोग, बाढ़, महामारी आदि के रूप में कम कर दिया है। परंतु ये सभी प्राकृतिक आपदाएं हैं और इनकी घटनाएं केवल अधिक जनसंख्या वाले देशों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ये जापान एवं फ्रांस जैसे घटती या स्थिर जनसंख्या वाले देशों में भी घटित होती है।

11.9 जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत (Demographic Transition Theory)

जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है।यह सिद्धांत इस बात की वकालत करता है कि जनसंख्या की वृद्धि आर्थिक विकास के संपूर्ण स्तर से संबंधित है तथा प्रत्येक समाज जनसंख्या वृद्धि से जुड़े विकास के एक सामान्य रूप का अनुसरण करता है जनसंख्या वृद्धि के तीन आवश्यक चरण निम्नलिखित है–

1) प्रथम चरण – इस स्तर पर, राष्ट्र अविकसित होता है तथा उच्च जन्म एवं मृत्यु दर से पहचाना जाता है जिसके परिणामस्वरुप जनसंख्या की वृद्धि दर कम होती है लोग मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर होते हैं तथा यह अविकसित राज्य में अधिक है। वे सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। इसमें केवल लघु, आसान तथा साधारण उपभोक्ता वस्तु उद्योग होते हैं। वाणिज्य, परिवहन, बैंकिंग तथा बीमा जैसी गतिविधियों को शामिल करने वाले तृतीयक क्षेत्र पिछड़े हैं। इस प्रकार के कारकों के परिणामस्वरुप व्यापक गरीबी तथा कम आय होती है। बड़े परिवार को परिवार की आय में वृद्धि करने की आवश्यकता के रूप में माना जाता है। बच्चों को माता–पिता के साथ–साथ समाज के लिए भी संसाधन के रूप में माना जाता है। समाज में उन्हें पढ़ाने की अपेक्षा नहीं की जाती है तथा इसके परिणामस्वरुप बड़े पैमाने पर

निरक्षरता फैलती है। संयुक्त परिवार प्रणाली में रहने वाले बच्चों को उनकी आयु के अनुसार रोजगार प्रदान किया जाता है। इस प्रकार 5 वर्ष का बच्चा भी घरेलू मामलों में माता–पिता की सहायता करके आय अर्जित करने वाला सदस्य बन जाता है। इसके अतिरिक्त माता–पिता मानते हैं की बड़ी संख्या में बच्चें उनके बुढ़ापे में सहारा बनते हैं। लोग जन्म निवारण उपाय का विरोध करते हैं क्योंकि वे अज्ञानी, अंधविश्वासी, अनपढ़ तथा भाग्यवादी होते हैं। इस प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक कारक देश में अधिक जन्म दर के लिए उत्तरदायी होते हैं।

2) द्वितीय चरण – द्वितीय चरण में अर्थव्यवस्था में वृद्धि होने लगती है। कृषि तथा औद्योगिक उत्पादकता में वृद्धि होती है, तथा परिवहन और अवसंरचना में सुधार होता है। श्रम शक्ति अधिक गतिशील होती है तथा शिक्षा का विकास होता है। लोगों का जीवन स्तर ऊंचा होता है। लोगों को अधिक तथा बेहतर खाद्य उत्पादन प्राप्त होता है। स्वास्थ्य देखभाल तथा चिकित्सा सुविधाओं को उन्नत किया जाता है। लोग आधुनिक औषधीयों का प्रयोग करते हैं। यह सभी कारक मृत्यु दर में योगदान करते हैं। हालांकि जन्म दर लगभग स्थिर बनी रहती है। लोगों को अपने बच्चों की संख्या को कम करने की कोई इच्छा नहीं होती है क्योंकि जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था में वृद्धि होती है, वैसे ही कार्य की संभावनाएं भी होती है तथा बच्चे परिवार की आय में अधिक योगदान दे सकते हैं। लोगों के इस जीवन स्तर तथा पोषण संबंधी आदतों में प्रगति के कारण जीवन प्रत्याशा में वृद्धि होती है। परिवार नियोजन के प्रति धार्मिक हठधर्मिता तथा सामाजिक वर्जनाओं के कारण, लोग अपने परिवार के आकार को सीमित करने के लिए बहुत कम या कोई प्रयास नहीं करते हैं। पुरानी सामाजिक संस्थाओं, विश्वासों एवं रीति–रिवाजों तथा प्रथाओं को तोड़ना आर्थिक विकास के सबसे कठिन पहलुओं में से एक है। इन चरों के परिणामस्वरुप जन्म दर अपने पूर्व उच्च स्तर पर बनी रहती है।

3) तृतीय चरण –इस स्तर पर, प्रजनन दर घट जाती है तथा घटकर मृत्यु दर के बराबर हो जाती है, जिससे जनसंख्या वृद्धि दर कम हो जाती है। विकास में वृद्धि के साथ लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि होती है तथा वह निर्वाह स्तर से अधिक आय अर्जित करते हैं। तकनीकी क्रांतियों के माध्यम से, प्रमुख विकास क्षेत्रों का विस्तार होता है तथा अन्य क्षेत्रों के उत्पादन में

वृद्धि होती है। शिक्षा जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित तथा व्याप्त करती है। ज्ञान का मार्ग लोकप्रिय शिक्षा द्वारा प्रशस्त किया जाता है, जो लोकप्रिय ज्ञान की ओर ले जाता है। यह आत्म–नियंत्रण, समझदारी से सोचने की क्षमता तथा भविष्य को देखने की क्षमता विकसित करता है। लोग स्वायत्त मानसिकता विकसित करने तथा संयुक्त परिवार से अलग होने के पक्ष में प्राचीन प्रथाओं, हठधर्मिता तथा मान्यताओं का त्याग करते हैं।

देर से विवाह करना महिलाओं एवं पुरुषों दोनों द्वारा पसंद किया जाता है। पारिवारिक आय के पूरक के लिए अधिक बच्चें पैदा करने की इच्छा कम हो रही है। परिवार नियोजन उपकरणों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त बढ़ती आय के स्तर तथा परिणामी सामाजिक एवं आर्थिक गतिशीलता के परिणामस्वरूपबढ़ती विशेषज्ञता के कारण बड़ी संख्या में बच्चें पैदा करना कठिन तथा महंगा हो जाता है। यह सब जन्म दर को कम करता है, जो पहले से ही कम मृत्यु दर के साथ मिलकर जनसंख्या वृद्धि में कमी का परिणाम है। दुनिया के उन्नत देश इस प्रक्रिया के अंतिम चरण में है, तथा उनकी जनसंख्या धीरे–धीरे बढ़ रही है। यह ''जनसंख्या विस्फोट'' तब होता है जब रोग नियंत्रण, बेहतर पोषण तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नत तकनीकों के माध्यम से मृत्यु दर अपेक्षाकृत तीव्रता से कम होती है। परंतु, समृद्धि तथा दीर्घायु की नई स्थिति के अनुकूल होने के लिए समाज को परिवर्तन के अनुकूल होने तथा अपने प्रजनन व्यवहार (जो गरीबी तथा उच्च मृत्यु दर के समय में होता है) को संशोधित करने में अधिक समय लगता है। इस प्रकार का संक्रमण पश्चिमी यूरोप में 19वीं सदी के अंत तथा 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ। लगभग सभी कम विकसित देश में यह प्रवृत्ति है, जो निरंतर घटती मृत्यु दर को बनाए रखते हुए प्रजनन दर को कम करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। भारत में भी जनसांख्यिकीय संक्रमण हालांकि पूर्ण नहीं है क्योंकि मृत्यु दर में कमी हुई है परंतु जन्म दर उस स्तर तक कम नहीं हुआ है।

11.10 मार्क्स का जनसंख्या सिद्धांत (Marx Theory of Population)

मार्क्स को वैज्ञानिक समाजवाद का जनक कहा जाता है।उन्होंने स्वयं के विचार प्रसिद्ध कृर्ति **'दास कैपिटल'** में साम्यवादी अर्थव्यवस्था के विवेचन में

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के दोषों के साथ दिया। मार्क्सने के जनसंख्या सिद्धांत को पूर्णतःअस्वीकार करते हुए कहा, यह सिद्धांत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर आधारित है। अतः जनसंख्या वृद्धि एवं जनसंख्या संबंधी समस्याओं को कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को माना।मार्क्सके अनुसार, पूंजीवाद में मुख्यतः दो वर्ग होते हैं–पूंजीपति वर्ग एवं श्रमिक वर्ग।

1. **पूंजीपति वर्ग (Capitalist Class)**–पूंजीपति वर्ग (बुजुर्ग वर्ग) उद्योगों एवं कारखाने में धन लगता है और उसका उद्देश्य केवल अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना होता है। इस प्रकार इस वर्ग का उद्‌देश्य धन संचय करना होता है।
2. **श्रमिक वर्ग (Labour Class)**–श्रमिक वर्ग (सर्वहारा वर्ग) गरीब वर्ग होते हैं। वह केवल श्रम करता है और इसका उद्देश्य मात्र श्रम संचय करना होता है। यह वर्ग श्रम संचय के लिए अधिक जनसंख्या वृद्धि करता है जो अतिरिक्त श्रमिक के रूप में उपलब्ध हो जाती है। इस स्थिति में श्रम की मांग की अपेक्षा श्रम की उपलब्धता अधिक मौजूद होती है। इस प्रकार, अतिरिक्त जनसंख्या अर्द्ध–बेरोजगार तथा बेरोजगार हो जाती है। अतः श्रम संचय की क्रिया ही अनंतः गरीबों की समस्या उत्पन्न करती है। श्रर्म के मूल्य में भी कमी आती है, क्योंकि अतिरिक्त श्रमिकों की उपलब्धता होती है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियां पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निर्धन जनसंख्या में देखी जाती है। जिसका समाधान 'साम्यवाद' व्यवस्था में ही संभव है।मार्क्सका मानना है, बेरोजगारी एवं अर्द्ध–रोजगारी की समस्या पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के परिणाम है।

11.11 सार संक्षेप

मार्क्स के अनुसार साम्यवाद की स्थापना से जनसंख्या संबंधी समस्या समाप्त हो जाएगी क्योंकि इसमें समाज के प्रत्येक समुदाय को संसाधनों का वितरण और पूंजी का लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि पूंजीवाद के अंतर्गत ही समस्या का रूप है।मार्क्स ने अपने जनसंख्या संबंधी जो भी विचार दिए उसमें पूंजीपति वर्ग, श्रमिक वर्ग, श्रम की उपलब्धता, श्रम की मांग, बेरोजगारी, गरीबी को आधार बनाया।मार्क्सके अनुसार, जनसंख्या में कमी तभी संभव है जब जीवन स्तर में सुधार होता है और निम्न स्तर के श्रमिकों की तुलना में उच्च स्तर के श्रमिकों में जन्म दर कम होती है। अतः साम्यवाद के अंतर्गत

श्रमिकों के जीवन स्तर की गुणवत्ता बनी रहती है जिससे जनसंख्या वृद्धि की समस्या उत्पन्न नहीं होती।

11.12 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय सिद्वान्त का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. सामाजिक परिवर्तन के जनांकिकीय सिद्वान्त की व्याख्या कीजिए।
3. जनसंख्या के माल्थुसियन सिद्धांत की आलोचना की विवेचना कीजिए।
4. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चिल्डे, वी. गॉर्डोन. (1942). व्हाट हप्पेनेड इन हिस्ट्री. मिड्डलसेक्सः पेंगुइन बुक्स
कोम्टे, अगस्ते. (1974). द पॉजिटिव फिलोसोफी. न्यूयॉर्कः एमस प्रेस
दुर्खेइम, एमिले. 1947 (1893).द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस
मर्टन, आर. के. 1968 (1948).सोशल थ्योरी एंड सोशल स्ट्रक्चर. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस
डॉ. जी. आर. मदन (2007) 'विकास का समाजशास्त्र', विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली
डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल (2011) 'समाजशास्त्र', एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स
प्रो.एम.एल. गुप्ता एवं डॉ. डी.डी. शर्मा, 'समाजशास्त्र', साहित्य भवन पब्लिकेशन्सः आगरा
डॉ. अरुणेश त्रिपाठी एवं डॉ. विभा (2022), 'भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक आन्दोलन', ठाकुर पब्लिकेशन्स प्रा. लि. लखनऊ

इकाई संख्या 12: मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत

Marxist Theory of Social Change

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 सामाजिक परिवर्तन की परिभाषाऐं

12.3 सामाजिक परिवर्तन के विषय में मार्क्सवादी विचार

12.4 सामाजिक परिवर्तन में आधार एवं अधिरचना की भूमिका

12.5 मार्क्स का उत्पादन के तरीके में 'अतिरिक्त मूल्य' का सिद्धांत

12.6 सामाजिक विकास की प्रेरक शक्ति के रूप में वर्ग संघर्ष का इतिहास

12.7 वैज्ञानिक दर्शन के रूप में ऐतिहासिक भौतिकवाद

12.8 सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक सिद्धांत

12.9 मार्क्सवादी परिवर्तन के आर्थिक सिद्धांत की आलोचना

12.10 सामाजिक परिवर्तन के परिणाम

12.11 सारांश

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.13 परिभाषिक शब्दावली

12.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

मार्क्सवाद सामाजिक परिवर्तन का दर्शन है। इस अर्थ में इसे व्यवहार का दर्शन माना जा सकता है। हालाँकि मार्क्स ने कोई विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांत स्थापित नहीं किया, लेकिन अपने लेखन में उन्होंने न केवल दुनिया की व्याख्या की, बल्कि इसे बदलने के लिए दिशा-निर्देश भी दिए। सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत मार्क्स के दर्शन के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक है। उन्होंने इतिहास की अपनी भौतिकवादी अवधारणा के आधार पर सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत की स्थापना की, जिसे आम तौर पर 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' के रूप में जाना जाता है। उन्होंने अठारहवीं शताब्दी के भौतिकवाद को शास्त्रीय जर्मन दर्शन (Classical German philosophy), विशेष रूप से हीगल की प्रणाली (Hegel's system) की उपलब्धियों से समृद्ध किया, जिसने बदले में फ्यूअरबैक के भौतिकवाद को जन्म दिया।

मार्क्स न केवल एक दार्शनिक हैं बल्कि साथ ही एक क्रांतिकारी भी हैं। वह इस अर्थ में एक दार्शनिक हैं कि उन्होंने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रदान की। वह इस अर्थ में एक क्रांतिकारी हैं कि उन्होंने अपने दर्शन को इतिहास को बदलने के लिए लागू किया, यानी, मानव जाति के लिए इतिहास का एक नया अध्याय बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। मार्क्स इस बात का ज्वलंत उदाहरण हैं कि किस प्रकार एक दार्शनिक को क्रांतिकारी बना दिया गया। उन्होंने न केवल क्रांति क्यों होती है इसकी सैद्धांतिक जांच की बल्कि मानव इतिहास का नया अध्याय (नया मानव समाज) रचने के लिए क्रांतिकारी गतिविधियों में स्वयं भी भाग लिया। उनके लिए सिद्धांत न केवल अपने आस-पास की दुनिया को समझने का एक साधन है, बल्कि उस दुनिया को बदलने का एक कदम भी है।

मनुष्य का अमानवीय शोषण और दमन के खिलाफ विद्रोह करना ही क्रांति है। मार्क्स के सिद्धांतों का केन्द्र बिंदु मनुष्य ही है। यह मनुष्य कभी दासता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, कभी सामन्तवादी व्यवस्था में प्रजा के रूप में था और आज पूंजी वादी समाज में मजदूर की भूमिका में है। मनुष्य का अंतिम उद्देश्य उसकी स्वतंत्रता है जो बुनियादी है जब तक मनुष्य को नहीं मिलती है और उसमें अंकुश रखने वाला राज्य नेस्तानाबूद नहीं होता, शोषण करने वाला पूंजी वादी वर्ग नहीं रहता। यह सब परिवर्तन तभी संभव है जब समाज में क्रांति आये। क्रांति ऐतिहासिक रूप से अपरिहार्य है उसे टाला तो

जा सकता है लेकिन रद्द नहीं किया जा सकता है। क्रांति कोई दुर्घटना नहीं है यह केवल एक ऐतिहासिक आवश्यकता की अभिव्यक्ति मात्र है। इसके कुछ निश्चित उद्देश्य और कार्य होते हैं।

मार्क्स के क्रांति से संबंधित एक मुहावरे में बताया गया है कि कोई भी सामाजिक व्यवस्था चाहे कितनी ही सड़ी-गली क्यों न हो, तब तक मटियामेट नहीं होती है जब तक समाज में निहित समस्त उत्पादन शक्तियां अपनी पराकाष्ठा तक विकसित नहीं हो जाती। इससे आगे नये उत्पादन संबंध तक तक पैदा नहीं होते हैं जब तक उत्पादन की भौतिक स्थितियां नहीं बदलतीं। उदाहरणार्थ उत्पादन के पंजीवाजी संबंध सबसे पहले सामंतवादी समाज में विकसित हुए। फ्रांस की क्रांति (1789 ई.) जब उत्पादन के नये पूंजीवादी संबंध परिपक्व अवस्था नहीं नहीं पहुंच पाये। वास्तविकता यह है कि वर्ग समाज में क्रांति तभी आयेगी जब इसमें उत्पादन शक्तियां पूर्ण रूप से विकसित हो जायेंगी।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप;

1. सामाजिक परिवर्तन की परिभाषाऐं समझ सकेंगे;
2. सामाजिक परिवर्तन के विषय में मार्क्सवादी विचार पर चर्चा कर सकेंगे;
3. सामाजिक परिवर्तन में आधार एवं अधिरचना पर चर्चा कर सकेंगे;
4. उत्पादन के तरीकों पर अतिरिक्त मूल्य पर चर्चा कर सकेंगे;
5. वैज्ञानिक दर्शन के रूप में ऐतिहासिक भौतिकवाद पर चर्चा कर सकेंगे;
6. सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक सिद्धांत पर चर्चा कर सकेंगे;
7. मार्क्सवादी परिवर्तन के आर्थिक सिद्धांत की आलोचना पर चर्चा कर सकेंगे;
8. सामाजिक परिवर्तन के परिणाम पर चर्चा कर सकेंगे;

12.2 सामाजिक परिवर्तन की परिभाषाऐं

मैकाईवर और पेज-"सामाजिक परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके प्रति प्रतिक्रियाशील हो अनेक प्रकार परिवर्तन. मानव निर्मित में परिवर्तन जीवन की परिस्थितियाँ, दृष्टिकोण में परिवर्तन, और मनुष्यों की मान्यताएँ, और उन परिवर्तनों से जो परे जाते हैं की जैविक और भौतिक प्रकृति पर मानव का नियंत्रण चीज़ें।"[1]

फेयरचाईल्ड-''सामाजिक परिवर्तन सामाजिक प्रक्रिया, प्रतिमान अथवा स्वरूप के किसी भी पहलू में होने वाला अंतर या संशोधन है। यह एक व्यापक शब्द है जिससे सामाजिक आन्दोलन के प्रत्येक प्रकार के परिणामों का बोध होता है। सामाजिक परिवर्तन प्रगतिगामी, स्थायी अथवा अस्थाई, नियोजित अथवा अनियोजित, एक दिशागामी, उपयोगी अथवा हानिकारक हो सकते हैं।''[2]

एच.टी. मजूमदार-"सामाजिक परिवर्तन को एक नए फैशन या के रूप में परिभाषित किया जा सकता है मोड, या तो जीवन पुराने को संशोधित या प्रतिस्थापित करना लोगों का-या किसी समाज के संचालन में।"[3]

मौरिस गिन्सबर्ग-"सामाजिक परिवर्तन से। मैं परिवर्तन को समझता हूं सामाजिक संरचना उदाहरण एक समाज का आकार, इसके भागों या प्रकार की संरचना या संतुलन इसके संगठन का।"[4]

वान वीज- ''सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय केवल मनुष्य के संबंधों में होने वाले परिवर्तनों से है, जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन से मनुष्य तथा पदार्थ के बीच पाये जाने वाले संबंधों में परिवर्तन का बोध होता है। संस्कृति तो अन्तर्मानवीय क्रियाओं के प्रतिफलों की ओर संकेत करती है जबकि समाज स्वयं इन प्रतिफलों के साथ अपना संबंध जोड़ता है।''

लुण्डबर्ग (Lundberg) श्चरेग (Schrag) तथा लारसेन (Larsen)-"सामाजिक परिवर्तन से किसी विशेष, अवधि में किसी सामाजिक प्रघटना में होने वाले स्पष्ट अन्तरों का बोध होता है।"[5]

12.3 सामाजिक परिवर्तन के मार्क्सवादी विचार

मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन और विकास की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है, उनका मानना है कि कुछ वस्तुनिष्ठ नियम हैं जिनके द्वारा हम सामाजिक परिवर्तन और विकास की व्याख्या कर सकते हैं। ये नियम सार्वभौमिक हैं और मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र हैं। मार्क्सवाद के अनुसार, मनुष्य एक विशिष्ट उत्पादन प्रणाली में पैदा होते हैं और बड़े होते हैं। वह उत्पादन प्रणाली में भाग लेता है और अपनी भौतिक आवश्यकताओं के लिए उत्पादन संबंध बनाते हैं। मार्क्स जब भी क्रांति की चर्चा करते हैं तो वस्तुत:

उनका उद्देश्य समाज में आमूलचूल परिवर्तन से होता है। वह इसलिए की सामाजिक व्यवस्था अचानक परिवर्तित होकर दूसरी व्यवस्था को जन्म देती है। यह सामाजिक परिवर्तन बहुत तेजी से होता है। इसलिए इसे क्रांति कहते हैं। परिवर्तन की एक प्रक्रिया तो उद्वविकासहै। यह प्रक्रिया अपनी गति से कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट रूप से चलती है। इसके तहत आने वाले सामाजिक परिवर्तन का ज्ञात हमें लम्बी अवधि के बाद होता है। मार्क्स ने कही भी सामाजिक परिवर्तन की चर्चा नहीं की है। उनके सिद्धांत के अनुसार जिसे हम समाज विज्ञानों में सामाजिक परिवर्तन कहते हैं, वस्तुत: क्रांति है। वर्ग संघर्ष की परिणिति क्रांति ही है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। इसका आधार इतिहास के विभिन्न युगों की भौतिक दशाएं हैं। वर्ग संघर्ष पूंजीवादी समाज के अन्तर्विरोध के कारण है।[6]

उत्पादन पद्धति में परिवर्तन के साथ नये वर्ग का उदय होता है जो उत्पादन शक्तियों और संबंधों का वाहक होता है। इसके ठीक विपरीत प्रतिभागी वर्ग होता है जो पुराने उत्पादन संबंधों का वाहक होता है। जिसके हाथ में राजनैतिक शक्ति भी होती है। वह यथास्थिति बनाये रखने में अपना हित समझता है और दमन करने में राज्य को सहारा बनाता है। तभी मार्क्स ने राज्य को उत्पीड़क का दर्जा दिया है। इस लिए इतिहास के इस मोड पर नये और पुराने उत्पादन शक्तियों और संबंधों के बीच संघर्ष शुरू होता है और इसकी अंतिम दिशा क्रांति की ओर होती है। कार्ल मार्क्स ने दार्शनिक भौतिकवाद का बचाव किया जो प्राकृतिक विज्ञान की सभी शिक्षाओं के अनुरूप और सत्य साबित हुआ है। उन्होंने इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा तैयार की।

मार्क्स और एजिंल्स ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांतों को प्रयोग किया। ऐतिहासिक भौतिकवाद में ज्ञात हुआ कि समाज, प्रकृति का एक अविभाज्य लेकिन अलग हिस्सा होने के नाते लगातार प्रकृति के साथ, खासकर भौगोलिक वातावरण के साथ अंतःक्रिया करता है। प्रकृति के साथ अंतःक्रिया के बिना कोई भी उत्पादक गतिविधि या श्रम संभव नहीं है। अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितियाँ समाज के विकास को आगे बढ़ाती हैं और प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियाँ सामाजिक विकास को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। लेकिन भौगोलिक रुझान सामाजिक विकास के कारणों की व्याख्या नहीं कर सकते हैं। इससे हमें यह भी ज्ञात नहीं होता हैं कि समाज भौगोलिक वातावरण को कितना प्रभावित करता है। भौगोलिक वातावरण सामाजिक व्यवस्था, उत्पादन के स्तर, प्रौद्योगिकी और विज्ञान के चरित्र पर निर्भर करता है। इसके अलावा, समाज के परिवर्तन की गति भौगोलिक परिवर्तनों की तुलना में तेज़ होती है, इसलिए इसको निर्धारक शक्ति नहीं माना गया है। श्रम वह शक्ति है जिसके बिना किसी भी प्रकार का उत्पादन किया जाना संभव नहीं है, जो प्रकृति को मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सक्षम बनाती है। किसी भी देश की जनसंख्या विकास

को तीव्र या धीमा कर सकती है। लेकिन यह सामाजिक परिवर्तन की निर्धारक शक्ति नहीं है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भौगोलिक वातावरण और जनसंख्या सामाजिक विकास और परिवर्तन का कारण नहीं हैं।[7]

12.4 सामाजिक परिवर्तन में आधार एवं अधिरचना की भूमिका

सामाजिक परिवर्तन में आधार और अधिरचना की भूमिका उत्पादन के संबंध लोगों की इच्छा से स्वतंत्र होकर वस्तुपरक रूप से बनते हैं। उत्पादन प्रक्रिया में लोगों के बीच निश्चित संबंध तभी बनते हैं जब इनसे संबंधित उत्पादक शक्तियाँ परिपक्व हो जाती हैं। उत्पादन का तरीका स्वयं के कारणों एवं द्वंद्वात्मकता के आधार पर विकसित होता है। लोगों को जीने हेतु भौतिक संपदा का उत्पादन करना पड़ता है। बढ़ती हुई जनसंख्या और उनकी भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की मांग और जरूरतों को पूरा करने का तरीका प्रौद्योगिकी और विज्ञान की मदद से उत्पादन का लगातार विस्तार एवं सुधार करना है।[8] उत्पादन का विकास उत्पादक शक्तियों में परिवर्तन के साथ प्रारम्भ होता है। उत्पादक शक्तियों में उत्पादन के साधन और इनका उपयोग करने वाले लोग सम्मिलित होते हैं। उत्पादन प्रक्रिया में रिश्ते, संबंध भी श्रम के साधनों और काम करने वाले लोगों के विकास के साथ बदलते हैं। उत्पादन के संबंध उत्पादक शक्तियों पर आधारित होते हैं और वे उत्पादक शक्तियों को सक्रिय रूप से प्रभावित करते हैं।[9]

मार्क्स कहते हैं:"...वर्ग, जो समाज की शासक भौतिक शक्ति है, उसी समय इसकी शासक बौद्धिक शक्ति भी है।"[10] पूंजीवाद के तहत, पूंजीपति वर्ग न केवल आर्थिक रूप से बल्कि विचारों और संस्थानों के माध्यम से भी सर्वहारा वर्ग पर हावी होता है। बुर्जुआ कला और दर्शन पतित और आदर्शवाद का सबसे प्रतिक्रियावादी रूप है।

आधार अधिरचना की प्रकृति निर्धारित करता है और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन अनिवार्य रूप से अधिरचना में परिवर्तन की ओर ले जाता है। जब सामाजिक क्रांति के परिणामस्वरूप एक आर्थिक व्यवस्था दूसरी का स्थान लेती है, तो अधिरचना में परिवर्तन विशेष रूप से गहरे होते हैं। जब क्रांति होती है, तो नए वर्ग के राजनीतिक शासन को पुराने वर्ग के राजनीतिक शासन द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। अर्थात्, "सामाजिक चेतना सामाजिक अस्तित्व को बदलती है।" यद्यपि अधिरचना का आधार आर्थिक व्यवस्था है, फिर भी एक सापेक्ष स्वतंत्रता है जो इसके विकास की निरंतरता में स्पष्ट है। जब पुराने आधार को नए आधार से प्रतिस्थापित किया जाता है, तो अधिरचना में क्रांति होती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पुराने आधार के विनाश के माध्यम से पुरानी अधिरचना की व्यवस्था का अस्तित्व समाप्त हो

जाता है, बल्कि इसके अलग-अलग तत्व आधार से अधिक जीवित रहते हैं और नए समाज की अधिरचना में चले जाते हैं।[11]

"प्रत्येक नए शोषक समाज ने पूर्ववर्ती अधिरचना से उन विचारों को ग्रहण किया जो शोषण को पवित्र करते थे और शोषकों की राजनीतिक और कानूनी संस्थाओं, धर्म का बचाव करते थे।"[12] इस तरह की निरंतरता के परिणामस्वरूप, प्रत्येक समाज की अधिरचना जटिल होती है। अधिरचना पुराने और नए आर्थिक आधार के विचारों और संस्थाओं को अलग करती है। यह स्पष्ट है कि पूंजीवादी आधार की रक्षा के लिए, प्रगतिशील ताकतों को दबाने के लिए बुर्जुआ विचारों और संस्थाओं का उपयोग किया जा रहा है। पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा में वैचारिक प्रभाव एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रक्रिया में बुर्जुआ राज्य और कानून, यहां तक कि मीडिया भी एक बहुत बड़ी भूमिका निभाता है।

"सामाजिक परिवर्तन व्यक्तियों की सचेत गतिविधियों द्वारा लाया जाता है। लेकिन इस गतिविधि और सचेत उद्देश्यों का परिणाम आर्थिक विकास के नियमों द्वारा निर्धारित होता है जो इच्छा या चेतना से स्वतंत्र रूप से संचालित होते हैं, यानी, वस्तुनिष्ठ रूप से।"[13] इसलिए, हम कह सकते हैं कि सामाजिक विकास की निर्धारक शक्ति उत्पादन का तरीका है, जो समाज का भौतिक आधार है।

12.5 मार्क्स का उत्पादन के तरीके में 'अतिरिक्त मूल्य' का सिद्धांत

सामाजिक परिवर्तन के अपने सिद्धांत को स्थापित करने के लिए मार्क्स ने पूंजीवाद की प्रकृति के विश्लेषण से शुरुआत की। पूंजीवादी व्यवस्था का मुख्य केंद्र वस्तु है। वस्तु उत्पादन पूंजीवाद का निर्धारक कारक है। 'अतिरिक्त मूल्य' का सिद्धांत पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का नियम है। मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक दास कैपिटल (1867) में इस सिद्धांत पर चर्चा की। मार्क्स से पहले, एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो ने मूल्य के श्रम सिद्धांत की शुरुआत की थी। इसके आधार पर मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य के अपने सिद्धांत की स्थापना की। उन्होंने दिखाया कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य उत्पादन के तरीके में सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम समय है।

पूंजीवादी समाज हमेशा शोषणकारी होता है। पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था में अतिरिक्त मूल्य उत्पादन और श्रम शोषण के माध्यम से पूंजीपति मूल्य हड़पते हैं। एम-सी-एम: मुद्रा-वस्तु-मुद्रा (M-C-M: MONEY-COMMODITY-MONEY) यहां वस्तु के उत्पादन के लिए धन का निवेश किया जाता है और अधिक धन के लिए इन वस्तुओं का आदान-प्रदान किया जाता है। यह अतिरिक्त धन पहले निवेश

किए गए धन से अधिक होता है और विनिमय के बाद पूंजीपतियों की जेब में चला जाता है। अतिरिक्त धन ही लाभ है। मार्क्स ने इसे अतिरिक्त मूल्य कहा।

मार्क्स ने पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था में अतिरिक्त मूल्य के स्रोत की खोज की। उनके अनुसार, एक ओर उत्पादन व्यवस्था के साधनों के मालिक पूंजीपति हैं, और दूसरी ओर वे मेहनतकश लोग हैं जो स्वामित्व से वंचित प्रत्यक्ष उत्पादक हैं। उनके लिए अतिरिक्त मूल्य का स्रोत श्रम है। श्रम एक प्रकार की शक्ति है जिसे मजदूर पूंजीपतियों को बेचता है। पूंजीवादी व्यवस्था में श्रम शक्ति वस्तु में बदल जाती है और इसका एक व्यावहारिक मूल्य भी होता है। इसका मूल्य सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम समय से निर्धारित होता है। पूंजीवादी उत्पादन संबंध श्रम खरीदने-बेचने का संबंध है शक्ति। इस संबंध का विश्लेषण करके मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य की अवधारणा की खोज की। श्रम शक्ति को खरीदने-बेचने का संबंध शोषण का मूल है।

बोध प्रश्न-1

1. **वर्ग संघर्ष की सिद्धांत किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया।**

   .....

2. **अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत की चर्चा किसने की।**

   .....

12.6 वैज्ञानिक दर्शन के रूप में ऐतिहासिक भौतिकवाद

द जर्मन आडियोलॉजी में मार्क्स ने अपने दर्शन को इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा को आमतौर पर ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप में तैयार किया। उनके दर्शन को इस अर्थ में वैज्ञानिक कहा जाता है कि यह समाज, विशेषकर सामाजिक परिवर्तन और विकास का वैज्ञानिक सिद्धांत प्रदान करता है। मार्क्स ने देखा कि समाज का परिवर्तन और विकास वस्तुनिष्ठ कानूनों के अनुसार होता है। प्रेरक शक्ति के सामान्य सिद्धांत और सामाजिक परिवर्तन के वस्तुनिष्ठ नियमों को इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा के रूप में जाना जाता है। मार्क्स का भौतिकवाद इस अर्थ में एक वैज्ञानिक दर्शन है कि यह समाज को उसके द्वंद्वात्मक आंदोलन में समझाता है, अर्थात, समाज के परिवर्तन, गति और विकास में। उन्होंने वस्तुगत जगत, प्रकृति, समाज और विचार के परिवर्तन, गति और विकास की व्याख्या में द्वंद्वात्मकता के नियम (गति का नियम) की खोज की। जैसे प्राकृतिक वैज्ञानिकों ने प्रकृति के परिवर्तन के नियम की खोज की, मार्क्स ने समाज के परिवर्तन (एक चरण से दूसरे चरण तक) के नियम की खोज की। अतः उनके

भौतिकवाद को वैज्ञानिक भौतिकवाद कहा जा सकता है जिसके माध्यम से उन्होंने समाज का विज्ञान स्थापित किया। उनका वैज्ञानिक भौतिकवाद सामाजिक जीवन के व्यावहारिक मुद्दों और समस्याओं को समझाने और उनका समाधान करने का एक तरीका है।

मार्क्स ने सामाजिक विज्ञान में क्रांति ला दी। उन्होंने सामाजिक विज्ञान को इतिहास की आदर्शवादी अवधारणा से मुक्त किया इसे भौतिकवादी अवधारणा पर आधारित किया। उनके अनुसार, इतिहास न तो राजाओं, सैन्य नेताओं या विद्वानों जैसे महान लोगों द्वारा बनाया जाता है (जैसा कि पूर्व-मार्क्सवादी समाजशास्त्रियों ने सोचा था) और न ही दैवीय इच्छा या भगवान द्वारा (जैसा कि पूर्व-मार्क्सवादी दार्शनिकों, विशेष रूप से हेगेल ने देखा था)। इतिहास की आदर्शवादी अवधारणा के अनुसार, समाज ईश्वरीय इच्छा से शासित होता है; ईश्वर दुनिया पर शासन करता है और उसकी योजनाओं की प्राप्ति विश्व इतिहास का निर्माण करती है। मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रमुख अभिधारणा (मूल आधार) प्रतिपादित करके मानव विचार के इतिहास को आदर्शवाद से मुक्त किया: "सामाजिक अस्तित्व सामाजिक चेतना को निर्धारित करता है।"[14]

मार्क्स ने इस आधार पर शुरुआत की कि "जीवन में खाना, पीना, आवास, कपड़े और विभिन्न अन्य चीजें शामिल हैं।" इस प्रकार पहला ऐतिहासिक कार्य इन आवश्यकताओं को पूरा करने के साधनों का उत्पादन, स्वयं भौतिक जीवन का उत्पादन है।"[15] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भौतिक उत्पादन वह आधार बनता है जिस पर राज्य, संस्थाएं, कानूनी अवधारणाएं, कला और धार्मिक विचार आधारित होते हैं। विकसित किया गया है। यह मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी समझ है जिसे वैज्ञानिक माना जाता है। इस समझ के अनुसार, लोग इतिहास के वास्तविक निर्माता हैं और उनके श्रम से सभी भौतिक संपदा का उत्पादन होता है। इतिहास की यह भौतिकवादी अवधारणा या ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के अध्ययन और उसके विकास के नियमों से संबंधित है। ये नियम वस्तुनिष्ठ हैं, अर्थात् प्रकृति के नियमों की तरह मनुष्य की चेतना से स्वतंत्र हैं। समाज के नियम प्रकृति के नियमों से भिन्न हैं। जबकि प्रकृति के नियम अंधी, सहज शक्तियों के संचालन को दर्शाते हैं, समाज के नियम लोगों की जागरूक गतिविधि के माध्यम से प्रकट होते हैं जिसमें वे अपने लिए निश्चित लक्ष्य निर्धारित करते हैं, और उन्हें हासिल करने के लिए काम करें समाज के नियमों का अध्ययन अन्य सामाजिक विज्ञानों (जो सामाजिक घटनाओं के एक निश्चित समूह का अध्ययन करते हैं) द्वारा भी किया जाता है। लेकिन मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास के अधिक सामान्य नियमों का अध्ययन करता है। समाज के विकास में अनूठी विशेषताएं हैं जो सामाजिक परिवर्तनों को प्राकृतिक घटनाओं से अलग करती हैं। मुख्य विशेषता इस तथ्य में निहित है कि समाज जागरूक मनुष्यों से बना है। वस्तुनिष्ठ कानूनों की खोज प्रकृति की तरह

समाज में नहीं की जा सकती। प्रकृति में सब कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार निर्धारित होता है, लेकिन समाज में, जो होता है वह लोगों के सचेत लक्ष्यों द्वारा निर्धारित होता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार, भौतिक (उत्पादक) संबंध सामाजिक विकास के निर्धारक कारक हैं। इन उत्पादन संबंधों की समग्रता ही समाज की आर्थिक संरचना (आधार) का निर्माण करती है। प्रत्येक समाज का अपना आधार होता है। कोई भी आधार तब तक प्रकट नहीं हो सकता जब तक उसके जन्म के लिए तदनुरूप भौतिक परिस्थितियाँ, उत्पादक शक्तियाँ आवश्यक न हों। एक बार जब यह उत्पन्न हो जाता है, तो आधार समाज के जीवन में एक जबरदस्त भूमिका निभाता है। आधार महत्वपूर्ण है क्योंकि यह वास्तविक आधार के रूप में कार्य करता है जिस पर अधिरचना (राजनीतिक, कानूनी, दार्शनिक, नैतिक और धार्मिक विचार) उत्पन्न होती है। अधिरचना सामाजिक विकास में भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक निश्चित आर्थिक आधार पर उत्पन्न होकर, यह अंततः इस आधार पर लोगों के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। विभिन्न विचार लोगों को उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रभावित करने में मदद करते हैं।

अधिरचना आधार द्वारा अस्तित्व में आती है और उसके साथ अविभाज्य रूप से बंधी होती है। अधिरचना आधार पर निर्भर करती है। वर्ग समाज के आधार के अपने अंतर्विरोध होते हैं। पूंजीवाद के आर्थिक आधार में पूंजीपति और श्रमिक वर्ग के बीच विरोध निहित है। अधिरचना में अंतर्विरोध भी होते हैं। इसमें के विचार और संस्थाएं शामिल हैं विभिन्न वर्ग. जिस वर्ग का आर्थिक रूप से प्रभुत्व होता है उसी वर्ग के विचार और संस्थाएँ प्रबल होती हैं। पूंजीवाद के तहत पूंजीपति आर्थिक रूप से हावी होता है ताकि पूंजीपति के विचार और संस्थाएं प्रबल हों और उनके द्वारा श्रमिक वर्ग के खिलाफ इस्तेमाल किया जाए।

बारीकी से पढ़ने और अवलोकन करने से पता चलेगा कि मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के तीन मार्गदर्शक सिद्धांत हैं: 1) सामाजिक विकास वस्तुनिष्ठ कानूनों (विज्ञान की तरह) द्वारा नियंत्रित होता है, 2) विचार और संस्थान, राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक विकास इसी आधार पर उत्पन्न होते हैं। समाज के भौतिक जीवन के विकास में और 3) भौतिक जीवन की परिस्थितियों के आधार पर उत्पन्न होने वाले विचार और संस्थाएँ भौतिक जीवन के विकास में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

12.7 सामाजिक विकास की प्रेरक शक्ति के रूप में वर्ग संघर्ष का इतिहास

मार्क्स ने 'वर्ग' की अपनी अवधारणा को यह दिखाने के लिए लाया कि यह अवधारणा कैसे उत्पन्न होती है और समाज के विकास और परिवर्तन पर हावी होती है। मार्क्स ने दिखाया कि समाज या राज्य का प्रमुख विचार वर्ग का विचार है। मार्क्सवाद के अनुसार, राज्य शोषण का साधन है और राजनीति वर्ग संबंध की अभिव्यक्ति है। इस तरह मार्क्स ने 'वर्ग संघर्ष' के सिद्धांत की खोज की। हालांकि मार्क्स और एजिंल्स ने 'वर्ग' को परिभाषित नहीं किया, लेकिन वी.आई. लेनिन के महान लेखन ए ग्रेट बिगिनिंग (1994) में हमें 'वर्ग' की व्यापक परिभाषा मिलती है। उन्होंने लिखा-"वर्ग लोगों के बड़े समूह हैं जो ऐतिहासिक रूप से निर्धारित सामाजिक उत्पादन प्रणाली में उनके स्थान, उत्पादन के साधनों से उनके संबंध (ज्यादातर मामलों में कानून में तय और तैयार) के आधार पर, श्रम के सामाजिक संगठन में उनकी भूमिका के आधार पर और परिणामस्वरूप, सामाजिक संपत्ति के हिस्से को प्राप्त करने के आयाम और तरीके के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होते हैं। वर्ग लोगों के समूह हैं जिनमें से एक सामाजिक अर्थव्यवस्था की एक निश्चित प्रणाली में उनके अलग-अलग स्थानों के कारण दूसरे के श्रम को अपने कब्जे में ले सकता है।"[16]

समाज में, एक व्यक्ति की स्थिति उसकी आर्थिक स्थिति से निर्धारित होती है। एक व्यक्ति का स्थान और भूमिका, वह किस वर्ग से संबंधित है, यह उसके उत्पादन के साधनों के साथ संबंध से निर्धारित होता है। अफानासेव इस तरह लिखते हैं: "उत्पादन के साधनों के साथ एक वर्ग का संबंध सामाजिक उत्पादन में उसके स्थान और भूमिका को निर्धारित करने वाली मुख्य विशेषता है, इतिहास से हम पाँच सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं के बारे में जानते हैं; आदिम-सांप्रदायिक, दास, सामंती, पूंजीवादी और साम्यवादी। जब निजी संपत्ति का प्रसार हुआ और वस्तु विनिमय में तेजी आई, तो सामाजिक असमानता पैदा हुई और आदिम समानता ने पहले विरोधी वर्गों, दासों और दास मालिकों को रास्ता दिया। उसके बाद से लेकर आज तक के समाज में सभी समाज वर्ग आधारित समाज हैं और इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।

मार्क्स और एजिंल्स 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में कहते हैं कि- "अब तक मौजूद सभी समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।" वर्ग संघर्ष का इतिहास समाज में विरोधी वर्गों का इतिहास है। यह सामाजिक विकास का वस्तुपरक सिद्धांत है। वर्ग संघर्ष पहले भी मौजूद था, लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था में यह स्पष्ट और तीव्र हो गया। पूंजीवाद का इतिहास भी दो बुनियादी परस्पर विरोधी वर्गों का कटु संघर्ष है। एक ओर पूंजीपति वर्ग, जिसके पास उत्पादन के साधन हैं और दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग, जो पूंजीवाद की श्रमिक शक्ति है। दूसरी ओर पूंजीपति-उत्पीड़क और सर्वहारा वर्ग-उत्पीड़ित। पूंजीपति वर्ग सर्वहारा वर्ग का शोषण करता है। पूंजीवाद के विकास के साथ शोषण की मात्रा बढ़ती जाती है। शोषण बढ़ने के साथ

ही मजदूर वर्ग धीरे-धीरे अपने वर्ग और व्यवस्था के शोषण के प्रति सचेत हो जाता है। सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच संघर्ष बहुत तीखा और स्पष्ट हो जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था का मूल स्वभाव ही मजदूर वर्ग को एकजुट, संगठित और शिक्षित करने में मदद करना है। मजदूरों के पास न तो कोई संपत्ति है और न ही अपनी जंजीरों के अलावा कुछ खोने का डर। मुख्य रूप से वे पूंजीपति वर्ग के खिलाफ एकजुट होकर नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से लड़ते हैं। जब वे एक साथ किसी कारखाने में काम करना शुरू करते हैं तो वे एकजुट हो जाते हैं और पूंजीपति वर्ग के खिलाफ लड़ना शुरू कर देते हैं। सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष के तीन मुख्य रूप हैं- आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक। आर्थिक संघर्ष मजदूरों के बड़े हिस्से को वर्ग संघर्ष में खींचने में मदद करता है और उनके लिए संगठन का एक अच्छा स्कूल का काम करता है। वर्ग चेतना और वर्ग एकजुटता बढ़ती है। एकता की प्रक्रिया में उन्होंने अपना संगठन, ट्रेड यूनियन, सहकारी समितियां, पारस्परिक लाभ समितियां आदि बनाईं। आर्थिक संघर्ष का उद्देश्य शोषण को समाप्त करना नहीं है, बल्कि उसे सीमित करना और कम करना है। राजनीतिक संघर्ष पूंजीवादी व्यवस्था के मुख्य आधारों को समाप्त करने और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के लिए राज्य सत्ता हासिल करने के लिए है, जिसमें मुट्ठी भर उत्पीड़क लाखों लोगों के श्रम के फल को हड़प न सकें। वैचारिक संघर्ष बुर्जुआ विचारधारा के खिलाफ और सर्वहारा विचारधारा की जीत के लिए है।

मार्क्स ने दिखाया कि वर्ग संघर्ष समाज के परिवर्तन की प्रेरक शक्ति है। पिछले वर्ग संघर्षों का विश्लेषण करने के बाद, मार्क्स ने भविष्यवाणी की कि एक निश्चित समय के बाद वर्ग संघर्ष क्रांति में बदल जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करने के लिए सर्वहारा वर्ग को भी अपने वर्ग हितों के प्रति सचेत होना होगा। वर्ग संघर्ष के माध्यम से एक नया समाज बनेगा जहाँ कोई वर्ग नहीं होगा। इसके लिए क्रांतिकारी सिद्धांत की आवश्यकता है जिसे मार्क्स और एजिंल्स और उनके अनुयायियों ने स्थापित किया है।

12.8 सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक सिद्धांत

मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन को आर्थिक कारकों से जनित माना है। जिस कारण उनके सिद्धांत को आर्थिक निर्धारणवाद अथवा सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक सिंद्धांत कहा गया है। जिसको वर्तमान समय में सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी सिद्धांत माना जाता है। इन्होंने इतिहास की भौतिक व्याख्या की है और माना है कि मानव इतिहास में अब तक जो भी परिवर्तन हुए हैं वह उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन के कारण ही हुए हैं, जनसंख्या, भौगोलिक परिस्थितियों एवं अन्य कारकों से मनुष्य के जीवन में प्रभाव तो पड़ता है लेकिन वह परिवर्तन के निर्णायक कारक नहीं होते हैं। निर्णायक कारक तो केवल आर्थिक कारक

ही हैं अर्थात उत्पादन प्रणाली ही है। मनुष्य की कुछ बुनियादी भौतिक ज़रूरतें होती हैं जिनके बिना वह जीवित नहीं रह सकता। प्रकृति इन ज़रूरतों को सीधे तौर पर पूरा नहीं करती है, जैसे कि भोजन, कपड़ा, आश्रय आदि। उन्हें प्रकृति के खिलाफ़ लड़ना पड़ता है। मनुष्य को अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इन भौतिक चीज़ों का उत्पादन करने के लिए प्राकृतिक वस्तुओं को बदलना पड़ता है। मनुष्य ने समाज का आधार बनाने के लिए सचेत रूप से श्रम लगाया, यानी उन्होंने धर्म, नैतिकता, कानून, इतिहास, सभ्यता के साथ-साथ उत्पादन संबंध भी बनाए।

भौतिक संपदा का उत्पादन सामाजिक विकास में मुख्य निर्धारक कारक है।[17] इसलिए, सामाजिक परिवर्तन की निर्धारक शक्ति भौतिक मूल्यों के उत्पादन का तरीका है। मनुष्य का श्रम मानव सामाजिक जीवन के लिए एक स्वाभाविक आवश्यकता है, जिसमें उसका अस्तित्व भी शामिल है क्योंकि प्राकृतिक संसाधन सीधे उत्पादन में मदद नहीं करते हैं। भौतिक उत्पादन के लिए वस्तुओं और श्रम के साधनों की आवश्यकता होती है। श्रम की वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिन पर मानव श्रम लगाया जाता है और मशीनें, उपकरण, औजार, उत्पादन भवन, परिवहन आदि श्रम के साधन हैं। श्रम की वस्तुएँ और साधन उत्पादन के साधन हैं। श्रम का सबसे महत्वपूर्ण साधन वह साधन है जिसके द्वारा लोग श्रम की वस्तुओं पर कार्य करते हैं और उन्हें रूपांतरित करते हैं। इसकी सहायता के बिना, मनुष्य की आजीविका के साधन प्राप्त करने का कोई अन्य तरीका नहीं है। उत्पादों के साधन जितने बेहतर होंगे, आजीविका के साधन उतने ही बेहतर होंगे।[18] मनुष्य उत्पादन का मूल तत्व है। वे भौतिक संपदा का उत्पादन करने के लिए सचेत रूप से श्रम लगाते हैं। मनुष्य के बिना उत्पादन का कोई उपयोग नहीं होगा क्योंकि केवल मनुष्य ही किसी उपकरण को गति में लाने और भौतिक उत्पादन को संगठित करने में सक्षम है। श्रम के सभी साधन और लोग, जो भौतिक संपदा का उत्पादन करते हैं, उत्पादक शक्तियाँ, उत्पादन के साधन हैं।[7] भौतिक उत्पादन के सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक सहयोग है। श्रम की प्रकृति सामाजिक है, इसलिए उत्पादन तभी संभव हो सकता है जब वे समाज में संगठित हों और एक-दूसरे के साथ सहयोग करें।

बोध प्रश्न- 2

1. **मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत कौन से तत्व पर निर्भर है।**

.....

.....

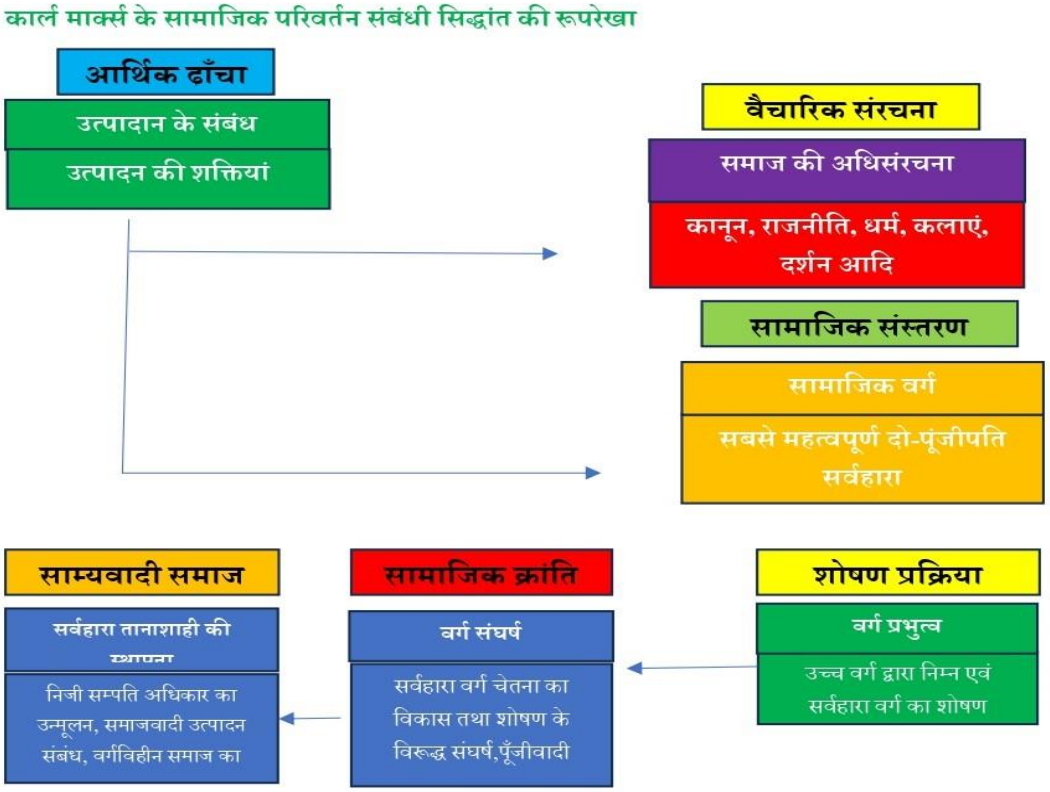

12.9 मार्क्सवादी परिवर्तन के आर्थिक सिद्धांत की आलोचना

1. मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के लिए केवल एक ही कारक आर्थिक कारक (उत्पादन प्रणाली) को उत्तरदायी मानकर परिवर्तन के अन्य कारकों की अवहेलना की है। सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक एवं जनसंख्यात्मक कारकों का भी सामाजिक परिवर्तन में प्रमुख भूमिका होती है और स्वयं आर्थिक कारक भी अन्य कारकों से प्रभावित होते हैं।

2. मार्क्स कहते हैं सामाजिक परिवर्तन प्रौद्योगिकी, आर्थिक संबंध और आर्थिक संरचना में परिवर्तन के कारण आते हैं किंतु यह स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं कि प्रौद्योगिकी आदि में परिवर्तन क्यों होता है या उसे परिवर्तित करने वाले कौन से कारक हैं।

3. मार्क्स द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्दों जैसे आर्थिक कारक, उत्पादन शक्तियां तथा संबंध, आर्थिक आधार, प्रौद्योगिकी आदि की स्पष्टत: व्याख्या नहीं की गई है। कुछ विद्वान इसमें केवल आर्थिक प्रविधियों को ही सम्मिलित करते हैं जबकि ऐन्जिल एवं सैलिगमैन आदि ने उत्पादन से संबंधित सभी दशाओं को आर्थिक कारकों में सम्मिलित किया है।

4. मार्क्स ने वर्ग संषर्घ पर अधिका जोर दिया है किंतु समाज की नींव संघर्ष पर नहीं हैं वरन् सहयोग पर आधारित है।

मार्क्स सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को वैज्ञानिक व ठोस बनाने का प्रयास तो किया ही है परन्तु आर्थिक कारकों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है। सोरोकिन कहते हैं कि 'मार्क्स एवं ऐन्जिल्स ने सामाजिक विज्ञान को प्रगतिशील बनाने के स्थान पर इसके विकास में अनेक बाधाऐं उत्पन्न की हैं।'

मैक्स बेबर ने मार्क्स के सिद्धांत की आलोचना की है क्योंकि वे इन आर्थिक कारकों के स्थान पर धर्म को सामाजिक परिवर्तन का आधार मानते हैं। मैकाईवर एंड पेज के अनुसार मार्क्स के सिद्धांत की सच्ची शक्ति केवल इस बात में है कि उसने संसार को पूंजीवादी सभ्यता के गम्भीर आंतरिक दोषों से परिचित काराया है।

12.10 सामाजिक परिवर्तन के परिणाम

सामाजिक परिवर्तन सांस्कृति कारकों, प्रौद्योगिक कारकों, जैवकीय कारकों, आर्थिक कारकों, भौगोलिक एवं पर्यावरण संबंधी कारकों, मनोवैज्ञानिक कारकों एवं अन्य कारकों के प्रभाव से सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष का रूप परिवर्तित होता रहता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृति सभी क्षेत्रों में नई-नई संस्थायें और समितियां बनती बिगडती रहती हैं। परिवार, विवाह, राज्य, धर्म सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, तथा सामाजिक ढांचे, का रूप बदलता रहता है। इससे व्यक्ति के जीवन में और अन्य व्यक्तियों से उसके संबंधों में परिवर्तन आता है। उदाहरण के लिये आदिकाल से लेकर आज तक के परिवार के उद्देश्यों, ढांचे, स्वरूप, कार्य आदि के इतिहास को देखकर सामाजिक परिवर्तन के परिणामों का वर्णन करने के लिये तो एक पूरा ग्रंथ ही होना चाहिए। संक्षेप में, आदिम समाज से आधुनिक समाज में जो कुछ भी अंतर दिखाई पड़ता है वह सामाजिक परिवर्तन का ही परिणाम है। वेनबर्ग और शेबेत ने ठीक ही लिखा है कि ''सामाजिक परिवर्तन आधुनिक जगत के हृदय में निवास करता है।''

12.11 सारांश

सामाजिक परिवर्तन के मार्क्सवादी सिद्धांत की कई समाजशास्त्रियों ने आलोचना की है। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि ऐतिहासिक भौतिकवाद पूरी तरह से दोषरहित है, लेकिन हम यह कह सकते

हैं कि सामाजिक परिवर्तन और विकास का वास्तविक कारण उनके द्वारा समझाया गया है। मार्क्स और एंजिल्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद को सामाजिक विकास के वस्तुपरक नियम के रूप में सूत्रबद्ध किया। उन्होंने दिखाया कि वस्तुपरक आधार, आर्थिक आधार या उत्पादन के तरीके पर अधिरचनाएँ कैसे बनती हैं। मनुष्य एक विशेष उद्देश्य के साथ सचेत रूप से काम करता है। वे रचनात्मक श्रम से सामग्री का उत्पादन करते हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी, सचेत और रचनात्मक श्रम और दूसरों के सहयोग की मदद से उन्होंने एक उत्पादन प्रणाली बनाई। संस्कृति, शिक्षा, विचारधाराएँ, राजनीति, कला, मूल्य, विचार, दृष्टिकोण, नीतियाँ आदि भी उत्पादन प्रणाली के आधार पर बनती हैं। आधुनिक समाज में, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली अतिरिक्त मूल्य बनाती है जिसके द्वारा पूंजीपति सर्वहारा वर्ग का शोषण करते हैं। पूंजीपति संपत्ति का मालिक होता है और सर्वहारा वर्ग केवल अपने श्रम का मालिक होता है जिसे वे न्यूनतम जीवनयापन के लिए पूंजीपति को बेचते हैं। धीरे-धीरे यह संबंध संघर्ष में बदल जाता है। वर्ग संघर्ष चेतना और वर्ग दर्शन बनाता है वर्ग दर्शन क्रांति में बदल जाता है जो बदले में समाजवाद की स्थापना करता है जहां कोई शोषण नहीं होगा और कोई वर्ग संघर्ष नहीं होगा। समाज के लिखित इतिहास से हम जानते हैं कि वर्ग संघर्ष सामाजिक विकास की निर्धारक शक्ति है। ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक परिवर्तन की यथार्थवादी और तार्किक व्याख्या करता है।

12.12 परिभाषिक शब्दावली

1. वर्ग- मूलभूत सामाजिक समूह।

2. वर्ग संघर्ष- दो परस्पर विरोधी सामाजिक वर्गों के मध्य संघर्ष।

3. उत्पादन की प्रणाली- उत्पादन के संबंध और शक्तियों के बीच पाए जाने वाले संबंध।

4. सर्वहारा- किसी भी समुदाय के निम्नतम सामाजिक आर्थिक वर्ग के प्रतिनिधि।

5. उत्पादन के संबंध- जीवन की भौतिक दशाओं के उत्पादन के फलस्वरूप प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से उभरने वाले सामाजिक संबंध।

12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. कार्ल मार्क्स
2. कार्ल मार्क्स

बोध प्रश्न-2

1. उत्पादन शक्ति पर निर्भर है।

12.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. समाज: एक परिचयात्मक, विश्लेषण
2. हेनरी प्रैट फेयरचाईल्ड (एडि.) डिक्सनरी ऑफ सोशियोलॉजी मेज लोवा लिटिलफिल्ड, एडम्स एंड कंपनी, 1955, पृ. 277
3. एच. टी. मजूमदार, द गार्मर ऑफ सोशियोलॉजी: मैन इन सोसाइटी, 1966
4. ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ सोशियोलॉजी, सामाजिक परिवर्तन, सितंबर, 1958
5. जॉर्ज ए. लुण्डबर्ग, क्लेरेन्स सी. श्चरेग तथा ओट्टो एन. लारसेन, समाजशास्त्र, द्वितीय संस्करण एडिटिड, न्यूयार्क: हॉर्पर एंड रॉ, 1958, पृ. 694
6. मार्क्स, कार्ल और फ्रेडरिक एंजिल्स: सलेक्टिड वर्क इन वन वॉल्यूम, लॉरेंस और विशार्ट, लंदन, 1968, पृ. 24
7. मार्क्स, कार्ल और फ्रेडरिक एंजिल्स: सलेक्टिड वर्क इन वन वॉल्यूम, लॉरेंस और विशार्ट, लंदन, 1968, पृ. 24
8. अफानसेव, वी., मार्क्सिस्ट फिलॉसफी: ए पॉपुलर आउटलाईन, मास्को: प्रोग्रेसिव पब्लिसर्श, 1968, पृ. 189-190
9. अफानसेव, वी., मार्क्सिस्ट फिलॉसफी: ए पॉपुलर आउटलाईन, मास्को: प्रोग्रेसिव पब्लिसर्श, 1968, पृ. 189-190
10. मार्क्स, कार्ल और फ्रेडरिक एंजिल्स: सलेक्टिड वर्क इन वन वॉल्यूम, लॉरेंस और विशार्ट, लंदन, 1968, पृ. 60
11. मार्क्सिस्ट फिलॉसफी, पृ.199-200
12. मार्क्सिस्ट फिलॉसफी, पृ. 200
13. राशिद, हारून, "कार्ल मार्क्स फिलासफी एंड इट्स रिलीवेंस टूडे, फिलॉसफी एंड प्रोग्रेस: वॉल्यूम LXII-LXII, जनवरी-जून, जुलाई-दिसंबर, 2017, पृ. 29
14. मार्क्स एवं एंजिल्स, द जर्मन आइडियोलॉजी, पृ. 41-43
15. मार्क्स एवं एंजिल्स, द जर्मन आइडियोलॉजी, पृ. 41-43
16. लेनिन, वी.आई., चयनित कार्य, खंड 1, मास्को: प्रगति प्रकाशक, 1970, पृ. 248
17. महाजन, संजीव, समाजशास्त्रीय चिंतन और सिद्धांतकार, अर्जन पब्लिशिंग हाउस, प्रथम

संस्करण, 2010

18. दोषी एम. एल. एवं पी.सी. जैन सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन, 2008, पृ. 124
19. जॉनसन वोल्फ़, ह्वाई रीड मार्क्स टूडे? ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 2003, पृ. 9-10.
20. एंजिल्स, थ्योरीज ऑफ हिस्ट्री (हिस्ट्रोरिकल मेटेरियलिज्म) एण्ड इकोनॉमिक्स (थ्योरी ऑफ सरपल्स वैल्यू)
21. शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा राजेन्द्र कुमार, सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियंत्रण, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1996, पृ.110-111
22. "Social change lies at the heart of the modern world"- Weinsberg and Shabat

12.16 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मार्क्स, कार्ल और फ्रेडरिक एंजिल्स: जर्मन आइडियोलॉजी, मॉस्को: प्रोग्रेसिव पब्लिसर्श, 1964, पृ.60
2. बोटोमोर, टॉम, 1975, मार्क्सवादी समाजशास्त्र, अनुवादक, सदाशिव द्विवेदी, मैक्मिलन कम्पनी, नई दिल्ली
3. राय, एस. चन्द्रकुमार, प्रमुख समाजशास्त्रीय सिद्धांत, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 2012
4. शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा राजेन्द्र कुमार, सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियंत्रण, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1996

12.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के विषय में मार्क्सवादी विचार पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धांत की विस्तार से समझाइये।

इकाई 13: औद्योगिकरण एवं नगरीकरण
Industrialization and Urbanization

इकाई की रूपरेखा

13.2 औद्योगीकरण का अर्थ एंव परिभाषाऐं

13.3 भारतीय समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव

13.3.1 आर्थिक जीवन पर प्रभाव

13.3.2 पार्यावरण पर प्रभाव

13.4. नगरीकरण

13.5 नगरीकरण की प्रक्रिया

13.6 नगरीकरण की विशेषताएं

13.7 भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव

13.8 सारांश

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.9 पारिभाषिक शब्दावलीः

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.13 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

मनुष्य के सामाजिक जीवन की शुरुआत छोटे-छोटे समूहों और कबीलों में हुई, जो धीरे-धीरे गावों का रूप धारण कर गए। इन गावों में मनुष्य जाति, वर्ग, और भाषायी विशेषताओं के साथ रहने लगा। समय के साथ, ज्ञान और विकास ने उसे अपने समुदाय से बाहर निकलकर सुखद जीवन के लिए नई खोजें करने के

लिए प्रेरित किया। इस यात्रा में, रोटी, कपड़ा, और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों के साथ-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार भी प्रमुख प्राथमिकताओं में शामिल हो गए। विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने विश्व के स्वरूप को बदल दिया, और औद्योगीकरण ने इस परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने विश्व की प्रगति को नया स्वरूप दिया है। यूरोप में 19वीं शताब्दी में आरंभ हुई औद्योगिक क्रांति ने न केवल आर्थिक दशा में क्रांतिकारी परिवर्तन किए बल्कि सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप अनेक नवीन अविष्कारों का जन्म हुआ। जिससे मशीनों एवं औद्योगिकी कारखानों का निमार्ण तेजी से होने लगा जिससे बड़ी मात्रा में वस्तुओं का उत्पाद होने लगा। मशीनों से जहां एक ओर उत्पादन क्षमता का विकास हुआ वहीं द्वसरी ओर इससे निर्मित वस्तुएं सस्ती थी। अत: इससे ग्रामीण उद्योग धन्धों एवं हस्तशिल्प सबसे अधिक प्रभावित हुआ फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों के लाखों कारीगर बेरोजगार हो गये। परिणाम स्वरूप इन कारखानों में रोजगार पाने के लिए श्रमिक के रूप में कार्य करने लगे । जिससे नगरों का विकास होता गया और नगरीकरण की प्रक्रिया ने जन्म लिया। इस प्रकार औद्योगिकरण एवं नगरीकरण एक द्वसरे के पूरक होते है। इन दोनो प्रक्रियाओं का समाजिक परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। अत: प्रस्तुत इकाई में आप इन दोनों प्रक्रियाओं एवं इनके प्रभाव को समझ सकेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे-

(1) औद्योगीकरण क्या है ?

(2) औद्योगीकरण के अर्थ एवं परिभाषा

(3) भारतीय समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव

(4) नगरीकरण क्या है?

(5) भारत मे नगरीकरण के प्रभाव

13.2 औद्योगीकरण का अर्थ एंव परिभाषाऐं

औद्योगीकरण शब्द एक प्रकार से यन्त्रीकरण का पर्यावाची है। जब मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग करके वस्तु के उत्पादन का प्रयास किया जाता है। तो उसे औद्योगीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। जिसके अन्तर्गत उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था एवं सम्बन्धित संस्थाओं का विकास एवं प्रसार होता है। समाजशास्त्र में इसका अर्थ उद्योगों के विकास एंव उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज के विकास एवं प्रसार होता है। समाजशास्त्र में इनका अर्थ उद्योगों के विकास एवं उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था के परिणामरूवरूप समाज के विभिन्न पक्षों में होने वाला परिवर्तनों के लिये किया जाता है।

औद्योगीकरण की परिभाषा (Definition of Industrialization)

औद्योगीकरण की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषा निम्न वर्णित है।

(i) पी० कांग, चांग, के अनुसार (Pee-Kong, Chang) में औद्योगीकरण का परिभाषा इन शब्दों में दी है। औद्योगीकरण एक प्रक्रिया है। जिसमें उत्पादन कार्यों में क्रमबद्ध परिवर्तन होते रहते है। इसके अंतर्गत वे मूलभूत परिर्वतन आते है। जो किसी नए बाजार की स्थापना एवं किसी नऐं क्षेत्र के विदोहन के साथ-साथ होते हैं यह एक प्रकार से पूँजी को गहन व व्यापक बना देने को प्रक्रिया है।

(ii) फेयरचाइल्ड के अनुसार (According to Fairchild) के अनुसार "औद्योगीकरण व्यवहारिक विज्ञान द्वारा प्रौधोगिक विकास की प्रक्रिया है। जिसमें शक्ति चालित यन्त्रों द्वारा बड़े स्तरों पर उत्पादन किया जाता है। अतः एक व्यापक बिक्री के लिये उत्पादन एवं उपयोगी सामाग्री को तैयार किया जाता है। इस बड़े स्तर का उत्पादन श्रम विभाजन के द्वारा होता है। "

(iii) बिल्बर्ट ई० यूर के अनुसार (According to kilbert E-Moral)

औद्योगीकरण के अर्थ को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है। "औद्योगीकरण से आशय आर्थिक अत्पादन के लिये शक्ति के बेजान (अ-मानवीय) श्रोतो के विरूद्ध प्रयोग से है। और उस सबसे भी है। जो संगठन यातायात और संचार के परिणामस्वरूप आगे आते है।

(iv) एम० एस० गोरे के अनुसार (According to M.S. Gore)

औद्योगिक शब्द उस प्रक्रिया को इंगित करता है। जिसमें हाथ से वस्तुओं का उत्पादन सत्य शक्ति चालित द्वारा शक्ति चालित द्वारा यन्त्रों के उत्पादन में बदल दिया जाता है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप कृषि की तकनीकि आवागमन तथा संचार और व्यापार एवं वित्त के संगठन में भी परिर्वतन आ जाता है।

औद्योगीकरण की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है। कि औद्योगीकरण का सम्बन्ध केवल आर्थिक उत्पादन से ही नही है। अपितु समाज की अन्य व्यवस्याओं जैसे की कृषि यन्त्रीकरण एवं संचार तथा आवागमन के साधनों के विस्तार से भी है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया साथ-साथ चलती रहती है। जितनी तेजी से औद्योगीकरण होता है। उतनी ही तेजी से नगरीकरण होता है।

13.3 भारतीय समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव

स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। स्वतन्त्र होने के पहले हम जहाँ छोटी-छोटी वस्तुओं के लिये भी विदेशों पर आश्रित रहा करतेये। वहीं अब अधिकांश वस्तुऐं भारत में ही बनती है। जितनी तेजी से औद्योगीकरण हुआ है। उतनी ही तेजी से नगरीकरण भी हुआ है। पढ़े-लिखे वर्ग में गतिशीलता की वृद्धि हुई है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर औद्योगीकरण के प्रभाव का विवरण दे सकते है।

13.3.1 (क) पारिवारिक जीवन पर प्रभावः-

औद्योगीकरण की प्रक्रिया निम्न प्रकार से पारिवारिक जीवन को प्रभावित करती है।

(i) संयुक्त परिवार का विघटनः-

औद्योगीकरण के कारण कुटीर उद्योग चौपट हो रहे है। क्योंकि हाथ से बनी वस्तुएँ मशीन से बनी वस्तुओं से प्रतियोगिता में पिछड़ जाती जाती है। अतः कुटीर उद्योगो में संलग्न अधिकांश ग्रामवासी औद्योगिक नगरों में जा बसे है। वे नगरो में अपने साथ-साथ अपने परिवारों को भी लेकर चले गये है। इस से संयुक्त परिवारो की जगह एकांकी परिवारों का विभाजित होना प्रारम्भ हो जाता है।

(ii) पारिवारिक नियन्त्रण में कमीः-

औद्योगीकरण ने परिवार के सदस्यों को अत्याधिक व्यस्त कर दिया है। वे परिवार से बाहर रहकर अनेक कार्यों में व्यस्त रहते है। घर से प्राप्त अनुपस्थित रहने के कारण और विचारों की स्वतन्त्रता के कारण पारिवारिक नियन्त्रण की स्वतन्त्रता के कारण पारिवारिक नियन्त्रण शिथिल हो जाता हैं। आधुनिक जटिल समाजों में औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण महत्वपूर्ण हो गया है।

(iii) कुप्रथाओं का अंतः-

औद्योगीकरण ने अनेक कुप्रथाओ का अंत किया है। पर्दा प्रथा और दास प्रथा का अंत हो चुका है।

(iv) स्त्रियों की दशा में सुधारः-

औद्योगीकरण और नगरीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप स्त्रियों को स्थिति में विशेष प्रभाव पड़ा है। अब परिवार में उनकी स्थिति दासी या नौकरानी की ना होकर गृहस्वामिनी की हो चुकी है।) विवाह के स्वरूप में परिवर्तनः-

अब विवाहों पर लगे पुराने धार्मिक बन्धन टूट रहे है। औद्योगीकरण और नगरीकरण के फलस्वरूप अंतर्जातीय विवहों की संख्या बढ़ रही है। माता-पिता की अत्यधिक व्यस्तता ने युवक-युवतियों को मिलने के पर्याप्त अवसर दिऐ है। फलस्वरूप प्रेम सम्बन्धों का प्रचलन बढ़ा है।

13.3.2 सामाजिक जीवन पर प्रभाव (Effect on social life)

औद्योगीकरण के सामाजिक जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव निम्नलिखित है।

(i) नगरों के आकार में वृद्धि औद्योगीकरण के कारण नगरों की संख्या और आकार में बड़ी तीव्रता से वृद्धि है। अनेक औद्योगिक नगर इतने जटिल हो चुकी है। नगरो की जनसंख्या वृद्धि ने अनेक गन्दी वस्तियों को जन्म दिया है।

(ii) सामुदायिक जीवन का हासः गाँवों में जो सामुदायिकता की भावना थी उसे औद्योगीकरण और नगरीकरण ने खत्म कर दिया है। घनी बस्तिओं में रहने वाले लोग एक दूसरे से अपरिचित रहते है। और तो और कार्य व्यस्तता ने उन्हें और भी व्यक्तिवादी बना दिया है।

(iii) फैशन और बाह्य आडम्बरों में वृद्धिः औद्योगीकरण के फलस्वरूप बाह्य आडम्बरों और तड़क भड़क में वृद्धि हुई है। प्रायः लोग देखा-देखी और तड़क-भड़क में अधिक विश्वास करने लगे है।

(iv) स्वार्थपरता में वृद्धिः सामुदायिक भावना के नष्ट हो जाने से व्यक्तिवादी और स्वार्थी भावनाओं का विकास तीव्रता से होता है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप सम्बन्धों में स्वार्थपरता में वृद्धि हुई है।

(v) वेश्यावृति को प्रोत्साहनः औद्योगिक प्रक्रिया के चलते अनेक ग्रामीण अपने परिवारों को छोड़कर नगरों में कारखानों में काम करने के लिये आते है। इस प्रकार पत्नी से दूर रहने के कारण वे अपनी काम पिपासा को शान्त करने के लिये वेश्याओं के पास जाते है। (vi) मानसिक तनावों में वृद्धिः औद्योगीकरण नगरों की भीड़-भाड़, कल-कारखानों का शोर, आय से अधिक व्यय, अत्यधिक श्रम और कृषियता तथा चका चौंध से मानसिक तनाव में वृद्धि हो जाती है।

(vii) बाल अपराधों में वृद्धिः नगरों में जब माता-पिता काम पर जाने लगते है तो बालको की ठीक प्रकार से देखभाल नही हो पाती है। जिसके परिणामरूवरूप वे बुरी आदतों के शिकार हो जाते है। औद्योगीकरण से गन्दी बस्तियों का विकास होता है। जिससे बाल-अपराधों की संख्या में वृद्धि होती है।

13.3.3 आर्थिक जीवन पर प्रभाव:-

औद्योगीकरण आर्थिक जीवन पर निम्न प्रकार से प्रभाव डालता है।

(i) पूँजीवाद का तीव्रता से विकास: बड़े-बड़े कारखानों या मिलों की स्थापना के लिये विशाल पूंजी की आवश्यकता होती है। एसी दशा में उत्पादन के साधनों पर केवल अमीर लोगों का प्रभाव हो जाता है।

(ii) विशाल पैमाने एवं उत्पादन: औद्योगीकरण के कारण विशाल पैमाने पर उत्पादन होने लगता है। जिससे उत्पादन बढ़ता है।

(iii) श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण:-विशाल पैमाने के उत्पादन के लिये श्रम-विभाजन होता है। श्रम विभाजन के फलस्वरूप प्रत्येक श्रमिक को एक विशेष कार्य में संलग्न रहना पड़ता है। एक कार्य करते-करते व्यक्ति उस कार्य विशेष में योग्यता स्थापित कर लेता है।

(iv) वर्गवाद की भावना का विकास:- विशाल औद्योगिक केन्द्रों में पूरा समाज दो वर्गो में विभाजित हो जाता है। एक वर्ग पूँजीपति वर्ग (ii) श्रमिक वर्ग

(v) रहन-सहन का स्तर ऊँचा होना: विशाल पैमाने पर सस्ता और सुन्दर माल उत्पन्न होने से व्यापार और वाणिज्य में पर्याप्त प्रगति हुई है। जिससें जनसाधरण का जीवन-स्तर पहले की अपेक्षा पर्याप्त ऊँचा उठ गया है।

(vi) धार्मिक जीवन पर प्रभाव: औद्योगीकरण धार्मिक जीवन को भी प्रभावित करता है। धर्म पर पड़ने वाले झगड़े को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते है।

(vii) धर्म का महत्व कम होना: औद्योगीकरण ने धर्म का महत्व काफी क्रम कर दिया है। औद्योगीकरण ने धार्मिक जीवन को अत्यधिक व्यस्त कर दिया है। अतः धर्म चिन्तन का अवसर उसे नही मिलता है। स्वार्थी प्रवृत्ति के विकास में भी धर्म के महत्व को कम कर दिया है।

(ii) लौकिक विचारों का महत्व: प्राचीनकाल में व्यक्ति दोनों (इहलोक और परलोक) दोनों की चिन्ता करता था। उसे भय लगा रहता था की संसारिक सुखो के चक्कर में कही मेरा (परलोक) ना बिगड़ जाऐं अतः वह नैतिक व धार्मिक आचरण पर बल देता था। परन्तु व्यक्ति अब इस जीवन में अपने शारीरिक सुखों को ही महत्व देता है।

(iii) भौतिक मूल्यों का महत्व: औद्योगीकरण ने भारतीओं के दृष्टिकोण को भौतिककवादी बना दिया है। अब अध्यात्मिक मूल्यों की अपेक्षा भौतिक मूल्यों से अधिक महत्व दिया जाता है।

13.3.4 पर्यावरण पर प्रभाव:-

औद्योगीकरण का पार्यावरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आज पार्यावाणीय प्रदूषण की जो गम्भीर समस्या प्रत्येक समाज में विकसित हो गयी है उसका कारण काफी समाज सीमा तक उद्योगों से निकलने वाली हानिकारक गैसों व अपशिष्ट तरल पदार्थ है। वायुमण्डल में कार्बन-डाई आक्साईड की बढ़ती हुई मात्रा पार्यावरण को प्रदूषित करती है। और वायु प्रदुषण का एक बड़ा कारक मानी जाती है। अतः औद्योगीकरण से आक्सीजन जैसी प्रणवायु के कम होने का खतरा है।

13.4 नगरीकरण

शहर या नगर शब्द से परिचय होते ही दिमाग में लम्बी-चौड़ी भीड़ भरी सड़कें, उँची-उँची इमारतें, चका-चौंध, तेज रफ्तार से भागते वाहनों का चित्र सामने आ जाता है। जीवन को भौतिक सुख प्रदान करने के

सभी साधन नगरों में उपलब्ध हैं और बेहतर जीवन नगरीकरण का परिचायक है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में ग्रामीण समाज या परिवेश का शहरी पर्यावरण में बदलना या ग्रामीणों के द्वारा नगरीय मूल्यों(न्तइंद टंसनमे) को अपने जीवन में अपनाना नगरीकरण कहलाता है। सामाजिक मानवशास्त्र के क्षेत्र में लोक संस्कृति(थ्वसा ब्नसजनतम) का शहरी संस्कृति(न्तइंद ब्नसजनतंस) में परिवर्तित होना नगरीकरण कहलाता है।

जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में जाना 'नगरीकरण' कहलाता है। इसके परिणामस्वरुप जनसंख्या का बढ़ता हुआ भाग ग्रामीण स्थानों में रहने की बजाय शहरी स्थानों में रहता है। थौमसन वारन ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की हैः "यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों, जो प्रमुख रुप से या पूर्ण रुप से कृषि से जुड़े हुये हैं, का उन समुदायों में जाना है जो साधारणतया (आकार में) उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिविधियां मुख्यरुप से सरकार, व्यापार, उत्पादन या इनसे सम्बद्ध कारबारों पर केन्द्रित हैं"। एन्डर्सन के अनुसार नगरीकरण एकतरफा प्रक्रिया न होकर दोतरफा प्रक्रिया है। इसमें केवल गांवों से शहरों में जाना नहीं होता, परन्तु इसमें प्रवासी के रुखों, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहार के संरुपों में भी परिवर्तन होता है। उसने नगरीकरण की पांच विशेषतायें बताई हैंः मुद्रा अर्थव्यवस्था, सरकारी प्रशासन, सांस्कृतिक परिवर्तन, लिखित अभिलेख, और अभिनव परिवर्तन।

नगरीय क्षेत्र' या 'नगर' क्या है? इस शब्द का प्रयोग दो अर्थ में होता है-जनसांख्यिकीय रुप में और समाजशास्त्रीय रुप में। पहले अर्थ में जनसंख्या के आकार, जनसंख्या की सघनता, और दूसरे अर्थ में विषमता, अवैयक्तिकता, परस्पर निर्भरता, और जीवन की गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित रहता है।

13.5 नगरीकरण की प्रक्रिया

नगरीकरण एक एसी ढांचाई प्रक्रिया है जो सामान्यतः औद्योगिकीकरण से संबंधित है। परन्तु एसा भी नहीं है कि नगरीकरण का स्वरुप हमेशा मात्र औद्योगिकीकरण ही रहा हो। नगरीकरण में हम छोटे-बड़े औद्योगिक और व्यावसायिक, वित्तीय और प्रशासनिक ढांचे को लेते हैं। यातायात और संचार के तकनीकी विकास, सांस्कृतिक और मनोरंजक गतिविधियां नगरीकरण की प्रक्रिया है।

पी0 एम0 हॉसर के अनुसार नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शहर की आबादी में वृद्वि होती है या किसी जगह में नये शहर का विकास होता है तो उस प्रक्रिया को नगरीकरण कहा जायेगा। हॉसर के इस विचार का समर्थन करते हुए होप टिजलेट के कहा कि ''नगरीकरण जनसंख्या के केन्द्रीकरण की एक प्रक्रिया है जो दो प्रकार से होती है- पहला, जनसंख्या के केन्द्रिकरण की संख्या में वृद्वि और दुसरा, किसी केन्द्र विशेष के आकार में वृद्वि। अतः नगरीकरण के संबंध में कहा जा सकता है कि नगरीकरण के अन्तर्गत दो प्रकार की प्रक्रियाएं हैं- पहला, शहरों की संख्या में गुणात्मक वृद्वि तथा दुसरा, शहर विशेष के आकार में वृद्वि। कोलर्स एवं निस्टुएन ने नगरीकरण को ग्रामीण जीवन से शहरी जीवन में परिणति बताया है।

पोकॉक ने नगरीकरण को एक एसी प्रक्रिया माना है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण लोग शहर की ओर प्रवास करते हैं और नगरों के प्रभाव के कारण उनके तौर-तरीकों में परिवर्तन आता है। पोकॉक के इस विचार का समर्थन नेल्स एंडर्सन ने किया किन्तु साथ ही यह भी कहा कि ग्रामीणों का शहर में जाना और परम्परागत जीवन में परिवर्तन ही नगरीकरण नहीं है, किन्तु साथ ही यह भी कहा कि ग्रामीणों का शहर में जाना और परम्परागत जीवन में परिवर्तन ही नगरीकरण नहीं है, बल्कि यह एक बृहद प्रक्रिया है। प्रवास के आभाव में भी नगरीकरण की प्रक्रिया संभव है। यदि गांव के लोग वहीं पर रहकर नगरीय जीवन शैली को अपनाते हैं तो वह भी नगरीकरण कहा जायेगा। लेकिन जनसंख्याशास्त्रियों ने एक स्वर में इस बात का खंडन करते हुए कहा कि नगरीकरण की प्रक्रिया में प्रवास की बात नहीं जुड़नी चाहिए। प्रवास और नगरीकरण दोनों अलग-अलग प्रक्रियाएं हैं। जनसंख्याशास्त्रियों का कहना है कि लोगों का गांव से शहर की ओर जाना प्रवास की प्रक्रिया है ना कि नगरीकरण की प्रक्रिया। यह बात अलग है कि दोनों एक-दुसरे को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं।

डेविस ने नगरीकरण को जनसंख्याशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है और कहा कि नगरीकरण समस्त जनसंख्या की नगरीय आबादी में अनुपातिक वृद्वि है या मात्र उस अनुपात में वृद्वि है। यहॉ पर डेविस का कहना यह है कि यदि ग्रामीण आबादी की तुलना में शहरों की आबादी में तेजी से वृद्वि

होती है तो उसे नगरीकरण कहा जायेगा, किन्तु यदि गांव और शहरों की आबादी समान अनुपात में बढ़ती है तो उसे नगरीकरण नहीं कहा जायेगा।

नगरीकरण को एक भौगोलिक प्रक्रिया के रुप में स्पष्ट करते हुए स्मेल्स ने कहा कि ''नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र और वहां के निवासियों का शहरी होना है।'' इस परिभाषा से नगरीकरण के तीन तत्व स्पष्ट होते हैं- 1. गांव से शहर की और पलायन, 2. भूदृष्य में परिवर्तन और 3. आवासीय वातावरण में परिवर्तन। गांव से शहर की ओर पलायन ने शहर की भूमि का विस्तार किया, उसका आकार बढा और सौन्दर्यकरण भी हुआ। मीचेल ने नगरीकरण की प्रक्रिया के साथ पेशे में परिवर्तन की बात कही है। मीचेल का कहना है कि कृषि पर आधारित पेशों को छोड़कर औद्योगिक पेशे को अपनाना भी नगरीकरण है।

13.6 नगरीकरण की विशेषताएं

नगरीकरण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. श्रम विभाजन और पेशों में अंतर- नगरों के अंतर्गत वृहत् पैमाने पर श्रम-विभाजन होता है। विभिन्न तरह के पेशों के अंतर्गत विशिष्टीकरण पाया जाता है। यदि एक तरफ कुछ लोग मजदूरी करते हैं तो दूसरी तरफ कुछ लोग बड़े-बड़े शल्य चिकित्सक भी होते हैं, कुछ अनपढ़ हैं तो कुछ उच्च कोटि के विद्वान भी, कुछ आदमी हस्तनिर्मित सामान बेच रहे हैं तो कुछ आधुनिक कल-कारखानों में बनी परिष्कृत चीजों का भी प्रयोग कर रहे हैं।

2. कार्य के लिए मशीनों पर निर्भरता- नगरों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए लोग मशीनों पर अपेक्षाकृत अधिक निर्भर करते हैं जो आधुनिकता का भी परिचायक है। प्रायः वैसी मशीनों पर जिनका संचालन तेल या बिजली से होता है।

3. आदर्शों और मूल्यों में परिवर्तन- शहरी जीवन में परम्परागत आदर्शो एवं मूल्यों से लोगों के व्यवहारों का नियन्त्रण बहुत कम होता है। प्राथमिक समूह गौण होने लगते हैं तथा द्वितीयक समूह की प्रधानता बढ़ जाती है। लोगों के आपसी सम्बन्ध बहुत छिछले और अस्थायी हो जाते हैं।

4. प्रवास और सामाजिक गतिशीलता में लचीलापन- नगरों में प्रवास और सामाजिक गतिशीलता की प्रवृत्ति बहुत अधिक पायी जाती है। नगरों के लोग आसानी से एक जगह से दूसरी जगह या एक शहर से दूसरे शहर जाने के लिए तैयार रहते हैं। उन्हें अपने स्थान से ग्रामीण लोगों की तरह कोई गहरा लगाव नहीं होता है। बेहतर अवसर की खोज में एक पेशे से दूसरे पेशे में भी जाने को तैयार रहते हैं। वे समान किस्म के पेशे में जगह बदलने में भी नहीं हिचकते हैं। सामाजिक स्थिति एवं मान-सम्मान के लिए लोग स्थान और पेशे में परिवर्तन के लिए तत्पर रहते हैं।

5. पर्यावरण में परिवर्तन- शहरी पर्यावरण साधारणतया मानव निर्मित होता है और वह परिवर्तनशील भी होता है। जैसे-जैसे आर्थिक विकास होता है तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आता है वैसे-वैसे पर्यावरण में भी परिवर्तन आता रहता है। कभी शहरों के अंतर्गत हल्के वाहनों, साइकिल और रिक्शा जैसे वाहनों की प्रधानता थी तो आज विभिन्न प्रकार के मोटरकार, स्कूटर, हवाई जहाज और रेलगाड़ी दिखाई पड़ते हैं। सौ साल के अंतराल में शहरों में इतना अधिक परिवर्तन आ जाता है कि हमारी ऑखें चौंधिया जाती हैं। लेकिन गॉव सौ साल के अंतराल में भी वैसा का वैसा ही बना रह जाता है।

6. समय की महत्ता- शहरों में लोगों का जीवन घड़ी की सुई से निर्धारित होता है। समय से लोग दफ्तर जाते हैं और समय से घर वापस आते हैं। विद्यार्थी भी समय के अनुसार वर्ग में जाते हैं और समय से वर्ग से बाहर निकलते हैं। ऐसा लगता है कि शहरों में लोग समय के गुलाम होते हैं। हमारे रोजमर्रे के जीवन में समय की इतनी महत्त होती है कि हम सारा काम-काज घड़ी देखकर ही करते हैं। शहरी लोग किसानों की तरह अपने काम में स्वच्छंद नहीं होते हैं। हमारे व्यस्त जीवन में वक्त की काफी पाबंदियॉ होती हैं।

7. परिवर्तनशीलता और समायोजन की क्षमता- शहरी जीवन में लोगों में एक प्रत्याशा की मनोवृत्ति पाई जाती है। जब कभी भी शहरों में कुछ परिवर्तन होता है तो उससे वहॉ के लोगों को ऐसा लगता है कि वहॉ कुछ और भी परिवर्तन होने जा रहा है। जैसे-जैसे शहरों में परिवर्तन आता है, वैसे-वैसे वहॉ लोग भी बदलते जाते हैं क्योंकि शहरी लोगों में समायोजन की क्षमता अधिक पायी जाती है। यथार्थ तो यह है कि शहरी लोग कुछ ज्यादा ही परिवर्तन पसंद करते हैं। शहर के लोग इतने परिवर्तन प्रेमी होते हैं कि जब अक्सर परिवर्तन नहीं दिखायी देता है तो उन्हें कुछ अच्छा महसूस नहीं होता है।

8. कागजी और कानूनी कार्यवाही पर अधिक विश्वास- शहरी जीवन में हम मौखिक वादों के आधार पर व्यवहार कम करते हैं। हर कार्य के लिए रेकॉर्ड, कानून, गवाह, लिखित संविदा का सहारा लेते हैं। जिस तरह बड़े-से-बड़े काम भी गॉवों के अंतर्गत अलिखित या मौखिक होते हैं उस तरह की बात शहरों में नहीं पाई जाती है। शहरों के अंतर्गत इतना अधिक अविश्वास या बेईमानी है कि हम हर कार्य को लिखकर ही सम्पन्न करना पसंद करते हैं।

अगर हम आधुनिक नगरीकरण की बात करें तो इसकी विशेषताओं में हमें औद्योगीकरण नजर आता है। औद्योगीकरण के कारण ही नगरों की संख्या में वृद्धि हो रही है। उद्योग और व्यवसाय के कारण कई नगर आपस में इस प्रकार जुड़ जाते हैं कि वो एक ही नगर की तरह दिखाई देते हैं। एसे नगरों की जनसंख्या यदि करोंड़ों में हो तो उसे नगरीय श्रंखला या उपनगरीय समूहन(ब्वदनतइंजपवद) कहा जाता है। आधुनिक नगरीकरण के संबंध में यह भी कहा जा सकता है कि नगरीकरण का विकास महानगरों पर आधारित हो रहा है। आधुनिक नगरीकरण के कारण विश्व स्तर पर शहर-गॉव प्रवास की प्रक्रिया में बहुत अधिक बढोत्तरी हुई है। लोग गॉवों की तरफ से शहरों की ओर आ रहे हैं। महानगरों में हर स्तर पर रोजगार के अवसर और औद्योगीकरण के विकास से रोजगार की सम्भावनाओं ने गॉव से शहरों की ओर प्रवास को बढाया है। आधुनिक नगरीकरण ने हमारी संस्कृति और परम्पराओं को विश्व स्तर पर प्रभावित किया है। शहरीकरण ने लोगों के जीवन के मापदण्ड और मूल्यों को बदल दिया है।

13.7 भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव

भारत में नगरीकरण या बढते नगरों का गहरा सामाजिक प्रभाव हैं। भारत एक ग्राम-प्रधान देश है, यहॉ के लोगों के अपने रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, सामाजिक बंधन, सामाजिक और पारिवारिक मर्यादाएं हैं। किन्तु नगरों और महानगरों की आधुनिक संस्कृति ने यहॉ के समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। भारत में नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव को हम निम्नलिखित विन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

1.परिवार और रिश्तेदारी- नगरीकरण केवल परिवार के ढांचे को ही प्रभावित नहीं करता परन्तु वह परिवार के आन्तरिक और अन्तर-परिवार के सम्बन्धों और उन कार्यों को जो परिवार करता है को भी प्रभावित करता है। शहरी परिवारों पर आई.पी.देसाई, कपाडिया और एलन रास जैसे विद्वानों द्वारा किये गये आनुभविक अध्ययनों ने बतलाया है कि शहरी संयुक्त परिवार का स्थान धीरे-धीरे एकाकी परिवार ले रहा है, परिवार का आकार सिकुड़ रहा है और रिश्तेदारी के सम्बन्ध केवल दो या तीन पीढ़ी तक ही सीमित हो गये हैं।

2. नगरीकरण और जाति- नगरीकरण, शिक्षा और व्यक्तिगत उपलब्धि और आधुनिक प्रस्थिति की ओर अभिमुखीकरण का विकास जाति की पहचान को कम करता है। नगर के लोग ऐसे संबंधों के जाल में भाग लेते हैं जिनमें कई जातियों के व्यक्ति होते हैं। रजनी कोठारी के अनुसार, व्यक्ति के प्रति वफादारी का स्थान एक दूसरे को काटने वाली वफादारियों ने ले लिया है आन्द्रे बितेइ ने कहा है कि पाश्चात्य रंग में रंगे हुये अभिजन वर्ग के बंधन जाति के बंधनों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

3. नगरीकरण और महिलाओं की स्थिति- महिलाओं की प्रस्थिति ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक ऊंची है। तुलनात्मक रूप से शहरी महिलाएं अधिक शिक्षित एवं उदार है। 1991में ग्रामीण क्षेत्रों के 25 प्रतिशत साक्षर महिलाओं के विपरीत शहरी क्षेत्रों में 54 प्रतिशत महिलाएं साक्षर थीं। उनमें से कुछ कार्यरत भी थीं। इस प्रकार उन्हें न केवल अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की जानकारी थी अपितु वे अपने अधिकारों का उपयोग अपने को अपमानित और शोषित होने से बचने में भी करती थीं। नगरों में लड़कियों के विवाह की औसत आयु भी गांवों के लड़कियों की विवाह की औसत आयु से अधिक थी। लेकिन वर्तमान में जहॉ नगरीकरण ने महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की और शिक्षा ने उन्हें अपने अधिकारों के लिए जागरुक किया वहीं नगरों में बढ़ते अपराधों से महिलाएं हिंसा का शिकार भी हो रहीं हैं। नगरों और महानगरों की ओर शिक्षा और रोजगार के लिए महिलाओं पलायन ने नगरों के लिए उनकी सुरक्षा एक बड़ी चुनौती है। एक ओर नगरों ने जहॉ महिलाओं को आर्थिक निर्भरता प्रदान की है वहीं उनकी सुरक्षा और आवास की व्यवस्था नगरों के लिए एक बड़ी चुनौती भी है।

4. नगरीकरण और परम्पराएं- परम्पराएं ग्रामीण समाज की प्रमुख पहचान है। परम्पराएं व्यक्ति के विकास और उसके समाज के विकास को प्रदर्शित करती हैं। नगरीकरण ने अपनी संस्कृति के अन्तर्गत इन परम्पराओं को समाप्त सा ही कर दिया है। नगरीकरण जो आधुनिकीकरण का भी परिचायक है, ने अपनी भौतिकतावादी संस्कृति में परम्पराओं को दर किनार कर दिया है। नगरीकरण में परम्पराएं शून्य हो गयी हैं और अस्तित्व खो रही हैं।

5. नगरीकरण और ग्रामीण जन-जीवन- पिछली आधी शताब्दी से हमारे देश में शहरी विकास के कारण ग्रामीण व्यक्तियों का ऐसे शहरी क्षेत्रों में पलायन हुआ जहां पर पहुंचने के लिए जनोपयोगी सेवाएं सुगमता से उपलब्ध थीं। कई व्यक्ति शहरों में इसलिए गये क्योंकि वहां रोजगार उपलब्ध थे। जो अभी भी गांवों में बसे हैं उन्हें भी शहरी जीवन की सुविधाएं उपलब्ध हैं यद्यपि वे शहरी केन्द्रों से मीलों दूर हैं। उत्कृष्ट राजमार्ग, बसें व मोटरें, रेडियो, टेलीविजन और अखबार ग्रामीणों को शहरी रोजगार और शहरी आवास और ग्रामीण सम्पर्क ने न केवल सामाजिक संरूपों में कुछ परिवर्तन किये हैं परन्तु जीवन की एक नई शैली से समन्वय भी स्थापित किया है। ग्रामीणों को अब शहरी जीवन के बारे में अधिक जानकारी है और उससे वे इस प्रकार प्रभावित हुये हैं कि अब वो जाति, धर्म आदि को अत्यधिक महत्व नहीं देते। वे अपने दृष्टिकोण में अधिक उदार हओ गये हैं। वे अब अलगाव में नहीं रहते। कई किसानों ने खेती की नई पद्धतियॉ अपना ली हैं, न केवल उनके मूल्यों और आकांक्षाओं में परिवर्तन आया है परन्तु उनके व्यवहार में भी परिवर्तन हुआ है। जजमानी व्यवस्था कमजोर हो रही है और अन्तर्जातीय एवं अन्तर्वर्गीय संबंधों में परिवर्तन आ रहा है। विवाह, परिवार और जाति की पंचायतों की संस्थाओं में भी परिवर्तन है। बीमारियों के उपचार के लि प्रारम्भिक तरीकों पर निर्भर रहने के बजाय वे अब आधुनिक मशीनों और दवाईयों का प्रयोग करते हैं। चुनावों में भी इसी प्रकार वे एक प्रत्याशी की धार्मिक अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा के स्थान पर उसकी क्षमताओं और राजनैतिक पृष्ठभूमि को महत्व देते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि गांवों में अब परम्पराओं का कोई महत्व नहीं है। व्यक्तिवाद परिवारवाद का स्थान नहीं ले पाया है और न ही धर्मनिरपेक्षता उस बन्धन का स्थान ग्रहण कर पायी है जो धार्मिक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में जाना 'नगरीकरण' कहलाता है। सत्य/असत्य

2. 'नगरीय क्षेत्र' या 'नगर' शब्द का प्रयोग जनसांख्यिकी और समाजशास्त्रीय रुप में होता है। सत्य/असत्य

3. किस विचारक ने नगरीकरण को ग्रामीण जीवन से शहरी जीवन में परिणति बताया है?

क. पी0 एम0 हॉसर ख. होप टिजलेट

ग. कोलर्स एवं निस्अुएन घ. इनमें से कोई नहीं

4. किस विचारक ने नगरीकरण को भौगोलिक प्रक्रिया के रुप में माना है?

क. स्मेल्स ख. डेविस

ग. नेल्स एंडर्सन घ. हॉसन

13.8 सारांश

इस प्रकार सम्पूर्ण अध्याय की विवेचना के अधार पर कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण और नगरीकरण ने भारतीय समाज के विभिन्न आयामों को प्रभावित किया है। एक प्रकार से औद्योगीकरण एवं नगरीकरण एक द्वसरे की पूरक प्रकियायें मानी जा सकती है। एक ओर औद्योगीकरण ने आर्थिक और तकनीकी विकास को गति दी है, वहीं द्वसरी ओर नगरीकरण ने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को जन्म दिया है। यद्यपि इन प्रक्रियाओं ने कई चुनौतियाँ भी प्रस्तुत की हैं, जैसे पर्यावरणीय प्रदूषण और सामाजिक असमानताएँ, फिर भी उन्होंने समाज के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। नगरीकरण या नगरों का बसना औद्योगीकरण की एक प्रक्रिया है। नगरीकरण को औद्योगिकीकरण के रुप में भी देखा जा सकता है। रोजगार की सम्भावना और बेहतर जीवन की तलाश नगरों में आकर समाप्त हो जाती है।

इस अध्याय में प्रस्तुत विवेचना से स्पष्ट होता है कि औद्योगीकरण और नगरीकरण ने भारतीय समाज को एक नया रूप दिया है और आगे भी ये प्रक्रियाएँ विकास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहेंगी।

13.9 पारिभाषिक शब्दावली:-

नगरीकरण- नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र शहरी क्षेत्रों में परिवर्तित हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप शहरों का विकास और विस्तार होता है।

औद्योगीकरण- औद्योगीकरण एक अर्थव्यवस्था को मुख्य रूप से कृषि और शारीरिक श्रम पर आधारित उद्योग से मशीन विनिर्माण के प्रभुत्व वाली अर्थव्यवस्था में बदलने की प्रक्रिया है।

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. ग 4. स्मेल्स

5. घ

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा० ऐ०के० पन्त, ब्यावसायिक पर्यावरण, प्रकाशक-लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।

2. डा0 रामनाथ शर्मा एवं डा० राजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति। प्रकाशक-एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (नई दिल्ली)।

3. डा० एस०एम० कपूर एवं डा० एस०के० मित्तल, इण्टरमीडिएट समाजशास्त्र प्रकाशक-चित्रा प्रकाशन, मेरठ।

4. इन्द्रजीत सिंह, श्रमिक विधियाँ, सेन्ट्रल पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन- जे0पी0 सिंह

भारतीय समाज- संगीता वर्मा

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन- डॉ0 संजीव महाजन

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक समस्याएं- रामनाथ शर्मा और राजेन्द्र शर्मा

सामाजिक समस्याएं- राम आहुजा

13.13 निबंधात्मक प्रश्न

1-औद्योगीकरण के अर्थ को समझाइयें।

2- औद्योगीकरण को परिभाषित करते हुयें इसके सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को बताइयें।

3- नगरीकरण से आप क्या समझते हैं? नगरीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

4- नगरीकरण की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए भारत में नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव बतलाइए।

इकाई 14: संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण
Culturalization and Westernization

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना
14.1 अध्ययन के उद्देश्य
14.2 संस्कृतिकरण की अवधारणा
14.3 संस्कृतिकरण की विशेषताएँ
14.4 संस्कृतिकरण की सहायक दशाएँ
14.5 संस्कृतिकरण का प्रभाव
14.6 पश्चिमीकरण की अवधारणा

14.7 पश्चिमीकरण की प्रमुख विशेषताएँ
14.8 भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण का प्रभाव
14.9 संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण में अन्तर
14.10 सारांश
14.11 शब्दावली
14.12 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
14.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावनाः–

शिक्षार्णियों हम जब भी सामाजिक परिवर्तन की बात करते है तो एम. एन. श्रीनिवास का नाम प्रमुख समाजशास्त्रियों में लिया जाता है, भारत में समाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणा का विशेष महत्व है। जिसने समाज को परिवर्तित करने में अपनी एक प्रमुख भूमिका का निवर्हन किया है, जैसा कि हम सब जानते है कि जब भी समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में परिवर्तन आता है तो उसके लिए आन्तरिक और बाह्य दोनों कारक उत्तरदायी होते है, संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण दोनों इसके उदाहरण मानें जा सकते है, इस सम्बन्ध में डॉ0 जी0के0 अग्रवाल का मानना है कि ''संस्कृतिकरण एक ऐसी अवधारणा है जो सामाजिक परिवर्तन के आन्तरिक स्त्रोत के रूप में स्पष्ट होती है, जबकि पश्चिमीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो बाह्य कारक के रूप में सामाजिक – सांस्कृतिक परिवर्तन को स्पष्ट करने में सहायक है।''[1]

एम. एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक ''सोशल चेन्ज इन माडर्न इण्डिया'' में संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणा का विस्तार से उल्लेख किया है, आपका मानना है कि पश्चिमीकरण बाह्य कारक के रूप में तथा संस्कृतिकरण आन्तरिक कारक के रूप में समाज की विभिन्न संरचनाओं में परिवर्तन उत्पन्न करती है, अतः हम जब भी परिवर्तन की बात करते है तो इस सम्बन्ध में इन दोनो प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक हो जाता है। जो समाज में परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए प्रमुख कारक के रूप में अपना विशेष स्थान रखते है। अतः प्रस्तुत अध्याय में हम संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण को विस्तार पूर्वक समझने का प्रयास करेगें।

14.1 अध्ययन के उद्देश्यः–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके द्वारा समझना सम्भव होगा।

1. संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणा
2. संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की विशेषताएँ
3. संस्कृतिकरण की प्रमुख सहायक दशाए
4. संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण का प्रभाव
5. संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण में अन्तर
6. भारतीय समाज में इन दोनों के प्रभाव

14.2 संस्कृतिकरण की अवधारणा

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में ''जाति की एक बन्द वर्ग'' कहा गया है अर्थात जाति व्यवस्था के अर्न्तगत प्रत्येक जाति को अपनी जाति द्वारा निर्धारित नियम, व्यवहार एवं व्यवसाय के अनुरूप ही अपना जीवन निवर्हन करना अनिवार्य है। परन्तु जैसे – जैसे समाज में सभ्यता का विकास हुआ अनेक जातियों ने अपनी सामाजिक– आर्थिक स्थिति को सुदृढ एवं बेहतर जीवन की लालसा से अपने से उच्च जातियों की बेहतर जीवन शैली एवं अनेक सांस्कृतिक विशेषताओं, जो उनके जीवन स्तर को उच्च उठा सके, आदि विशेषताओं को अपनाना आरम्भ कर दिया, मुकर्जी के अनुसार ''जीवन शैली में होने वाले इस परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए आरम्भ में एम0एन0 श्रीनिवास ने इसे बाह्यमणीकरण शब्द से सम्बोधित किया, लेकिन बाद में उन्होने पाया कि अनेक क्षेत्रों में निम्न जातियों द्वारा किसी भी दूसरी उच्च जाति की संस्कृति और कर्मकाण्डों का अनुकरण करके अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसी कारण श्रीनिवास ने परिवर्तन की इस प्रक्रिया के लिए बाहमर्णीकरण की जगह संस्कृतिकरण शब्द का प्रयोग किया''।[2]

संस्कृतिकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक ''दक्षिण भारत के कुर्गो में धर्म तथा समाज'' में संस्कृतिकरण को परिभाषित करते हुए एम0एन0 श्रीनिवास ने लिखा है कि ''संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक निम्न हिन्दू जाति अथवा कोई जनजाति या अन्य समूह किसी उच्च और प्रायः द्विज जाति के समान अपने रीति – रिवाजों, कर्मकाण्डों विचारधारा और जीवन शैली को बदलने लगता है।[3]

इस प्रकार यदि हम सामान्य शब्दों में संस्कृतिकरण की अवधारणा को समझने का प्रयास करे तो जब कोई भी निम्न जाति, उच्च जातियों के व्यवहार, धार्मिक कर्मकाण्डों एवं जातिगत पवित्र नियमों को अपने व्यवहार में शामिल कर उनका अनुकरण करने लगती है तब ऐसे परिवर्तन को संस्कृतिकरण कहा जाता है, इसे स्पष्ट करते हुए प्रो0 श्रीनिवास का मानना है कि ''संस्कृतिकरण का सम्बन्ध मूल रूप से उन कर्मकाण्डों अथवा व्यवहार के तरीकों का अनुकरण करने से है जो सांस्कृतिक रूप से किसी उच्च समूह की वृहत् परम्पराओं से सम्बन्धित होते है।''[4]

संस्कृतिकरण को विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए प्रो0 मुकर्जी का मानना है कि पाप – पुण्य, कर्म में विश्वास, संस्कारों की पूर्ति माया और मोक्ष आदि ऐसी अवधारणाएँ है जिसका सम्बन्ध हिन्दुओं की वृहत् परम्पराओं से है। जब एक निम्न सामाजिक स्थिति वाला समूह इन परम्पराओं का अनुकरण करके अपनी जीवन शैली को बदलने लगता है, तब उसकी सामाजिक स्थिति पहले की तुलना में ऊची हो जाती है, वृहत् परम्पराओं से सम्बन्धित सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाने से पैदा होने वाली परिवर्तन की इसी प्रक्रिया का नाम संस्कृतिकरण है।''[5]

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृतिकरण एक प्रक्रिया है जिसमें निम्न जाति उच्च जाति की सांस्कृतिक परम्पराओं और व्यवहार का अनुकरण करने लगती है और उनके जैसा बनने का प्रयास करती है. प्रारंभ में, उच्च जाति इसका विरोध करती है, लेकिन समय के साथ, उनके व्यवहार और उच्च स्थिति को स्वीकार किया जाता है।

14.3 संस्कृतिकरण की विशेषताएँ

स्स्कृतिकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित है।

1. संस्कृतिकरण एक जातीय गतिशीलता होती है क्योकि इस प्रक्रिया से केवल निम्न जाति के व्यवहार एवं जातीय कर्मकाण्डो में परिवर्तन होता है, जाति व्यवस्था में कोई भी परिवर्तन नही होता ।
2. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया निम्न जाति की प्रस्थिति में भी परिवर्तन करती है।
3. संस्कृतिकरण केवल निम्न जाति द्वारा उच्च जाति की सांस्कृतिक विशेषताओं के अनुकरण से ही सम्बन्धित होता है, राजनैतिक या आर्थिक विशेषताओं से नही।

4. संस्कृतिकरण एक सामूहिक प्रक्रिया होती है, अर्थात किसी भी निम्न जाति के बहुत से लोग समूह में रहकर उच्च जाति की सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाने का प्रयास करते है।
5. सस्कृतिकरण के द्वारा निम्न जाति की प्रस्थिति में तो परिवर्तन परिलक्षित होता है परन्तु इसमें एक या दो पीढ़ी का समय लग जाता है। तत्पश्चात ही समाज द्वारा उनकी उच्च प्रस्थिति को स्वीकार किया जाता है।
6. सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया सार्वभौमिक होती है जो प्रत्येक समाज एवं जाति में पायी जाती है।
7. अनुकरण की प्रक्रिया में निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं जैसे – जनेऊ धारण करना, संस्कारों के अनुरूप जीवन यापन, मांसाहारी भोजन का त्याग, शाकाहारी भोजन का उपयोग, अपवित्र पेशे या व्यवसाय का त्याग, तीर्थ एवं धार्मिक यात्राओं को महत्व देना, एवं धार्मिक कर्मकाण्डो के अपनाना इत्यादि को प्रमुख स्थान एवं अनुकरण करना है।
8. सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया में कई बार निम्न जातियों को उच्च जातियों के विरोधा का सामना भी करना पड़ता हैं।

14.4 संस्कृतिकरण की सहायक दशाएँ

एम0एन0 श्रीनिवासन ने संस्कृतिकरण की कुछ सहायक दशाओं का भी उल्लेख किया है जो निम्नवत है। [6]

1. तीर्थ – स्थान तथा मठ – तीर्थ – स्थान, मठ, मन्दिर तथा धार्मिक केन्द्र सभी लोगों में सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रसार करने में व्यापक भूमिका निभाते है। निम्न जातियाँ इनसे आकर्षित होकर उच्च जातियों के इनसे सम्बन्धित विशेषताओं को गृहण करने लगती है।
2. राजनीतिक व्यवस्था – ऐतिहासिक तौर पर कहाँ जा सकता है कि एक विशेष काल में जिस जाति अथवा वर्ग का राजनीतिक व्यवस्था और शासन पर अधिकार रहा, वह दूसरी जातियों के लिए संस्कृतिकरण का आदर्श बन गयी।
3. यातायात और संचार के साधन – यातायात और संचार के साधनों द्वारा निम्न और उच्च जातियों के बीच सांस्कृतिक आदान प्रदान की प्रक्रिया बढ़ने लगी।

4. पश्चिमी शिक्षा – पश्चिमी शिक्षा एक धर्म निरपेक्ष शिक्षा थी जिसने परम्परागत धार्मिक मूल्यों को परिवर्तित किया। पश्चिमी मूल्यों पर आधारित शिक्षा के कारण निम्न जातियों ने उन व्यवहारों को अपनाना आरम्भ किया जो जाति के नियमों के अनुसार पहले उनके लिए वर्जित थे।
5. लोकतान्त्रिक व्यवस्था – लोकतान्त्रिक, धर्मनिरपेक्ष तथा समताकारी व्यवस्था ने संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया, परिणामस्वरूप निम्न एवं पिछड़ी हुई जातियों को किसी भी धार्मिक क्रिया अथवा एक विशेष ढ़ग से जीवन यापन की स्वतन्त्रता प्राप्त होने लगी। अपनी स्थिति को सुधार करने के लिए निम्न जातियों ने उन सभी व्यवहार प्रतिमानों को ग्रहण करना आरम्भ कर दिया जिनका सम्बन्ध केवल उच्च जातियों से था।
6. समताकारी कानून – संविधान द्वारा धर्म, जाति वंश तथा लिंग पर आधारित सभी भेदभाव समाप्त होने, अस्पृश्यता उन्मूलन, शिक्षा एवं नौकरिया प्राप्त करने की सुविधाये, आदि दशाओं ने भी संस्कृतिकरण को प्रोत्साहन प्रदान किया।
7. औद्योगीकरण एवं नगरीकरण – औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के कारण साथ काम करने एवं साथ – साथ जीवन यापन करने से निम्न जातियो को उच्च जातियों की जीवन शैली का अनुसरण करने का अवसर प्राप्त हुआ जिसने सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया।
8. समाज – सुधार आन्दोलन – भार में आर्य समाज, प्रार्थन समाज तथा गाधीजी के प्रयत्नों से भी निम्न जातियों को संस्कृतिकरण के अवसर प्राप्त हुए।

   इस प्रकार स्पष्ट है कि उपरोक्त विभिन्न प्रकार की ऐसी सहायक दशाये है जिन्होने संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करी।

14.5 संस्कृतिकरण का प्रभाव

भारतीय समाज में समाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में यदि बात करे तो संस्कृतिकरण ने समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया मे एक अह्म भूमिका का निवर्हन किया है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप समाज में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. परम्परागत जीवन शैली मे परिवर्तन – परम्परागत धार्मिक रीति रिवाजों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म एवं जाति के आधार पर ही अपना जीवन यापन की अनुमति प्राप्त थी। जातिगत संस्करण में दूसरी जातियों के क्रियाकलापों में हस्तक्षेप करना पूर्णतया वर्जित माना जाता था, कलान्तर में नवीन संवैधानिक अधिनियमों, योजनाओं एवं सामाजिक व वैचारिक चेतना ने संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को जन्म एवं तीव्रता प्रदान करी। परिणामस्वरूप निम्न जाति के लोगों की जीवन शैली मे परिवर्तन आने लगे और वह उच्च जातियों का अनुसरण करने लगी।
2. जातिगत नियमों में शिथिलता – संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने न केवल निम्न जातीयों की जीवन शैली में परिवर्तन किया बल्कि जातिगत नियमों को भी शिथिलता प्रदान करो अर्थात परम्परागत जातिगत नियमों की कठोरता में कमी आने लगी।
3. सामाजिक शक्ति एवं अधिकारों में परिवर्तन – जैसा कि हम सब जानते है कि भारतीय परम्परागत समाज में प्रत्येक जाति को जातिगत संस्करण के आधार पर अधिकार एवं शक्तियॉ प्राप्त थी जिनके अनुरू॰ उन्हे समाज में एक प्रस्थिति प्राप्त होती थी। इसके आधार पर समाज में शक्तियों का केन्द्रीयकरण हो गया। संस्कृतिकरण के कारण शक्ति सम्पन्न जातियों के अधिकारों एवं शक्ति में परिवर्तन होने लगा, इस सन्दर्भ में श्रीनिवास का मानना था कि संस्कृतिकरण के फलस्वरूप निम्न जातियों की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई लेकिन यह प्रतिष्ठा ब्राहमण और राजपूत जैसी उच्च जातियों की प्रतिष्ठा को गिराकर बढ़ी है। [7]
4. सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि – संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक गतिशीलता में भी वृद्धि उत्पन्न की है क्योकि अनुकरण की प्रक्रिया में निम्न जाति, द्विज जाति के रीति – रिवाज विचारधारा एवं मूल्यों को अपनाने का प्रयत्न करता है अपनी प्रस्थिति में परिवर्तन की चाह में कई बार अपने परम्परागत स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर बसने का प्रयास करता है।

बोध प्रश्न – 01

1. भारतीय समाजिक व्यवस्था में जाति को क्या कहा गया है।
2. जीवन शैली में होने वाले परिवर्तन को आरम्भ में एम0एन0 श्रीनिवास ने किस शब्द का प्रयोग किया था।
3. संस्कृतिकरण का सम्बन्ध किसके अनुकरण से सम्बन्धित है।

4. एम0एन0 श्रीनिवास की पुस्तक का क्या नाम है। जिसमें उन्होने संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणा का उल्लेख किया है।
5. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में निम्न जातियों या जनजातियॉ किनका अनुकरण करके अपनी स्थिति को ऊॅचा उठाने का प्रयत्न करती है।

14.6 पश्चिमीकरण की अवधारणा :–

आधुनिक भारत में परिवर्तन के सन्दर्भ में यदि बात करें तो पश्चिमीकरण की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पश्चिमीकरण नें भारतीय समाज के सामाजिक – सांस्कृतिकरण परिप्रेक्ष्यों में परिवर्तन लाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन किया है, वास्तव में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया पश्चिमीकरण सभ्यता एवं संस्कृति से उत्पन्न होने वाली अनेक प्रभावों के हमारे सम्मुख परिलक्षित करती है, यह प्रक्रिया संस्कृतिकरण की प्रक्रिया से भिन्न प्रवृति वाले प्रभावों को स्पष्ट करती है संस्कृतिकरण वास्तव में सामाजिक परिवर्तन के आन्तरिक स्त्रोत को प्रस्तुत करती है जबकि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया एक बाह्य कारक के रूप में परिवर्तन को स्पष्ट करती है।

पश्चिमीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए डा0 अग्रवाल का मानना है कि '' पश्चिमीकरण का अर्थ दो सन्दर्भो में स्पष्ट किया जाता है – एक अर्थ संकुचित है और दूसरा व्यापक, संकुचित अर्थो में पश्चिमीकरण का तात्पर्य भारत में अंग्रेजी राज्य के दौरान यहॉ उत्पन्न होने वाली परिवर्तन की उस प्रक्रिया से है जो इंग्लैण्ड की सांस्कृतिक विशेषताओं के प्रभाव का परिणाम थी। व्यापक अर्थ में पश्चिमीकरण का तात्पर्य पश्चिम क किसी भी देश के प्रभाव से उत्पन्न होने वाने परिवर्तनों से है। इस अर्थ में पश्चिमीकरण वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप किसी गैर – पश्चिमी समाज की संस्थाओं, विश्वासों, विचारधारा, प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों में पश्चिमी संस्कृति के अनुसार परिवर्तन होने लगता है।[8]

इसी प्रकार एम0एन0 श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक '' आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन'' में लिखा है कि भारत में सामाजिक परिवर्तन में लिखा है कि ''भारत में 150 वर्षों से भी अधिक बिट्रिश शासन के फलस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करने के लिए ही मैने ''पश्चिमीकरण'' शब्द का प्रयोग किया है। इसमें उन सभी परिवर्तनों का समावेश है जो प्रौद्योगिकी, विभिन्न संस्थाओं, विचारधारा और मूल्यों के विभिन्न स्तरों पर देखने को मिलते है। [9]

योगेन्द्र सिंह ने भी पश्चिमीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि '' पश्चिमीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मुख्य रूप से मानवतावाद तथा बुद्धिवाद जैसी विशेषताओं का समावेश होता है । इसका तात्पर्य है कि पश्चिमीकरण का सम्बन्ध केवल इंग्लैण्ड की संस्कृति के प्रभावों से ही नही है बल्कि पश्चिमी संस्कृति में जिस मानवतावाद और बुद्धिवाद पर बल दिया गया, उसी के प्रभाव की प्रक्रिया को पश्चिमीकरण कहना अधिक उचित है। मानवतावाद और बुद्धिवाद पर बल पश्चिमीकरण का प्रमुख अंग है, जिसने भारत में सामाजिक सुधार की प्रक्रिया आरम्भ की वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा संस्थानों की स्थापना राष्ट्रीयता का उद्‌य, नयी राजनीतिक संस्कृति तथा नेतृत्व पश्चिमीकरण के सह – उत्पाद है।[10]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आकर समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में होने वाले परिवर्तन को पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का जा सकता है।

14.7 पश्चिमीकरण की प्रमुख विशेषतायें

पश्चिमीकरण की प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. तटस्थता :– पश्चिमीकरण को एक तटस्थ अवधारणा के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है, क्योकि इस अवधारणा में पश्चिमी सभ्यता या संस्कृति के सम्पर्क में आने वाले परिवर्तनों को ही स्पष्ट किया जाता है। इस सदर्न्भ में डा0 श्रीनिवास जी का मानना है कि '' पश्चिमीकरण शब्द नैतिक रूप से तटस्थ है। यह परिवर्तन के अच्छे या बुरे होने को सूचित नही करता बल्कि इसका सम्बन्ध प्रत्येक उस परिवर्तन से है जिससे पश्चिमी समाजों के अनुकरण का बोध होता है। [11]

2. व्यापकता का गुण :– पश्चिमीकरण की अवधारणा में व्यापकता का गुण पाया जाता है क्योकि जब भी हम पश्चिमी संस्कृति या सभ्यता के सम्पर्क में आते है तो होने वाले परिवर्तन में भौतिक और अभौतिक '' परिवर्तनो का समावेश आवश्य होता है। इस सन्दर्भ में विद्वान कुप्पूस्वामी का मानना है कि '' पश्चिमीकरण का सम्बन्ध मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों से है –(क) व्यवहार सम्बन्धी पक्ष, जैसे – खान – पान, वेश – भूषा, शिष्टाचार के तरीके तथा व्यवहार प्रतिमान आदि, (ख) ज्ञान सम्बन्धी पक्ष, जैसे – विज्ञान, प्रौद्योगिकी और साहित्य आदि, (ग) सामाजिक मूल्य सम्बन्धी पक्ष, जैसे –

मानवतावाद, धर्म निरपेक्षता तथा समताकारी विचार। पश्चिम के प्रभाव से समाज के इन पक्षों में होने वाले परिवर्तन पश्चिमीकरण से सम्बन्धित है।[12]

3. प्रारूप में विभिन्नता का गुण :– पश्चिमीकरण के प्रारूप में विभिन्नता का गुण पाया जाता है, अर्थात इस प्रक्रिया में कोई भी एका प्रारूप दृष्टिगत नही होता, स्वतन्त्रता से पूर्व बिट्रिश शासनकाल में भारतीय समाज में इग्लैण्ड का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, स्वतन्त्र भारत में जब भारत का सम्बन्ध अन्य देशों जैसे 7 रूस और अमेरिका के साथ बढ़ा तब इन देशों का प्रभाव बढ़ने लगा।

4. जटिल एवं बहुआयामी प्रक्रिया का गुण :– पश्चिमीकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि यह एक जटिल एवं बहुआयामी प्रक्रिया है, क्योकि पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय समाज या संस्कृति में परिवर्तन सभी स्तरों में दृष्टिगत होता है। उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है कि पश्चिमीकरण ने जहॉ एक ओर जातिय संरचना में परिवर्तन हुआ वही दूसरी ओर धर्म, परम्परायें, रीति रिवाज, मूल्य एवं कला में भी अनेक परिवर्तन हुए।

5. चेतन एवं अवचेतन प्रक्रिया का गुण :– बिट्रिश शासनकाल के दौरान जब भारतीय समाज अंग्रेजो द्वारा लायी गयी पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आया तब चेतन रूप में इस संस्कृति की विशेषताओं को अपनाया गया, किन्तु धीरे–धीरे हमारे अचेतन मन मे भी इस संस्कृति ने धीरे–धीरे घर करना शुरू कर दिया और अनायास ही हम संस्कृति को आत्मसात करने लगे जो सामाजिक परिवर्तन का एक बड़ाा कारक बना, जिसने हमारे विचारों एवं व्यवहार के तरीको में भी जबरदस्त परिवर्तन कर दिया।

14.8 भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण का प्रभाव :–

पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए, जिन्हे संक्षेप मे निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1– सामाजिक जीवन मे परिवर्तन

1. पश्चिमीकरण ने भारतीय जाति व्यवस्था में परिवर्तन लाने मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन किया है। अंग्रेजी शासन काल से पूर्व में जातिगत नियम अत्यधिक कठोर थे। पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आकर व्यक्ति ने समाजिक समानता को अधिक महत्व

प्रदान किया, जिससे अधिकांश व्यक्तियों ने रूढ़िवादी विचारधाराओं का त्याग एवं विरोध करना आरम्भ कर दिया, जिसके पश्चात छूआछूत तथा अश्पश्यता का अन्त हो पाया।

2. पश्चिमीकरण ने वैवाहिक संस्था को भी परिवर्तित किया जिसके परिणामस्वरूप बाल–विवाह, बहुपत्नी विवाह, तथा अन्तर्विवाह जैसी कुरितिया समाप्त हो पायी साथ ही अपनी पंसद के जीवन–साथी के चुनाव को प्राथमिकता मिलने लगी वेचारिक स्वतन्त्रता से अन्तर्जातीय विवाह को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई साथ ही सह शिक्षा के कारण प्रेम विवाह में भी वृद्धि होने लगी।

3. पश्चिमीकरण के कारण महिलाओं की स्थिति में तेजी से सुधार होने लगा, पश्चिमी शिक्षा एवं संस्कृति ने उनमें एक नयी चेतना का विकास किया, जिससे वह अपने अधिकारो के प्रति भी सचेत होने लगी, परिणामस्वरूप महिलाओं में आत्मनिर्भरता बढ़ने के साथ–साथ निर्णय लेने क्षमता भी विकसित होने लगी।

4. पश्चिमीकरण ने व्यक्तियों के सांस्कृतिक व्यवहार को भी परिवर्तित करने का कार्य किया, पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आने के पश्चात खान–पान, वेशभूषा, और सांस्कृतिक व्यवहार में तो परिवर्तन आया ही साथ ही परम्परगत रीति–रिवाज, और त्योहारों में भी परिवर्तन होने लगा जैसे जन्मदिन पर केक काटना इत्यादि।

2– धार्मिक जीवन में परिवर्तन

1. पश्चिमीकरण से पूर्व भारतीय समाज में धार्मिक परम्पराओं एवं रीति–रिवाज का विशेष महत्व था जिसमें मुख्य रूप से भेद–भाव, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह में प्रतिबन्ध तथा एंसी अनेंक रूढ़िवादिता एवं कुरीतिया समाज में व्याप्त थी, जिन्हे धर्म के तौर पर अपनाना व्यक्ति के लिए अनिवार्य था, प्श्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में आने से समाज में व्याप्त इस प्रकार की रूढ़िया एवं अन्धविश्वास खण्डित होने लगे। धर्म सुधारकों जैसे राज राममोहन राय, महिर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर तथा श्री केशवचन्द्र ने ब्रहम समाज के माध्यम से समाज मे व्याप्त कुरितियों को दूर करने में सहायता प्रदान करी, इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना कर बुद्धि – आन्दोलन का सूत्रपात किया, तथा स्वामी विवेकान्द जी ने वेदान्त की एक नवीन व्याख्या समाज

के सम्मुख प्रस्तुत की जिसमें धर्म के आधार पर ही समाज में समानता एवं प्रेम को बनाये रखने का सन्देश दिया।

3– राजनैतिक जीवन में परिवर्तन

1. अंग्रेजी शासन के पश्चात भारतीय राजनैतिक जीवन में भी अनेको परिवर्तन हुए इस सम्बन्ध में डा0 मुकर्जी ने लिखा है कि '' अंग्रहो के आने से पहले भारतीय शासन – व्यवस्था की तीन मुख्य विशेषतायें थी –

   प्रथम गॉव पंचायतों की राजनैतिक इकाइयों के रूप में स्वतन्त्र सत्ता, द्वितिय – शासन व्यवस्था में धार्मिक सिद्वान्तों की मान्यता और अन्तिम – विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न शासकों द्वारा भिन्न – भिन्न शासन – व्यवस्था अंग्रेजो ने इन तीनों तत्वों को जड़ से उखाड़ फेका, पंचायतों के अधिकारों को छीन लिया शासन प्रबन्ध के क्षेत्र से धर्म का बहिष्कार किया और सारे देश में समान शासन – व्यवस्था स्थापित की''। [13]

इस प्रकार भारत में राजनैतिक एकता अथवा एकीकरण का श्रेय अंग्रेजी शासन को दिया जा सकता है, यातायात एवं संचार के साधनों ने भी राष्ट्रीय एकता को बल दिया क्योंकि विभिन्न प्रान्तों, जाति एवं धर्म के लोग एक दूसरे के सम्पर्क मे आये जिससे राष्ट्रीय एकता में भी वृद्धि हुई ।

4– साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन :7 पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय भाषाओं के साहित्य पर भी अपना व्यापक प्रभाव डाला अंग्रेजी साहित्य के पठन–पाठन से भारतीय विद्वानों एवं लेखको के ज्ञानार्जन के साथ–साथ पश्चात्य साहित्यिक शैली को भी अपने विचारों में समावेश किया जिससें साहित्य का आधुनिकीकरण हुआ, साथ ही हिन्दी भाषा को बढ़ावा देने का भी कार्य किया डा0 मुकर्जी के अनुसार '' जब कलकत्ता में फोट विलियम कालेज की स्थापना की गई तब हिन्दी को भी बढ़ावा मिला, इसी काल में ईसाई पादरियों में श्री विलियम केरी की सहायता से बाइबिल तथा अन्य पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया गया, अंग्रेजी साहित्य तथा शिक्षा का सबसे प्रथम प्रभाव यह हुआ कि विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में गद्य साहित्य मं एक नव–जागरण हुआ और साहित्य का जो अभाव अब तक था वह दूर होने लगा, भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने हिन्दी साहित्य को एक नव–पथ प्रदान किया। आपके साहित्य पर अंग्रेजी तथा बंगाली साहित्य का प्रभाव स्पष्टतः देखने को मिलता है। [14]

4– शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन – पश्चिमीकरण या पाश्चात्य संस्कृति का एक स्पष्ट प्रभाव शिक्षा के जगत में भी दृष्टिगोचर होता है शासन व्यवस्था का कार्य चलाने के लिए अंग्रेजी शासन ने भारतीयों को अंग्रजी शिक्षा देना प्रराम्भ किया, सन् 1844 में लार्ड हाडिग ने सरकारी अंग्रजी शिक्षण संस्थानों शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरी देने का प्रविधान रखा जिससें जनता द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को प्राथमिकता दी गई और अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार–प्रचार हुआ, स्त्री – शिक्षा को भी प्रोत्साहन मिलने लगा, साथ ही इस शिक्षा को सभी धर्मों एवं जातियों के व्यक्यिों ने अपनाया जिसस धर्म निरपेक्षता में वृद्धि हुई, तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण होने के कारण अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय जनमानस के विचारों, दृष्टिकोणों तथा जीवन में स्तर में अनेको विचारणीय परिवर्तन किये।

5– आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन :– पश्चिमीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज के आर्थिक क्षेत्र में भी अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए अंग्रेजी राज्य के कारण यातायात क साधनों मे वृद्धि होने से सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा मिला तथा औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्र के लोग नगरों में आकर बसने लगे और परम्परागत खेती एवं कुटीर उद्योग धन्धों का विनाश होने लगा, पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने औद्योगिक विकास एवं पूजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया, बड़े– बड़े कारखानों का निर्माण एवं मशीनों ने उत्पादन क्षमता मे वृद्धि की जिससे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिला। पश्चिमीकरण से जहॉ एक ओर आर्थिक जीवन को तो सुदरता प्राप्त हुई वही दूसरी ओर औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने अनेक नवीन समाजिक समस्याओं को भी जन्म दिया जिसमें प्रमुख रूप से श्रमिकों का शोषण, मलिन बस्तियों का विकास, बाल श्रम एवं अपराध रहे।

6– ललित कला में परिवर्तन

पश्चिमीकरण के प्रभाव से भारतीय ललित कला भी आहुता नही रहा, अंग्रेजी शासन के दौरान अनेक ऐसी इमारतो का निर्माण हुआ जिसमें रोमन तथा इंग्लैण्ड के विक्टोरियन युग की स्थापत्य कला का मिश्रण देखने को मिलता है, इस प्रकार पश्चिमीकरण के प्रभाव से पाश्चात्य ढ़ग से अनेक भवनों का निर्माण हुआ जिसमें मुख्य रूप से कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल, उदयपुर, जयपुर, मैसूर और दिल्ली की कई इमारते पाश्चात्य और भारतीय शिल्प कला का जीता जागता उदाहरण है। इसी प्रकार चित्रकला, नृत्य एवं संगीत कला में भी पश्चिमीकरण का प्रभाव पड़ा। '' सन् 1903 – 04 में श्री रविन्द्र नाथ ने एक नवीन कला – शैली को जन्म दिया जिसमें भारतीय तथा पाश्चात चित्रकला की शैलियों का सुंन्दर समन्वय किया। पाश्चात्य

स्वाभाविक शैली की परम्परा में भी अनेक भारतीय चित्रकार उत्पन्न हुए, इनमें बम्बई के श्री हल्डनकर तथा बंगाल के श्री जे0पी0 गंगोली प्रमुख है।

इस प्रकार कहॉ जा सकता है कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से भारतीय समाज एवं संस्कृति में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। जिसने समाज के प्रत्येक परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन लाने का कार्य किया।

14.9 संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण में अन्तर

संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण के मध्य अन्तर को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. संस्कृतिकरण पूर्ण रूप से एक आन्तरिक प्रक्रिया है, जिसमें जातिगत सामाजिक संरचना में परिवर्तन को स्पष्ट किया गया है जबकि पश्चिमीकरण पूर्ण रूप से एक बाह्य प्रक्रिया है जिसने भारतीय समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को परिवर्तित किया है।

2. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में धार्मिक विचारों को प्रधानता दी जाती है जबकि पश्चिमीकरण की प्रक्रियामें तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रधानता दी जाती है।

3. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया निम्न जातियों एवं जनजातियों से सम्बन्धित है जबकि पश्चिमीकरण एक व्यापक प्रक्रिया होने के कारण इसका प्रभाव भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग, धर्म, जाति एवं समुदाय में समान रूप से पड़ता है।

4. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में अपने से उच्च जाति या द्विज जाति का अनुसरण कर व्यक्ति द्वारा उसके व्यवहार को आदर्श माना जाता है, जबकि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में केवल पश्चिमी जीवन – शैली, संस्कृति एवं मूल्यों को आदर्श मानकर उनको गृहण किया जाता है।

5. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में जातीय संस्करण को विशेष महत्व प्रदान किया जाता हैं। इसके विपरीत पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में जातीय संस्तरण की कोई भी विशेष भूमिका नही होती।

बोध प्रश्न – 02

1. पश्चिमीकरण की प्रक्रिया किस कारक के रूप में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करती है।
2. योगेन्द्र सिंह के अनुसार पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में कौन सी विशेषताओं का समावेश होता है।
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में किस समाज की स्थापनाा की।
4. 1844 में लार्ड हाडिग द्वारा किन व्यक्तियों को सरकारी नौकरी में रखने का प्रविधान रखा।

14.10 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में यदि बात करे तो संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण, ये दोनो ही प्रक्रियाओं का सामाजिक परिवर्तन में विशेष प्रभाव पड़ा है।

इन दोनों ही प्रक्रियाओं की विस्तृत विवेचना प्रमुख समाजशास्त्री एम0एन0 श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक '' सोशल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया '' (Social Change in Modern India) में की हैं।

वास्तव में श्रीनिवास जी ने सामाजिक परिवर्तन के दो प्रमुख कारकों की बात की है। आपका मानना है कि एक वे कारक होते है जो बाह्य कारक के रूप में समाज में परिवर्तन लाने का कार्य करते है, और दूसरी ओर वो कारक होते है जो समाज को आन्तरिक रूप से प्रभावित कर समाज में परिवर्तन लाते है, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि समाज में परिवर्तन आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार से होते हे। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया आन्तरिक रूप से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न करती है। संस्कृतिकरण सोपान की प्रक्रिया के अर्न्तगत निम्न जातियॉ या कोई जनजाति सामाजिक संरचना में अपनी प्रस्थिति को ऊचा उठाने के लिए किसी उच्च और प्रायः द्विय जाति के रीति–रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन पद्धति इत्यादि, संस्कृतिक विशेषताओं को अपनाता है। इस प्रकार अनुकरण की इस प्रक्रिया में जाति सीयान में जो प्रस्थिति उन्हे वर्तमान में प्राप्त होती है। उससे ऊँचा होने का दावा करने लगती, एक या दो पीढ़िया के पश्चात समाज द्वारा उसे प्रायः स्वीकृति भी प्राप्त होने लगती है, इस प्रकार संस्कृतिकरण की प्रक्रिया एक आन्तर्रिक प्रक्रिया है। पश्चिमीकरण की यदि बात करे तो यह प्रक्रिया एक बाह्य कारक के रूप में समाजिक व्यवस्था के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में परिवर्तन

उत्पन्न करने का कार्य करती है। वास्तव में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया भारतीय समाज के पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आने के पश्चात उसमें होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया संस्कृतिकरण से भिन्न विशेषताओं वाली होती है।

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया जहॉ एक ओर आन्तरिक कारक के रूप में जातिगत परिवर्तनों को स्पष्ट करती है।वही दूसरी ओर पश्चिमीकरण की प्रक्रिया एक बाह्य कारक के रूप में भारतीय समाज के प्रत्येक पक्षों को परिवर्तित कर देती है। यहॉ पर यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही होगा कि अंग्रेजी शासन काल के दौरान ही भारतीय समाज एवं संस्कृति में व्यापक प्रभाव परिलक्षित होने लगे थे, जिससे नयी सामाजिक – आर्थिक व्यवस्था का निर्माण होने लगा, इससे परम्परागत विचारधाराओं में परिवर्तन तो आया ही साथ ही यातायात के साधनों से सामाजिक गतिशीलता को भी बढ़ावा मिला, उत्पादन की नयी विधियों का विकास, परम्परागत हस्त शिल्प के स्थान पर मशीनों का प्रयोग, औद्योगिकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया का विकास, नवीन शिक्षा प्रणाली, समानता की अवधारणा का विकास इत्यादि, इन सभी मिले जुले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप लोगो के भीतर नयी वैचारिकी का विकास होने लगा जिसने लोगों के विचारों को तो परिवर्तित किया ही, साथ ही व्यवहार करने के तरीको को भी परिवर्तित कर दिया, इस प्रकार संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण ने भारतीय समाजिक व्यवस्था में कई उपयोगी परिवर्तित लाने कार्य किया वही दूसरी ओर भारतीय संस्कृति एवं संस्थाओं को भी परिवर्तित कर दिया।

14.11 शब्दावली

1. **संस्कृतिकरण** :– एम0एन0 श्रीनिवास के अनुसार निम्न हिन्दू जाति अथवा जनजाति या अन्य समूह किसी उच्च और प्रायः द्विज जाति के समान अपने रीति – रिवाजों, कर्मकाण्डों, विचारधारा और जीवन शैली को बदलने लगता है। उस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण कहा जाता है।

2. **पश्चिमीकरण :–** पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आने से भारतीय समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को पश्चिमीकरण कहा जाता है। यह परिवर्तन विभिन्न संस्थाओं, विचारधारा, सामाजिक मूल्य एवं प्रौद्योगिकी आदि के विभिन्न स्तरों में देखने को मिलते है।

3. **द्विज जातियॉ :–** श्रीनिवास के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्राहमण, क्षत्रिय तथा वैशव जातियॉ।

14.12 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न – 01

1) एक बन्द वर्ग, 2) बाह्मणीकरण, 3) उच्च समूह की वृहत परम्पराओं

4) सोशल चेन्ज इन माडर्न इण्डिया, 5) उच्च और प्रायः द्विज जाति

बोध प्रश्न – 02

1) बाह्य कारक के रूप में, 2) मानवताबाद तथा बुद्धिवाद, 3) आर्य समाज

4) सरकारी अंग्रेजी शिक्षण संस्थानों में शिक्षित व्यक्ति

14.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1– अग्रवाल जी0के0 '' समाजशास्त्र ''– 2011, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स '' पे0न0 157

2– अग्रवाल जी0के0 '' समाजशास्त्र ''– 2011, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स '' पे0न0 160

3- Srinivas M.M, "Social Change in Modern India '' P.N – 06

4– अग्रवाल जी0के0, समाजशास्त्र '' – 2011, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, पे0न0 – 161

5– अग्रवाल जी0के0, समाजशास्त्र '' – 2011, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, पे0न0 – 161

6– अग्रवाल जी0के0, समाजशास्त्र '' – 2011, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, पे0न0 – 163/164

7– अग्रवाल जी0के0, ''सामजशास्त्र'' – 2011 एम0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स, पे0न0 – 165

8– अग्रवाल जी0के0 '' भारत में सामाजिक परिवर्तन एस बी पी डी पब्लिकेशन्स – पे0न0 151

9. M.N Srinivas, "Social Change in Modern India. Pg-47

10. Yogendra Singh, " Modernization of India Tradition, Pg – 9

11- M.N Srinivas " Social Change in Modern India " Pg – 2009

12- B. kuppuswami, Social Change in India. Pg – 62

13– रविन्द्र नाथ मुकर्जी, '' समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त '' – 2002 विवेक प्रकाशन नई दिल्ली, पे0न0 – 268

14– रविन्द्र नाथ मुकर्जी, '' समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त '' – 2002 विवेक प्रकाशन नई दिल्ली पे0न0 – 269

15 रविन्द्र नाथ मुकर्जी, '' समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त '' – 2002 विवेक प्रकाशन नई दिल्ली पे0न0 – 271

14.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एम0एन0 श्रीनिवास, '' आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन– 2009 राजकमल प्रकाशन
2. डा0 जी0के0 अग्रवाल, '' भारत में सामाजिक परिवर्तन'' – एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स
3. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, '' सिद्धान्त'' – 2002 विवेक प्रकाशन
4. जी0के0 अग्रवाल, '' समाजशास्त्र – 2011 एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कृतिकरण की अवधारणा एवं विशेषताओं की विवेचना कीजिए?
2. संस्कृतिकरण की सहायक दशाओं का वर्णन कीजिए?
3. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की सविस्तार चर्चा कीजिए?
4. संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
5. पश्चिमीकरण को परिभाषित करते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
6. भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण के प्रभावों की विवेचना कीजिए?

इकाई**15:** **नियोजित सामाजिक परिवर्तन**

(Planned Social Change)

इकाई की रुपरेखा

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 नियोजित सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा
15.3 नियोजित सामाजिक परिवर्तन बनाम निर्देशित सामाजिक परिवर्तन
15.4 नियोजित सामाजिक परिवर्तन बनाम सामाजिक परिवर्तन
15.5 सामाजिक बनाम आर्थिक नियोजन
15.6 नियोजित सामाजिक परिवर्तन बनाम सामाजिक नियोजन
15.7 नियोजित सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य
15.8 नियोजित सामाजिक परिवर्तन के कारक, साधन अथवा विधियां
15.9 भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन
15.10 अंग्रेजी शासन में नियोजित सामाजिक परिवर्तन
15.11 स्वतंत्र भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन
15.12 भारत में नियोजन का मूल्यांकन
15.13 सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से नियोजन का प्रभाव
15.14 सार संक्षेप
15.15 अभ्यास प्रश्न
15.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह तीव्र अथवा धीमी गति से प्रत्येक समाज में होता रहता है। प्रत्येक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि परिवर्तन भौतिक जगत अथवा जैविकीय व्यवस्था में भी होता रहता है। भौतिक जगत में हो रहे परिवर्तन भी सामाजिक परिवर्तन के स्रोत हो सकते हैं। सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक संबंधों, सामाजिक संगठन अर्थात् सामाजिक संरचना एवं प्रकार्यों तथा विशिष्ट सामाजिक संस्थाओं और उनके परस्पर संबंधों में होने वाला परिवर्तन है। विशिष्ट सामाजिक संस्थाओं और उनके परस्पर संबंधों में होने वाला परिवर्तन है। किंग्सले डेविड के अनुसार सामाजिक परिवर्तन में केवल वही परिवर्तन आते हैं जो

सामाजिक संगठन या सामाजिक संरचना एवं प्रकार्यों में घटित होते हैं। टी0बी0 बॉटोमार के शब्दों में सामाजिक परिवर्तन से आशय सामाजिक संरचना में परिवर्तन, विशिष्ट सामाजिक संस्थानों में परिवर्तन या संस्थाओं के परस्पर संबंधों में परिवर्तन है। मैकाइवर एवं पेज ने सामाजिक संबंधों में होने वाले परिवर्तनों को ही सामाजिक परिवर्तन कहा है।

15.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह जानना सम्भव होगा कि–

7. हम सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय सिद्वान्त को समझ सकेंगे।
8. सामाजिक परिवर्तन के जनांकिकीय सिद्वान्त का वर्णन करना।
9. थॉमस रॉबर्ट माल्थस सिद्धांत को बताना।
10. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत का वर्णन करना।
11. मार्क्स का जनसंख्या सिद्धांत को समझना।

15.3 नियोजित सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा

1. **ओडम** (Odum) **के अनुसार,** ''नियोजन द्वारा सामाजिक परिवर्तन वह परिवर्तन है जिसके द्वारा प्राकृतिक वह सामाजिक शक्तियों तथा परिणामतः विकसित सामाजिक व्यवस्था पर नियंत्रण प्राप्त किया जाता है।''
2. **मिड्रल** (Mydral) **के अनुसार,** ''नियोजन किसी देश की सरकार द्वारा किए गए वे जागरूक प्रयास हैं जिसके द्वारा लोक–नीतियों को अधिक तार्किक ढंग से समन्वित किया जाता है ताकि अधिक तेजी व पूर्णता से भावी विकास के उन लक्ष्यों पर पहुंचा जा सके जो कि विकसित होती हुई राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा निर्धारित किए गए हैं।''

15.4 नियोजित सामाजिक परिवर्तन बनाम निर्देशित सामाजिक परिवर्तन (Planned Social Change Versus Directed Social Change)

नियोजित सामाजिक परिवर्तन पूर्ण निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार सचेतन और योजनाबद्ध रूप से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास है। कई बार हमें किसी विशिष्ट समस्या के समाधान के लिए अलग से नियोजित करना पड़ता है। इस प्रकार का नियोजन संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था से संबंधित न होकर समाज की किसी एक समस्या अथवा पहलू से संबंधित होता है। इसको निर्देशित सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। इस प्रकार निर्देशित सामाजिक परिवर्तन नियोजित सामाजिक परिवर्तन का ही एक अंग है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि वेश्यावृत्ति की समस्या के समाधान के लिए अथवा दहेज प्रथा की समस्या को हल करने के लिए अथवा लोगों को गरीबी रेखा से ऊँचा उठाने के लिए कोई योजना बनाई जाए जो उसी समस्या विशेष से संबंधित हो तो उसे निर्देशित सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। समाज में पाए जाने वाली समस्याओं का समाधान करना निर्देशित सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख उद्देश्य है जबकि नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य पूरे समाज का नियोजन लक्ष्यों के आधार पर करना है। दोनों के साधन अथवा कारण ही एक जैसे नहीं है बल्कि दोनों में एक जैसी बाधायें भी उपस्थित होती है।

15.5 नियोजित सामाजिक परिवर्तन बनाम सामाजिक परिवर्तन

(Planned Social Change Versus Social Change)

सामाजिक परिवर्तन और नियोजित सामाजिक परिवर्तन दोनों एक नहीं है। प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन को नियोजित सामाजिक परिवर्तन नहीं कह सकते है। यह वास्तव में सामाजिक परिवर्तन का ही एक विशिष्ट प्रकार है जिसमें परिवर्तन की दिशा का पूर्वानुमान होता है एवं जिनमें जागरूक रूप से निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करने पड़ते हैं।

निम्नलिखित विशेषताओं के कारण नियोजित सामाजिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन से पृथक् किया जाता है–

(1) दिशा – नियोजित सामाजिक परिवर्तन निश्चित दिशा की ओर एवं उसे दिशा की ओर बढ़ने का जागरूक प्रयास है जिसे समाज ने विवेकशील एवं तार्किक रूप से निर्धारित किया है।

(2) उद्देश्य – इसका का उद्देश्य समाज को पुनर्गठिन या पुनःर्व्यवस्थित करना है।

(3) प्रकृति – यह स्वतः होने वाली प्रक्रिया न होकर चेतन रूप से किया जाने वाला प्रयास है।

(4) निर्णय – सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा जो कि एक प्रक्रिया मात्र है, नियोजित सामाजिक परिवर्तन एक निर्णय है।

(5) समस्या समाधान – नियोजित सामाजिक परिवर्तन में वर्तमान समाज में पाई जाने वाली सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक व अन्य प्रकार की समस्याओं के समाधान की ओर विशेष ध्यान रखा जाता है।

(6) अनेक पहलू – नियोजित सामाजिक परिवर्तन के अनेक पहलू हो सकते हैं जैसे कि सामाजिक नियोजन, आर्थिक नियोजन, शैक्षिक नियोजन, ग्रामीण विकास आदि।

(7) परंपरागत संस्थानों में परिवर्तन – इसका उद्देश्य उन परंपरागत संस्थानों में परिवर्तन करना भी है जो वांछनीय लक्ष्य की प्राप्ति में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न करती है।

(8) समयबद्धता – नियोजित सामाजिक परिवर्तन एक समयबद्ध परिवर्तन है या निश्चित व वांछनीय लक्ष्य की प्राप्ति धीरे–धीरे समयबद्ध योजनाओं के परिणामस्वरूप की जाती है।

(9) सर्वांगीण विकास – इसका उद्देश्य समाज का सर्वांगीण विकास करना है।

(10) सभी राजनैतिक व्यवस्थाओं में संभव – नियोजित सामाजिक परिवर्तन प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में संभव है या यह किसी विशेष प्रकार की राजनीति व्यवस्था वाले देश तक ही सीमित नहीं है।

15.6 सामाजिक बनाम आर्थिक नियोजन (Social Versus Economic Planning)

आर्थिक नियोजन से कुछ लोग देश को केवल आर्थिक समृद्धि की ओर ले जाना समझते हैं। किन्तु यह आर्थिक नियोजन को संकुचित रूप से परिभाषित करता है। वास्तव में जितनी भी आर्थिक योजनाएं बनाई जाती है, उनका मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ–साथ संपूर्ण समाज का विकास करना होता है। आर्थिक विकास अंतिम रूप से देश में रहने वाले व्यक्तियों के रहन–सहन, जीवन व संबंधों को प्रभावित करता है। अर्थव्यवस्था में परिवर्तन से समाज की अन्य व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन सामाजिक नियोजन का ही दूसरा नाम है क्योंकि आर्थिक विकास आर्थिक नियोजन द्वारा होता है उसका अंतिम उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना होता है परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि सामाजिक नियोजन एक आर्थिक नियोजन पर्यायवाची शब्द है। दोनों के प्रकृति और महत्व में अंतर है। प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक नियोजन का उद्देश्य सामाजिक जीवन की समस्याओं, सामाजिक मूल्यों एवं सामाजिक संबंधों से है।योजनाबद्ध रूप से सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन लाना ही सामाजिक नियोजन है। समाज में फैली सामाजिक कुरीतियों, जैसे –अपराध, बाल अपराध, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, जाति प्रथा, अस्पृश्यता आदि को योजनाबद्ध रूप से समाप्त करना है। आर्थिक नियोजन का उद्देश्य आर्थिक व्यवस्था में

सुधार लाना है यद्यपि इसका प्रभाव व्यक्तियों पर पड़ता है। आर्थिक नियोजन एवं विकास भी व्यक्तियों के सहयोग के बिना संभव नहीं है। वास्तव में सामाजिक नियोजन तथा आर्थिक नियोजन, नियोजित सामाजिक परिवर्तन के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं।

15.7 नियोजित सामाजिक परिवर्तन बनाम सामाजिक नियोजन

(Planned Social Change Versus Social Planning)

नियोजित सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियोजन को पर्यायवाची शब्द मान लेना उचित नहीं है। नियोजित सामाजिक परिवर्तन एक व्यापक एवं विस्तृत अवधारणा है जबकि नियोजन एक संकुचित एवं सीमित अवधारणा है। वास्तव में सामाजिक नियोजन नियोजित सामाजिक परिवर्तन का एक भाग है जिसके साथ में यह सामाजिक मूल्य जुड़े होते हैं कि समाज में पाई जाने वाली सामाजिक समस्याओं का निराकरण सामाजिक प्रगति के लिए अनिवार्य है। सामाजिक नियोजन का संबंध मुख्य रूप से सामाजिक व्यवस्था में मानवीय विकास की वृद्धि करना, विभिन्न सामाजिक समस्याओं को सुलझाना तथा ऐसे साधन उत्पन्न करना है जिनसे मानव जीवन अधिक समृद्धिशाली एवं समन्वित हो सके। सामाजिक नियोजन नीति का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण एक प्रकार का सामूहिक निर्णय है। इसके विपरीत नियोजित सामाजिक परिवर्तन केवल समाज को चेतन रूप में निश्चित दिशा की ओर ली जाने वाला प्रयास है जो कि प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक प्रणाली वाले समाज में संभव है।

सामाजिक नियोजन की भांति नियोजित सामाजिक परिवर्तन को आर्थिक नियोजन, राजनीतिक नियोजन, धार्मिक नियोजन, जनसंख्या नियोजन तथा ग्रामीण या नगरीय नियोजन से भी संबंद्ध माना जाता है। नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य समाज में रहने वाले व्यक्तियों एवं

विविध प्रकार के समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान करना, सामाजिक कुरीतियों को दूर करना तथा मानवीय मूल्यों को प्राप्त करने के लिए सचेतन प्रयास करना है। अतः यह एक विस्तृत अवधारणा है। सामाजिक नियोजन, आर्थिक नियोजन, परिवार नियोजन, ग्रामीण नियोजन इत्यादि नियोजित सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायता तो प्रदान करते हैं किन्तु इन्हें नियोजित सामाजिक परिवर्तन के पर्यायवाची शब्द नहीं कहा जा सकता है।

15.8 नियोजित सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य

1. सामाजिक संरचना में परिवर्तन – नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य समाज की संरचना को इस प्रकार से परिवर्तित करना है की तार्किक एवं विवेकशील ढंग से निर्धारित लक्षण की प्राप्ति की जा सके।

2. आर्थिक समृद्धि – नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य व्यक्तियों की को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अधिक अवसर प्रदान करना है ताकि वे अधिक समृद्धिशाली जीवन व्यतीत कर सकें।

3. जन कल्याण – नियोजित सामाजिक परिवर्तन जनसमूह के कल्याण का एक मार्ग है। इसका उद्देश्य समाज को और अधिक कल्याणकारी बनाना है। डूब ने जन समूह के कल्याण को नियोजित सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख आधार माना है। इनके अनुसार नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य व्यक्तियों की अधिकतर इच्छाओं की पूर्ति करना तथा उन्हें कम से कम निराशा और हतोत्साहित करना है।

4. साधनों का अधिकतम उपयोग – समाज में उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय शक्तियों का अधिकतम प्रयोग करने की क्षमता में वृद्धि करना भी नियोजित सामाजिक परिवर्तन का ही मुख्य उद्देश्य है।

5. बाधाओं को हटाना – नियोजित सामाजिक परिवर्तन का एक अन्य उद्देश्य समाज को निश्चित दिशा की ओर ले जाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना भी है।

6. मूल्यों, मनोवृतियों एवं विश्वास में परिवर्तन – नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य जनता के मूल्यों, मनोवृत्तियों एवं विश्वासों में परिवर्तन लाना है ताकि लोग समयानुकूल समाज के परिवर्तित लक्ष्यों से तालमेल रख सकें।

7. शांतिपूर्ण परिवर्तन – नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य युद्ध, क्रांति या बिना संकट के वांछनीय परिवर्तन लाना है। यह परिवर्तन विविध प्रकार की सांस्कृतिक, मान्यताओं, जैसे सांस्कृतिक एकता, परिवार नियोजन, शिक्षा की समुचित व्यवस्था, व्यवस्थाओं की बहुलता, समाज एवं अधिकाधिक अवसर प्रदान करके एवं तकनीकी का विकास करके लाया जा सकता है। नियोजित सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य व्यक्तियों में सहयोग, सहकारिता एवं सामाजिक सुरक्षा की भावनायें विकसित करना तथा प्रतिस्पर्द्धा एवं संघर्ष जैसे विघटनकारी शक्तियों को नियमित करना भी है।

अमेरिका के राष्ट्रीय साधन नियोजन बोर्ड के अनुसार नियोजित सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं–

(1) न्याय, एकता, स्वतंत्रता और अधिकारों के बीच व्यक्ति के व्यक्तित्व को यथाशक्ति विकसित होने का पूर्ण अवसर प्रदान करना।

(2) सभी प्रकार के भौतिक एवं जन–साधनों का विकास करना, लोगों को संपूर्ण रोजगार के अवसर उपलब्ध करना, आय में निरंतर वृद्धि करना, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिरता तथा आर्थिक ढांचे में संतुलन बनाए रखना।

(3) साम्राज्यवाद और अंतराष्ट्रीय संघर्षों की समाप्ति तथा सभी देशों का विकास करना।

15.9 नियोजित सामाजिक परिवर्तन के कारक, साधन अथवा विधियां

(1) अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों के स्पष्ट निर्धारण एवं वितरण द्वारा;

(2) सभी प्रकार के प्रशासनात्मक एवं संगठनात्मक साधन उपलब्ध करवा कर;

(3) साधनों की उपलब्धि एवं इनके उचित प्रयोग संबंध में ज्ञान में वृद्धि द्वारा;

(4) उन सभी परिस्थितियों का विश्लेषण करके जहां समायोजन तथा संशोधन की आवश्यकता है;

(5) विशिष्ट समस्याओं के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा भौगोलिक पहलुओं का विश्लेषण करके;

(6) सामाजिक विकास के अधिक अवसर प्रदान करके;

(7) सामाजिक आंदोलन द्वारा;

(8) वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के बारे में एक विस्तारपूर्ण परियोजना बनाकर;

(9) सरकारी, अर्द्ध–सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों के सामाजिक संचालन द्वारा;

(10) विशिष्ट जनों द्वारा जनसाधारण में जागरूकता में वृद्धि करके;

(11) शिक्षा, संचार तथा आवागमन के साधनों का विकास करके;

(12) जन–सहयोग एवं इससे संबंधित विभिन्न योजनाओं जैसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम इत्यादि के विकास द्वारा।

निम्न साधनों को नियोजित सामाजिक परिवर्तन में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है–

(1) सरकार तथा सरकार द्वारा पारित अधिनियम;

(2) राजनीतिक दल;

(3) समाज सुधारक;

(4) सहकारिता एवं सहयोग पर आधारित विभिन्न संगठन;

(5) शिक्षा;

(6) प्रचार।

15.10 भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन (Planned Social Change in India)

नियोजित सामाजिक परिवर्तन आज प्रत्येक समाज में सर्वांगीण विकास के लिए पाया जाता है। भारत जैसे, विकासशील देश के लिए इसका महत्व और भी अधिक है क्योंकि यहां नागरिकों की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति एवं उनमें समानता लाने के लिए तथा विकसित देशों के बराबर पहुंचने के लिए अभी काफी रास्ता तय करना है।

15.11 अंग्रेजी शासन में नियोजित सामाजिक परिवर्तन

अंग्रेजी शासन काल में भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। फिर भी अंग्रेजी शासन काल में भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की श्रृंखला शुरू हुई। अंग्रेज अपने साथ विकसित तकनीकी तथा पश्चिमी मूल्य एवं संस्कृति लाए थे। इसीलिए पश्चिमी संस्कृति एवं तकनीकी के विकास के कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने शुरू हुए। सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन की शुरुआत अंग्रेजी शासनकाल में हुई, यद्यपि वास्तव में यह परिवर्तन अंग्रेजों के अपने हितों की पूर्ति के लिए किए गए थे। परिवर्तन करते समय यह बात ध्यान में नहीं रखी गई थी कि इन नवीन मूल्य एवं परिवर्तनों से परंपरागत व्यवस्था सामंजस्य में रह पाएगी अथवा

नहीं। अतः अनेक प्रकार के परिवर्तनों को हमारे समाज में रहने वाले लोगों ने बिना किसी सूझबूझी एवं तर्क के स्वीकार कर लिया।

15.12 स्वतंत्र भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार का प्रथम लक्ष्य भारत को एक नवीन एवं शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विकसित करना था। उसने भारत की परंपरा एवं ऐतिहासिकता तथा नवीन समाज की स्थापना के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया एवं इनमें तालमेल रखकर ऐसे लक्ष्य निर्धारित किया जिनसे नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकतायें अधिकाधिक पूरी हो सकें। भारत के सामने पूंजीवाद, साम्यवाद तथा समाजवाद जैसी विविध मार्ग थे जिन पर चलकर समाज का विकास किया जा सकता था। प्रजातांत्रिक पद्धति की शासन प्रणाली को अपनाकर भारत ने देश में समाजवाद लाने का संकल्प लिया। भारतीय सरकार ने भारत को प्रजातांत्रिक समाजवाद का आदर्श देकर नागरिकों में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से समानता लाने तथा सभी को सुरक्षा प्रदान करने वाली सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के प्रयास शुरू किये।

भारतीय संविधान

भारतीय संविधान इस ढंग से बनाया गया है कि यह भारत को समाजवादी एवं कल्याणकारी राज्य बनाने में सहायता दे।

(अ) अनुच्छेद 29 – इसमें यह कहा गया कि राज्य अपनी नीति को इस प्रकार से कार्यान्वित करेगा कि स्त्री और पुरुष सभी को समान रूप से जीविकोपार्जन के साधन प्राप्त हो, संपत्ति के स्वामित्व नियंत्रण को इस प्रकार से वितरित किया जाए कि सभी नागरिकों का हित हो।

(ब) अनुच्छेद 41 – इसमें बेकरी, बीमारी, वृद्धावस्था में सहायता व सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है।

(स) अनुच्छेद 43 – इसमें श्रमिकों के शिष्ट वह उच्च जीवन स्तर को बनाए रखने की व्यवस्था की गई है।

(द) अनुच्छेद 45 – इसमें सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

पंचवर्षीय योजनाएं

भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए समयबद्ध पंचवर्षीय योजनायें बनाई गई, पंचायती राज का पुनर्गठन किया गया तथा सामुदायिक विकास जैसी योजनाओं की शुरुआत की गई। भारत सरकार ने समाजवादी समाज की स्थापना करना अपना लक्ष्य निर्धारित किया। इसके लिए प्रजातांत्रिक राजनीतिक प्रणाली एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था को साधनों के रूप में स्वीकार किया गया। भू–दान, ग्राम–दान तथा सर्वोदय जैसी गैर सरकारी प्रयासों द्वारा भी इस लक्ष्य की प्राप्ति की ओर कदम बढ़ाने में सहायता मिली है।

समाज कल्याण

पंचवर्षीय योजनाओं में समाज कल्याण विशेष कर विशेष रूप से पिछड़े वर्गों के कल्याण की ओर काफी ध्यान दिया गया है। भारत में 1966 में समाज कल्याण विभाग की स्थापना की गई तथा केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड बनाया गया जो निम्नलिखित बातों के बारे में विशेष ध्यान देता है–

(1) सामान्य कल्याण;

(2) शिशु कल्याण;

(3) अनाथ बच्चों की देखरेख;

(4) भिखारी, किशोर, अपराधी अन्य ऐसे लोगों को पुनर्विस्थापन के लिए प्रशिक्षण प्रोग्राम;

(5) अंतर्राष्ट्रीय शिशु शिक्षा धन;

(6) अपाहिजों की शिक्षा का प्रबंध;

(7) स्त्रियों का नैतिक उद्धार एवं वेश्यावृत्ति की समाप्ति;

(8) सामाजिक सुरक्षा का कार्य;

(9) मद्य निषेध;

(10) ग्रामीण स्त्रियों को शिक्षा;

(11) अनुसंधान एवं प्रशिक्षण।

भारत सरकार द्वारा समाज कल्याण के लिए किए गए कार्यों में उल्लेखनीय है मद्य निषेध, अनैतिक व्यापार पर रोक, बाल अपराधियों का सुधार, भिखारियों का सुधार, जेलों में समाज कल्याण, विस्थापित व्यक्तियों की सहायता एवं पुनर्वास, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अयोग्य व्यक्तियों का कल्याण, मातृत्व एवं बाल कल्याण संस्थाओं का विकास तथा पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए शुरू की गई विविध योजनायें।

15.13 भारत में नियोजन का मूल्यांकन

भारत में पंचवर्षीय योजनाएं आर्थिक योजनाएं मात्रा नहीं है। यह विभिन्न समूहों के मध्य आय और विकास के अवसरों का वितरण भी है। सामाजिक संबंधों की व्यवस्था पर इनका प्रभाव होना स्वाभाविक है। सन् 1970 में विश्व बैंक की रिपोर्ट में लिखा गया था, ''भारतीय अर्थव्यवस्था में जो कि जीवन निर्वाह के सीमांत पर ही क्रियाशील होती है, पैदावार सारा ही अंतर पैदा कर देती है।'' भारतीय किसान आज भी अपनी वार्षिक फसल पर आश्रित है फसल अच्छी हो गई तो सब कुछ ठीक अन्यथा सारी अर्थव्यवस्था ही डावांडोल हो जाती है। सन् 1972 73 में भारत की निम्न श्रेणी की 30 प्रतिशत जनसंख्या का प्रति व्यक्ति उपभोग 25 रुपए प्रतिमाह आता रहा है। आज यह गांव में 130 रुपये तथा नगर में 140 रुपए है। यह जीवन निर्वाह से भी नीचे का स्तर है। भारत में नियोजन की असफलता उपरोक्त तथ्यों से ही प्रकट हो जाती है।

भारतीय नियोजन के दोष निम्नलिखित है–

1. स्पष्ट वैचारिकी का अभाव – शुरू में हम 'मिश्रित व्यवस्था' से आगे चले, दूसरी योजना में हिचकते हुए 'समाजवादी प्रतिमान' को आदर्श के रूप में स्वीकार

किया अब खुलकर 'समाजवाद' को वैचारिकी के रूप में घोषित कर पाए हैं। यह भी 'नकारात्मक समाजवाद' है कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण करके या भूतपूर्व राजाओं के प्रीवी–पर्स समाप्त करके ही इसे नहीं लाया जा सकता। इसके लिए रचनात्मक समाजवाद की आवश्यकता है। कठोर अनुशासन और बलिदान पर आधारित योजनाओं, आवश्यकताओं की वरीयता के साथ बनानी होगी। विलास, शानोशौकत के उद्योगों के स्थान पर भोजन–वस्त्र के उद्योग लगाने होंगे।

2. भौतिक विकास का लक्ष्य – इसके कारण मानव के चरित्र संबंधी रूपांतरण का लक्ष्य उपेक्षित रहा। यही कारण है कि बेईमानी, रिश्वतखोरी, भाई–भतीजावाद, चोर बाजारी व मिलावट जैसी चारित्रिक–कमजोरीयां व्यापक रूप से भारतीय जनता में आ गई है। नियोजित सामाजिक परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य उद्देश्य तो मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण का ही है।

3. आधारों की उपेक्षा– नियोजन के आधार राष्ट्रीय स्तर पर नवीन शिक्षा प्रणाली व मध्य श्रेणी के उद्योग बनाए जाने चाहिए। भारतीय योजनाओं में इस और पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है।

15.14 सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से नियोजन का प्रभाव

1. जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम – परिवार नियोजन के प्रोग्राम के अंतर्गत जनसंख्या वृद्धि रोकने का प्रयास किया गया है। इसका प्रभाव परंपरागत एवं यौन नैतिकता पर भी पड़ा है। अनेक बातें, जो पहले पूर्णतया व्यक्तिगत और गोपनीय थी, अब सार्वजनिक चर्चा का विषय बन गई है, गर्भपात को कानूनी रूप दिया गया है।

2. संयुक्त परिवार का विघटन – बढ़ाते हुए रोजगार के स्तर, यातायात के साधनों और नगरीकरण के परिणामस्वरुप संयुक्त परिवारों का रूप बदला है। अब केंद्रक परिवारों का विकास हो रहा है।

3. जाति–व्यवस्था में परिवर्तन – नियोजित प्रयासों ने सामाजिक–संस्तरण का मूलभूत आधार, व्यक्ति की कुशलता व उपलब्धि को बना दिया है। जन्म के आधार

पर उच्च सामाजिक स्तर की प्राप्ति का नियम शिथिल होता जा रहा है। अतः जाति व्यवस्था में परिवर्तन हो रहा है।

4. शक्ति और सत्ता के परंपरागत प्रतिमान – ये पहले आयु जाति या धर्म के आधार पर थे आज बादल रहे हैं। सत्ता का प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण हुआ है। नेतृत्व उपलब्धि के आधार पर होता जा रहा है।

5. ग्रामीण समुदाय का विकास – सामुदायिक विकास योजनाओं के अंतर्गत गांवों के सर्वांगीण विकास का प्रयास हुआ है। ग्रामीण समुदाय अपनी 'परंपरागत पृथकता' के दायरे से निकले हैं। वे खंड, जिले व राज्य के स्तर पर संबंधित हो गए हैं।

6. नगर–ग्राम संपर्क – नगर–ग्राम एकीकरण एवं अंतःक्रिया भी बढ़ी है।

7. लौकिकीकरण – 'धार्मिक व्यवस्था' उतनी कट्टर नहीं रही है। लौकिकीकरण बढ़ा है। विकास के लिए आवश्यक विज्ञान व प्रौद्योगिकी की प्रसार ने धार्मिक विश्वासों को हिलाया है।

8. औद्योगीकरण वह नगरीकरण – इन दोनों ही प्रक्रियाओं को बल मिला है।

9. कुछ सामाजिक संबंध समस्याएं– नियोजन से कर्मचारीतंत्र के महत्व को बढ़ा दिया है। हर कदम पर लाल–फिता शाही और भ्रष्टाचार पनपा है।

15.15 भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन में प्रमुख बाधायें

1. अशिक्षा – नियोजित सामाजिक परिवर्तन द्वारा देश को आगे बढ़ाने के लिए जनता का सक्रिय सहयोग आवश्यक है परंतु भारत में अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है जिसके कारण वे नियोजन का अर्थ ही नहीं समझते तथा विकास को केवल सरकार का उत्तरदायित्व मानते हैं और इसलिए अपना सक्रिय सहयोग नहीं देते हैं।

2. गुटबंदी– भारतीय राजनीति गुटबंदी पर आधारित है। अतः यदि शासक दल कोई योजनाबद्ध कार्य शुरू करता है तो विरोधी दल वाले उसे समर्थन नहीं देते। इससे योजनाबद्ध कार्यक्रमों को समय पर पूरा करने में कठिनाई होती है।

3. रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वास – नियोजित सामाजिक परिवर्तन एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। वह लक्ष्य एवं साधनों की तार्किक गणना से संबंधित है। भारत परंपरागत रूप से परंपरावादी एवं रूढ़िवादी देश रहा है। आज भी अधिकांश भारतीय जनता इन परंपरागत विश्वासों के कारण ही कुरीतियों को समाप्त करने में सरकार को सहयोग नहीं देती है। उदाहरण के लिए दहेज प्रथा कानूनी रूप से समाप्त कर दी गई है परंतु जनता का सहयोग न मिलने के कारण यह करीति आज भी भारत में प्रचलित है।

4. व्यावहारिकता का अभाव – भारत में अनेक योजनाएं राजनीति से प्रेरित होती है और उनका उद्देश्य किसी विशेष राज्य या क्षेत्र में मतदाताओं को ही प्रभावित करना होता है। चुनाव के समय घोषित अनेक योजनाओं के व्यावहारिक पक्ष पर विस्तृत रूप से विचार विमर्श तक नहीं किया जाता। चुनाव के बाद अनेक ऐसी योजनाएं और अव्यावहारिक होने के कारण प्रायः समाप्त हो जाती है।

5. साधनों की कमी – भारतवर्ष में योजनाओं में लक्ष्य निर्धारित करते समय कई बार उपलब्ध साधनों की मात्रा को ध्यान में नहीं रखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है की साधना के अभाव में अनेक कार्यक्रम अधूरे रह जाते हैं।

6. ग्रामीण विशिष्टजन वर्ग की उदासीनता– प्रोफेसर एस0सी0 दुबे ने सामुदायिक विकास योजना की असफलता का कारण ग्रामों में रहने वाले प्रभावशाली वर्ग विशिष्टजन द्वारा इन योजनाओं को सफल बनाने में सहयोग न देना बताया है। यह विशिष्ट जन ग्रामवासियों को कई बार इनका विरोध करने तक को प्रेरित करते हैं।

7. सामान्य जनता की उदासीनता – भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन की धीमी गति का एक मुख्य कारण विकास कार्यक्रमों के प्रति, सरकार के प्रति तथा राष्ट्र के प्रति सामान्य जनता की उदासीनता है। आज सभी अपने व्यक्तिगत हितों में इतने उलझे हुए हैं की संपूर्ण राष्ट्र के बारे में कोई सोचता नहीं।

8. राजनीतिज्ञों एवं बुद्धिजीवियों में असहयोग– भारत में राजनीतिक नेता जो कि विकास योजनाओं का निर्माण करते हैं तथा इन्हें कार्यान्वित करते हैं तथा

बुद्धिजीवियों में प्रत्यक्ष संपर्क का अभाव है। विभिन्न विकास योजनाओं के बारे में बुद्धिजीवियों की राय की उपेक्षा की जाती है। सामाजिक वैज्ञानिकों से इन योजनाओं के बारे में सलाह नहीं ली जाती। अतः इनमें अनेक कमियां रह जाती है।

15.16 अभ्यास प्रश्न

1. नियोजित सामाजिक परिवर्तन से आप क्या समझते हैं?
2. भारत में सामाजिक परिवर्तन के रूप में नियोजन के महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. विकास तथा नियोजन सामाजिक परिवर्तन में क्या अंतर तथा संबंध है?
4. भारत में सामाजिक नियोजन से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिए।
5. क्या आपकी राय में भारतीय समाज में सामाजिक नियोजन के द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाया जाना सम्भव है? कैसे, तर्क दीजिए?

15.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रामनाथ शर्मा एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा, (2007), भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समस्यायें, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली

कोम्टे, अगस्ते. (1974). द पॉजिटिव फिलोसोफी. न्यूयॉर्कः एमस प्रेस

दुर्खेइम, एमिले. 1947 (1893).द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस

मर्टन, आर. के. 1968 (1948).सोशल थ्योरी एंड सोशल स्ट्रक्चर. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस

डॉ. जी. आर. मदन (2007) 'विकास का समाजशास्त्र', विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली

डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल (2011) 'समाजशास्त्र', एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स

प्रो.एम.एल. गुप्ता एवं डॉ. डी.डी. शर्मा, 'समाजशास्त्र', साहित्य भवन पब्लिकेशन्सः आगरा

डॉ. अरुणेश त्रिपाठी एवं डॉ. विभा (2022), 'भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक आन्दोलन', ठाकुर पब्लिकेशन्स प्रा. लि. लखनऊ